

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान संपादक - पुरातत्त्वाचार्य, जिनविजय मुनि

[सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, जयपुर]

*** ग्रन्थों क ४ ***

तार्किक चूडामणि-सर्वदेव विरचिता

प्रमाणमञ्जरी

***** प्रकाशक *****

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर

जयपुर (राजस्थान) *

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्यद्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिलभारतीय तथा विशेषतः राजस्थानप्रदेशीय पुरातन कालीन
मंस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिवद्ध
विविधवाक्यप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावलि

*

प्रधान संपादक

पुरातत्त्वाचार्य, जिनविजय मुनि

[ऑनररि मेंबर ऑफ जर्मन ओरिएण्टल सोसाइटी, 'जर्मनी']

सम्मान्य मदस्य

भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पूना; गुजरात साहित्य सभा, अहमदाबाद;
सम्मान्य निषामक (ऑनररि डॉयरेक्टर) - भारतीय विद्याभवन, बंबई;

प्रधान संपादक -

गुजरातपुरातत्त्वमन्दिर ग्रन्थावली; भारतीयविद्या ग्रन्थावली; सिंधी जैन ग्रन्थमाला;
जैनसाहित्यसंशोधक ग्रन्थावली; इत्यादि, इत्यादि ।



ग्रन्थांक

४

प्रमाण मञ्जरी

[प्रथमावृत्ति - प्रति संख्या ५००; मूल्य ४-०-०]



प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

संचालक, राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर

जयपुर (राजस्थान)

*

वैशाख
विक्रमाब्द २०१० }

राजनियमानुसार - सर्वाधिकार सुरक्षित

{ मई
विक्रमाब्द १९५३

तार्किकचूडामणि-सर्वदेव-विरचिता

प्रमाणमञ्जरी

[पद्यभद्रमिश्र-अद्वयारण्ययोगि-धामनमठ-विरचित व्याख्यानस्य सम्मन्विता]

संपादनकर्ता

पं. पट्टाभिराम शास्त्री, विद्यासागरः

प्रकाशनकर्ता

राजस्थान राज्याध्यक्षकार

संचालक, राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर

जयपुर (राजस्थान)



विप्रमान्द २०१०]

मूल्य ४-०-०

[पिस्त

मुद्रक-लक्ष्मीबाई नारायण चौधरी, निर्जयसागर प्रेस,
२१-२८ कोलमाट स्ट्रीट, बंगलूरु. २.

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

‘संस्कृत-प्राकृत साहित्य श्रेणि’ के अन्तर्गत जो ग्रन्थ प्रेसोंमें छप रहे हैं उनकी नामावलि

- १ त्रिपुराभारती लघुस्तव—कर्ता सिद्धसारस्वत लघुपण्डित ।
- २ बालशिक्षा व्याकरण—कर्ता ठकुर संग्रामसिंह ।
- ३ करुणामृतप्रपा—कर्ता महाकवि ठकुर सोमेश्वर देव ।
- ४ पदार्थरत्नमञ्जूषा—कर्ता पं. कृष्णमिश्र ।
- ५ शकुनप्रदीप—कर्ता पं. लावण्यशर्मा ।
- ६ उक्तिरत्नाकर—कर्ता पं. साधुसुन्दर गणी ।
- ७ प्राकृतानन्द (प्राकृत व्याकरण)—कर्ता पं. रघुनाथ कवि ।
- ८ ईश्वरविलासकाव्य—कर्ता पं. कृष्णभट्ट ।
- ९ महर्षिकुलवैभव—कर्ता पं. मधुसूदन ओझा विद्यावाचस्पति ।
- १० चक्रपाणिविजयकाव्य—कर्ता पं. लक्ष्मीधर भट्ट ।
- ११ काव्यप्रकाशसंकेत—कर्ता भट्ट सोमेश्वर ।
- १२ प्रमाणमञ्जरी (वृत्तित्रयोपेता)—मूलकर्ता सर्वदेवाचार्य ।
- १३ वृत्तिदीपिका—कर्ता मौनि कृष्णभट्ट ।
- १४ तर्कसंग्रह फक्किा—कर्ता पं. क्षमाकल्याण गणी ।
- १५ राजविनोद काव्य—कर्ता कवि उदयराम ।
- १६ यंत्रराजरचना—कर्ता महाराजा सवाई जयसिंह ।
- १७ कारकसंबन्धोद्योत—कर्ता पं. रभसनन्दी ।
- १८ शृंगारहारावलि—कर्ता श्रीहर्ष कवि
- १९ कृष्णगीतिकाव्यानि—कर्ता कवि सोमनाथ ।
- २० नृत्तसंग्रह—अज्ञात कवि कर्तृक ।
- २१ नृत्यरत्नकोश—कर्ता राजाधिराज कुंभकर्णदेव ।
- २२ नन्दोपाख्यान—अज्ञातविद्वत्कर्तृक ।
- २३ चान्द्रव्याकरण—कर्ता महावैय्याकरण चन्द्रगोभी ।
- २४ शब्दरत्नप्रदीप—अज्ञातकर्तृक ।
- २५ रत्नकोश ” ”
- २६ कविकौस्तुभ—कर्ता पं. रघुनाथ मनोहर ।
- २७ मणिपरीक्षादि—प्रकरणानि अज्ञातकर्तृक
- २८ सामुद्रकम् ” ”
- २९ शतकत्रयम्—कर्ता भर्तृहरि ।
- ३० वसन्तविलास— ” अज्ञातकर्तृक ।

किञ्चित् प्रास्ताविक

*

सर्वदेवाचार्य प्रणीत प्रमाणमञ्जरी नामक प्रस्तुत ग्रन्थ वैशेषिक दर्शनका एक प्रमाणभूत और प्राचीन प्रकरण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थका मूलमात्र ही अभी तक प्रकाशमें आया है; लेकिन व्याख्यादिके साथ यह कहींसे प्रकाशित नहीं हुआ। आधुनिक विद्वानोंको तो इस ग्रन्थका परिचय भी शायद नहीं है। राजस्थान, मध्यभारत एवं गुजरातके प्राचीन पुस्तक भण्डारोंमें इस ग्रन्थकी अनेक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त होती हैं और इस पर रची हुई भिन्न भिन्न विद्वानोंकी व्याख्याएँ आदि भी यत्रतत्र उपलब्ध होती हैं। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन कालमें, राजस्थानमें इस ग्रन्थके पठन-पाठन और अध्ययन-अध्यापन आदिका सघेष्ठ प्रचार रहा है।

कोई १२ वर्ष पहले बंबईके निर्णयसागर प्रेसने इस ग्रन्थका मूलमात्र छाप कर प्रकट किया था, जिसे देख कर इसकी व्याख्या वगैरहके विषयमें कुछ जानकारी प्राप्त करनेकी हमें इच्छा हुई। सन् १९४२ के प्रारंभमें जेसलमेरके ज्ञान भण्डारोंका निरीक्षण करनेका हमें प्रसङ्ग प्राप्त हुआ उस समय वहाँके एक ज्ञान भण्डारमें बलभद्रमिश्रकी^१ व्याख्यावाली इसकी

१ इन बलभद्रमिश्रने केशव मिश्रकी तर्कभाषापरमी तर्कभाषा प्रकाशिका नामक संक्षिप्त परंतु सुन्दर व्याख्या बनाई है जिसकी एक प्रति पूनाके भाण्डारकारीसचै इन्स्टीट्यूटमें संरक्षित, राजकीय ग्रन्थ संग्रहमें, सुरक्षित है। इस व्याख्याके आद्यन्त पद्य इस प्रकार हैं।

आदि-विष्णुदासतनुजेन बलभद्रेण तन्यते। ध्यात्वा विष्णुध्वामभोजं तर्कभाषाप्रकाशिका।

अन्त-विष्णुदासतनुजेन माध्वीपुत्रेण यजतः। बकारि बलभद्रेण तर्कभाषाप्रकाशिका ॥

इन बलभद्र मिश्रका समयनिर्णायक कोई विशिष्ट आधार अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है। परंतु भावनगरके जैन ज्ञान भण्डारमें प्रस्तुत प्रमाणमञ्जरी व्याख्याकी एक प्रति हमारे देखनेमें आई है उसका लिपिकान आदि इस प्रकार लिखा हुआ है।

संवत् १९६७ वर्षे भाद्रपामुदि १४ दिने वार सोमे प्रती पूर्ती करीषी। मोढ शतीष पंड्या भवान् सुत पंड्या मेघजी।

इस पंक्तिसे इतना तो निश्चित ज्ञात हो रहा है कि वि. सं. १९६७ के पहले ही बलभद्र मिश्र कमी हो गये हैं। इसके पूर्वकी समयमर्यादा का विचार करने पर, यह भी निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि तर्कभाषाके कर्ता पं. केशवमिश्रके बाद ही बलभद्र मिश्र हुए हैं। केशवमिश्रका समय, विद्वानोंने प्रायः ईस्वी १३०० के कुछ पूर्ववर्ती अनुमानित किया है। वरों कि तर्कभाषाके पहले टीकाकार चित्रभट्ट हैं जो ईस्वी १४ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें हुए हैं; दूसरी ओर केशवमिश्रने अपने ग्रन्थमें प्रतिज्ञा महानैमाविक गंगेशके विचारोंका अनुसरण किया है, अतः गंगेशके बाद ही केशवमिश्रका होना सिद्ध होता है। गंगेशोपाध्यायका समय विद्वानोंने ई. स. ११५०-१२०० के लगभग अनुमानित किया है; अतः इस तरह ई. स. १२००-१३०० के बीचमें केशवमिश्रका होना मानना संगत लगना है।

हमारा अनुमान है कि प्रमाणमञ्जरी और तर्कभाषाके टीकाकार ये बलभद्रमिश्र थे ही हैं जो तर्कभाषाकी एक दूसरी व्याख्या करनेवाले गोवर्धन मिश्रके पिता थे। गोवर्धन मिश्रने अपनी तर्कभाषाप्रकाश नामक व्याख्यामें अपना परिचय इस प्रकार दिया है-

एक प्राचीन सुन्दर हस्तलिखित प्रति हमें देखनेको मिली । हमने उसकी प्रतिलिपि करवा ली । खोज करने पर, पूना, बडौदा, बंबई, वीकानेर, भावनगर, पाटन, अहमदाबाद आदि स्थानोंके प्राचीन ग्रन्थोंके संग्रहोंमें भी इस ग्रन्थकी अन्यान्य टीकाएँ और उनकी अनेक प्रतियाँ ज्ञात हुई ।

राजस्थान सरकारने, हमारी प्रेरणासे प्रेरित हो कर, सन् १९५० में, जब राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिरकी स्थापनाका शुभ संकल्प किया और प्रारंभमें इस मन्दिरके संचालनका भार हमारे ही ऊपर रखना निश्चित किया गया, तब हमने प्रथम ही वर्षमें इस संस्थाकी ओरसे प्रकाशित किये जानेवाले, जिन ग्रन्थोंका चुनाव किया उनमें प्रस्तुत प्रमाणमञ्जरीको भी स्थान दिया; और इसके संपादनका कार्य, पण्डितप्रवर विद्यासागर श्रीपट्टाभिरामजी शास्त्री (जो उस समय जयपुरके महाराजा संस्कृत कॉलेजके प्रधानाचार्यके पद पर अधिष्ठित थे) को सौंपा । पण्डितवर्य्य श्रीपट्टाभिरामजी शास्त्री मीमांसादर्शनके एक प्रौढ विद्वान् हैं और आपने इतःपूर्व अनेक उच्चकोटिके ग्रन्थोंका संपादन-संशोधन आदि कार्य बड़ी निपुणताके साथ किया है । वर्तमानमें आप कटकता युनिवर्सिटीके संस्कृत-विभागमें प्राध्यापकके पद पर नियुक्त हैं । शास्त्रीजीने प्रस्तुत ग्रन्थका संपादन बड़ी योग्यता और सावधानताके साथ किया है जिसके लिये हम इनके प्रति अपना हार्दिक कृतज्ञभाव प्रकट करते हैं और चाहते हैं कि भविष्यमें भी आप इसी तरह ऐसे ही किसी अन्य महत्त्वके ग्रन्थका संपादन-संशोधन कर, इस राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला की शोभावृद्धि करनेमें हमारे सहभागी बनें ।

वत्सर्कभाषामनुभाषते सः गोवर्द्धनस्तर्ककथासु धीरः ।
तेनानवद्येन सुधांशुगौरी कीर्तिर्गुरुणाममृताधिकाऽस्तु ॥
विजयधीतनुजन्मा गोवर्धन इति श्रुतः ।
वर्कानुभाषं वनुते विविच्य गुरुनिर्मितिम् ॥
श्रीविश्वनाथानुजपद्मनाभाभुजो गरीयान् बलभद्रजन्मा ।
तनोति वर्कानधिगतं सर्वान् श्रीपद्मनाभाद् विदुषो विनोदम् ॥

—देखो श्रीरामकृष्ण गोपालभाटारकरकी, सन् १८८२-८३ की संस्कृतसाहित्यकी खोजविषयक रिपोर्ट-पुस्तक, पृ. २१३.

बलभद्रमिश्र और गोवर्द्धन मिश्र—दोनोंकी रचनाशैली प्रायः समान मालूम देती है । बलभद्रने अपनी तर्कभाषाप्रकाशिकाके अन्तमें जिस प्रकार अपने पिता और माताका नाम निर्देश किया है उसी प्रकार गोवर्द्धन मिश्रने भी अपनी माता और पिताका नामनिर्देश किया है । संभव है कि इस विषयके आधारभूत ग्रन्थोंकी विशेष रूपसे छानबीन करनेपर, उनमेंसे कुछ विशिष्ट प्रकाश प्राप्त हो सके ।

[इन पंक्तियोंका मुद्राक्षर संयोजन हो जाने बाद, राजस्थान पुरातत्त्वमन्दिरके संग्रहके लिये प्राचीन ग्रन्थोंका संचयन करनेवाले पाटणनिवासी पं. अमृतलाल मोहनलालने बलभद्र मिश्रकी तर्कभाषा प्रकाशिका व्याख्या की एक विशेष प्राचीन प्रति हमें उपस्थित की जो वि. सं. १६०७ की लिखी हुई है । इस प्रतिके अन्तमें लिपिभ्ररने अपना परिचय दिया है ।

श्रीमद्विपाठीविष्णुदासतनय—श्रीमदबलभद्र विरचिता तर्कभाषाप्रकाशिका समाप्ता ॥ संवत् १६०७ चैत्र शु. दि. ९ सोमे । अ० हरिनाथयुग नकरेण । लिपितभेदं तर्कभाषायाः टिप्पणकं ॥ शुभं भवतु ॥

इस प्रतिकी स्थिति देखनेसे ज्ञात होता है कि यह किसी विशेष प्राचीन कालीन प्रति परसे प्रतिलिपिके रूपमें तैयार की गई है । अतः इसके आधारसे बलभद्रका समय वि. सं १६०० के पूर्वका तो स्वतः सिद्ध है ।

प्रस्तुत प्रकाशनमें सर्वदेवसूरीकी मूलकृति प्रमाणमञ्जरी और उसपर लिखी गई ३ भिन्न भिन्न व्याख्याएं सम्मिलित की गई हैं। व्याख्याओंकी विविधता आदिके विषयमें संपादक-पण्डितवर्षने, अपने प्रास्ताविक वक्तव्यमें संक्षेपमें यथायोग्य समुल्लेख किया है।

ग्रन्थकार सर्वदेवके समय आदिके विषयमें कोई निश्चित वृत्त ज्ञात नहीं होता है। शास्त्रीजीने अनुमानतः विक्रमकी १४ वीं शताब्दीमें उनके होनेकी कल्पना की है। परंतु हमारा अनुमान है कि सर्वदेव कुछ विशेष प्राचीनकालीन हैं। प्रमाणमञ्जरीकी रचनाशैली विशेष प्राचीन पद्धतिकी है। शिवादित्यकी सप्तपदार्थी और सर्वदेवसूरीकी प्रमाणमञ्जरी ये दोनों वैशेषिक दर्शनके विरिष्ठ एवं समफोटिके प्रकरण ग्रन्थ हैं जिनमें वैशेषिक सूत्रमें प्रतिपादित ६ पदार्थोंके बढते ७ पदार्थोंका सर्वप्रथम प्रतिपादन किया गया मालूम देता है। प्रमाणमञ्जरीकी सबसे प्राचीन हस्तलिखित प्रति काश्मीरमें डॉ. म्युहलरको प्राप्त हुई थी जिसको उनने ११ वीं शताब्दीमें लिखी हुई बतलाई है^१।

इस तरह जब ११ वीं शताब्दीमें लिखी हुई प्रमाणमञ्जरीकी प्रति मिलती है तो फिर इसकी रचना कन से कम इससे पूर्व तो अवश्य ही हुई सिद्ध होती है। सो हमारे अनुमानसे १० वीं शताब्दीके अन्तमें इसका प्रणयन होना संभव है। मालूम देता है कि ग्रन्थकार काश्मीर देशका निवासी है और इसलिये इसकी कृतिका प्रचार कुछ समयके बाद, धीरे धीरे हुआ है। सबसे पहले प्रमाणमञ्जरीका उल्लेख जिसमें मिला है वह है न्यायपरिशुद्धि नामक ग्रन्थ, जिसका प्रणयन वैकटनाथ वेदान्ताचार्यने किया है। वैकटनाथका समय सिखाब्द १२६७-६९ निश्चित रूपसे ज्ञात हुआ है। इस ग्रन्थमें वैकटनाथने एक स्थानपर हेत्वाभासोंकी चर्चा के प्रकरणमें—

श्रीमहाविद्या-मानमनोहर-प्रमाणमञ्जरीति प्रन्यनामधेयानि ।

(देखो, न्यायपरिशुद्धि, चौखम्बाग्रन्थालयमें प्रकाशित, पृ. २०८)

इस प्रकार महाविद्या, मानमनोहर के साथ प्रमाणमञ्जरीका उल्लेख किया है। इसके टीकाकार श्रीनिवासाचार्य, जो प्रायः ग्रन्थकारके ही शिष्य समझे जानेवाले और अतः उनके समकालीन ही माने जानेवाले, ने अपनी 'न्यायसार' नामक टीकामें, इस पंक्तिकी टीका करते हुए लिखा है कि—

'श्रीमहाविद्या-मानमनोहर-प्रमाणमञ्जरीति ग्रन्थनामधेयानि ।' (देखो, वही पुस्तक, वही पृष्ठ)

इससे स्पष्ट है कि यह प्रमाणमञ्जरी प्रकरण ग्रन्थ विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके पूर्व ही यथेष्ट सुदूर दक्षिण तक प्रसिद्ध हो चुका था। इसी तरह प्रसन्नूप भगवान् अथवा प्रसन्न-स्वरूप भगवान् नामक ग्रन्थकार, जो विक्रमकी १४ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध और १५ वीं के पूर्वार्द्धके बीचमें हो गये ज्ञात होते हैं, उनने भी चित्तसुखाचार्य रचिन तत्त्वप्रदीपिका नामक

१ देखो, डॉ. म्युहलरकी काश्मीरमें की गई राज विषयकी रिपोर्ट, पृ. २६; तथा डॉ. वैदालका बनाया हुआ ब्रिटिश म्युजियमके संस्कृत ग्रन्थोंका सूचिपत्र (कैटलॉग) पृ. १२८, नं. ३२५, और इन्दिया ऑफिसके सरल ग्रंथोंका सूचिपत्र, पृ. ६६६, नं. २९७५ विशेष जानबूझके लिये, टॉकिओ (जापान) के सोनोयु कैटलॉग प्रो. ह. उद् की लिखी हुई दशपृष्ठीक अनुपम रूप 'वैशेषिक फिलॉसॉफी' नामक पुस्तक, पृ. १२६. (पादटिप्पणी)

ग्रन्थ पर नयनप्रसादिनी नामक जो व्याख्या लिखी है उसमें दर्शनशास्त्रोंके प्रणेता जिन अनेकानेक ग्रन्थकारों के और उनके ग्रन्थोंके नाम निर्दिष्ट किये हैं उन नामोंमें सर्वदेव और उनके रचित प्रमाणमञ्जरी ग्रन्थका भी नाम उल्लिखित है। इसलिये प्रस्तुत ग्रन्थ उस समयके ग्रन्थकारोंमें सुज्ञान रहा है इसमें कोई संदेह नहीं है।

जैन संप्रदायमें भी प्राचीन कालमें इस ग्रन्थका पठन-पाठन विशेष रूपसे रहा है यह तो इसकी जो अनेकानेक प्राचीन प्रतियां विशेष रूपसे जैन ग्रन्थ मण्डारोंमें ही उपलब्ध होती हैं उसीसे सिद्ध है। अकबर बादशाहके जैन गुरु सुप्रसिद्ध आचार्य हीरविजय सूरिके प्रधान शिष्य विजयसेन सूरिने जिन शैव दर्शनके मुख्य मुख्य ग्रन्थोंका अध्ययन-मनन किया था उनकी नामावलि, उनके जीवनचरितस्वरूप संस्कृत महाकाव्य विजयप्रशस्ति में दी गई है। उसमें तर्कभाषा, सप्तपदार्थी, वरदराजी आदि प्रकरण ग्रन्थोंके साथ इस प्रमाणमञ्जरी का भी नामनिर्देश किया हुआ है। यथा—

तर्कभाषा-सप्तपदार्थी-वरदराजी-प्रमाणमञ्जरी-प्रशस्तपादभाष्य-कणादहस्तादयः दशधर-मणि-कण्ड-कुसुमाञ्जलि-किरणावलि-वर्तमान-तत्त्वचिन्तामणिपर्यन्ताः शैवप्रमाणशास्त्राणि ।

(विजयप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग १, पद्य ९ की टीका)

ऐसा माहूम देता है कि अकंभट्ट रचित तर्कसंग्रह नामक इसी विषयके नवीन प्रकरण ग्रन्थकी अधिक सरल और सुगोष्ठ रचना होनेके बाद उसके पठन-पाठन का प्रचार बहुत अधिक बढ़ा और प्रमाणमञ्जरी जैसे प्राचीन शैलीके ग्रन्थका अध्ययन विद्वत्सत्ता हो गया। और इस कारणसे न्याय-वैशेषिक दर्शनके साहित्यके अभ्यासियों और विवेचकोंको प्रायः इस ग्रन्थके अस्तित्वका भी ज्ञान नहीं माहूम दे रहा है।

इस वस्तुस्थितिका विचार कर, हमने प्रस्तुत ग्रन्थको राजस्थान सरकार द्वारा आयोजित, इस अभिनव 'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला' में प्रकट करनेका प्रथम वर्षके प्रारंभिक कार्यक्रममें ही निश्चय किया था। इस ग्रन्थमालाका प्रधान उद्देश्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं प्राचीन देशभाषामें ग्रथित ऐसे अनेकानेक ग्रन्थोंका उद्धार कर प्रकाशमें लानेका है, जो प्रायः विद्वत्समाजके लिये अलब्ध-अज्ञात-अश्रुतपूर्वसे हैं और जो विशेष करके राजस्थानके अपरिचित एवं उपेक्षित स्थानोंमें नष्ट-भ्रष्ट दंशाको प्राप्त हो कर, कालके कुटिल विवरमें सदाके लिये विलीन हो जानेकी परिस्थितिमें पड़ेचे हुए हैं।

राजस्थान सरकारका यह सव्ययत्न भारतीय साहित्य और संस्कृतिके अनुयायी और उपासकोंके लिये अतीव अभिनन्दनीय है। हमारा प्रयत्न है कि भारतके सर्वोत्तम विकासक्रमकी जो पञ्चवर्षीय योजना बनी है उसीके अन्तर्गत राजस्थान सरकारकी यह साहित्यिक समुद्धारकी सुयोजना भी एक आदर्शरूप कार्य बने।

वैशाख शुद्ध ३, सं. २०१०.
भारतीय विद्या भवन, बंबई }

जिनविजय मुनि

॥ श्रीः ॥

सम्पादकीयं किञ्चित्

*

अधुना येयं श्रीसर्वदेवसूरिविरचिता प्रमाणमञ्जरी टीकात्रयसमलङ्कृता मुद्राप्य प्रकाशं नीयते, सा केवलमूलसूत्रस्वरूपा सामग्रिशदधिकैकोनविंशतिशततमे (१९३७ सन्) ईसवीये वर्षे मुम्बय्यां जगति लब्धप्रतिष्ठे निर्णयसागरसुप्रदणालये प्रथमं मुद्रिता । साम्प्रतमिमां टीकात्रयेण सह परिष्कृत्य सम्पादयितुं राजस्थानीयपुरातत्त्वमन्दिरप्रवर्तकैः पुरातत्त्वाचार्यश्रीमज्जिनविजयमुनिमहोदयैर्निपुक्तोऽहं शोभनेऽस्मिन् कार्ये प्रावर्तिषि । अन्यस्यास्य शोभां परिवर्द्धयितुं शुद्धांश्च पाठान् सन्निवेशयितुं नैकविधान्यादर्शपुस्तकानि प्रावीनान्यासादयम् । तत्र —

- (अ) पुण्यपत्तनस्याद्विद्युताद् भाण्डारकरपुस्तकागारात् (Bhandarkar Institute) प्राप्तमेकं हस्तलिखितमतिप्राचीनं पुस्तकम् 'क' संज्ञितम् ।
- (आ) तस्मादेव प्राप्तमन्यत्तादृशं पुस्तकम् 'ख' संज्ञितम् ।
- (इ) उपाध्यायपदविभूषितेन साहित्यजैनन्यायाचार्येण श्रीविनयसागरमुनिमहोदयेन दत्तमेकं प्राचीनतमं पुस्तकम् 'ग' संज्ञितम् ।
- (ई) तेनैव महोदयेन प्रदत्तमन्यत्पुस्तकं पत्रत्रयात्मकमतिसूक्ष्माक्षरैर्लिखितं 'घ' संज्ञितम् ।
- (उ) बीकानेरत आस्तादितमेकं पुस्तकं 'ङ' संज्ञितम् ।
- (ऊ) मुम्बय्यां मुद्रितं पुस्तकमिति मूलपुस्तकानि पदम् ।
- (ऋ) पुण्यपत्तनस्यपुस्तकागारादेव प्राप्तं बलमद्वटीकापुस्तकमेकम् 'च' संज्ञितम् ।
- (ॠ) जयपुरस्यपुरातत्त्वमन्दिरसञ्चालकैः श्रीमुनिमहोदयैः प्रत्तमेकं बलमद्वटीकापुस्तकम् 'छ' संज्ञितम् ।
- (ल) पुण्यपत्तनतः प्राप्ते श्रीमदद्वयारण्यटीकापुस्तके द्वे 'ज' 'झ' संज्ञिते ।
- (ए) श्रीविनयसागरमहोदयद्वारा प्राप्तमद्वयारण्यटीकापुस्तकम् 'ट' संज्ञितम् ।
- (ऐ) बीकानेरतो लब्धमद्वयारण्यटीकापुस्तकम् 'ठ' संज्ञितम् ।
- (ओ) पुण्यपत्तनतः प्राप्तमेकं वामनभट्टविरचितटीकापुस्तकमिति सप्त टीकापुस्तकानि ।

एष मूलपुस्तकानि सर्वाण्येव प्रायस्शुद्धानि स्पष्टक्षराणि च । व्याख्यापुस्तकेषु बलमद्वटीकापुस्तकद्वयं प्रायोऽशुद्धम् विषमाक्षरम् । अद्वयारण्यपुस्तकानि प्रायश्शुद्धान्येव । वामनभट्टटीकापुस्तकश्चाशुद्धप्राप्यम् । एवमिमानि पुस्तकान्यवलम्ब्य अन्योऽयं टीकात्रयोपेतो वैशेषिकनये प्रविश्वरूपां भाषानामुपकाराय प्रकाशं नीतः

‘काणादं पाणिनीयञ्च सर्वशास्त्रोपकारकम्’ इत्यभियुक्तोक्त्या काणादनयस्य सर्वशास्त्रोपकार-
वात्वे न कस्यापि विप्रतिपत्तिः । तत्र सूत्राणां प्रशस्तपादभाष्यस्यान्येषाञ्चोदयनप्रभृतिभिर्विद्वत्तल्ल-
जैर्विरचितानां ग्रन्थानां दुरधिगमत्वात्तार्किकचक्रवृद्धामणिः ‘श्रीसर्वदेवः दुरुहविषयानोकहसङ्कु-
लेऽस्मिन् काणादकान्तारे सुखेन बालानां प्रवेशसिद्धयेऽतिसरलया शैल्या ग्रन्थमिमं प्रणिनाय ।
अयञ्च सर्वदेवः, ईसवीयचतुर्दशशताब्द्यामासीदिति विमर्शकैरनुमीयते । अस्मिन् ग्रन्थे, कणादा-
भिमतानां सर्वेषां पदार्थानां लक्षणं विभागञ्च सविशेषं निरूपयन् सर्वदेवः शास्त्रे विद्यमानं काठिन्यं
दूरीचकारेति न वक्तव्यं मया । ग्रन्थस्यास्य टीकासु विरोधयमानासु स्पष्टमिदं प्रतीयते—यदत्रैक-
मप्यक्षरं न वृथा प्रयुक्तं सर्वदेवेनेति ।

अस्य ग्रन्थस्य तिस्रष्टीकास्सन्ति । ताः क्रमेण तार्किकशिरोमणिभिः श्रीमदद्वयारण्य—वल-
भद्र—वामनभट्टैर्विरचिताः । इमाश्च टीकाः अल्पीयस्यप्यस्मिन् ग्रन्थे विद्यमानं श्रौढिमानमवद्योतयन्ति ।
तिसृष्वपि टीकासु मूले प्रयुक्तानां पदानां प्रयोजनविचारो विदुषां मनांसि रञ्जयेदित्यत्र न कोऽपि
संशयः । व्याख्यासहितस्यास्याध्ययनेनाध्यापनेन वा न केवलमव्येतुणां किन्त्वध्यापकानामपि
पदार्थविवेचनशैली परिवर्द्धेत इत्यत्र किमु वक्तव्यम् । इदमेवैकं तादृशं शास्त्रम्, यच्च साकं पदार्थ-
ज्ञानेन पदार्थविवेचनचातुरीमपि जनयति । यच्च युक्त्या तत्त्वं परिशीलयति स एव परमार्थतत्त्व-
स्यमवगच्छतीति न मया वक्तव्यम् । ‘न हि प्रतिज्ञामात्रेण वस्तुसिद्धिः’ इति प्राचीनानां यौक्तिक-
शास्त्रनिर्माणे इयान् प्रयासः । पदार्थतत्त्वस्य सत्यपि शब्दसमधिगम्यत्वे युक्त्या तर्केण वा तत्समधि-
गन्तुं लोकानां दृश्यते स्वारसिकी प्रवृत्तिः । अत इदं यौक्तिकं शास्त्रं प्रवर्तितं प्राचीनैः । अमुमेवार्थं
ब्रूयति “श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः” इत्यत्र ‘मन्तव्य’ पदं प्रयुज्जाना भगवती श्रुतिरपि ।
एवमस्मिन् महाफले शास्त्रे बालानां सुखेन प्रवेशसिद्धये श्रीसर्वदेवेन लेखनी व्यापारिता । अल्प-
कायस्यास्य ग्रन्थस्य महत्त्वं संवीक्ष्य तस्य कलेवरं परिवर्द्धयितुं श्रीमदद्वयारण्यप्रभृतयस्तार्किकशि-
रोमणयो हृदयङ्गमाष्टीका अररचञ्जिति धन्योऽयं संस्कृतसमाजः, विशेषतश्च तार्किकसमाजः ।

टीकाकर्तृणां पौर्वापर्ये समये च विमृश्यमाने ममेदं प्रतिभाति—यद्वलभद्रमिश्रः ‘केचित्’
‘अत्र केचित्’ ‘इति केचन’ इत्येवं तत्र तत्र गतग्रन्थेषु खण्डयति । इगानि च मतानि अद्वयारण्य-
वामनभट्टटीकायोस्तमुपलभ्यन्ते । अतो, वलभद्रस्तृतीयकोटौ निवेष्टुमर्हति । वामनभट्टस्तु प्रायोऽद्व-
यारण्यटीकामेवानुवर्तते । इथांस्तु विशेषः—अद्वयारण्यटीका विस्तृता, वामनभट्टस्य तु तस्या एय
सङ्क्षेपरूपा टीकेति । तत्रापि वामनभट्टः—‘शाक्रे बाणगजत्रिचन्द्रगणिते वर्षे (१३८५) सुभानौ
शुभे’ इति समर्थं ग्रन्थस्यान्ते निर्दिशन् स्वस्य ईसवीयपञ्चादशशताब्दीमध्यवर्तित्वं कथयति । एवञ्चा-
द्वयारण्यः प्रथमः, वामनभट्टो द्वितीयः, वलभद्रस्तु तृतीयः, सिध्यतीत्येतदेवात्र वक्तुं पार्यते, विशेषतस्तु
निर्णये विमर्शका एव प्रमाणमिति ।

अत्युत्तमस्यास्य ग्रन्थस्य प्रकाशनमत्यावश्यकमिति मन्वाना राजस्थानीयपुरातत्त्वमन्दिरसंप्रति-
ष्ठापकास्तत्सञ्चालनकर्मण्यहोरात्रं निरताः प्राचीनग्रन्थप्रकाशने तदन्वेषणे च सुलब्धप्रतिष्ठाः श्रीमुनि-
जिनविजयमहोदया मामस्मिन् शोभने धर्मेणि न्यययुजन् इति तानहं कोटिशो धन्यवादपरम्पराभिः

परिपूरयामि । नैकविधानां पुरातत्त्वावशेषाणामाकरे राजस्थानमहाराज्ये तत्र तत्र निलीनानां संह्या-
तीतानां ग्रन्थरत्नानां परिष्करणं प्रकाशनञ्च येषां समुद्रोधनेन चै राज्यमञ्चि-सचिवप्रभृतिभिर्गदार्थं
तेभ्यस्तर्वायामधमर्णस्तंस्कृतसमाजः । एवमेव ते तानि तानि ग्रन्थरत्नानि परिष्कृत्य सर्वत्र विसृम-
राभिस्तत्प्रभाभिः भगवती भारती भारतभुवञ्च सर्वा समुदीपयेयुरित्याशासे ।

अस्य च ग्रन्थस्यादर्शपुस्तकैरतिजटिलाधारेस्सह संवादनादिकार्येषु खनियमानुल्लङ्घयापि
नितान्तमुपकृतश्चे जैनन्यायसाहित्याचार्याय उपाध्यायपदविभूषिताय श्रीविनयसागरमुनिमहोदयस्य
हार्दिकान् धन्यवादान् वित्तामि । एवं संशोधनपाण्डुलिपिसम्पादनादिकार्ये मदन्तेशसिना
मीमांसाचार्येण साहित्यरत्नेन च श्रीमदनलालशर्मणा मण्डनमिश्रापरनामधेयेन जयपुरमहाराज-
संस्कृतकॉलेजाध्यापकेन चिरायुषा सुबहु परिश्रान्तमुपकृतञ्चेति तमाशीर्वचोभिः पूरयामि ।

अस्य ग्रन्थस्य शोभां परिवर्द्धयितुं साधुपाठानामभावेन जनितं क्लेशञ्च दूरीकर्तुं बहुमूल्या-
न्यादर्शपुस्तकानि सदयं प्रेषितवद्भ्यो ह्येङ्गवीनद्वयेभ्यः पुण्यपत्तनस्य भाण्डारकरपुस्तकागारमणि-
(सेक्रेटरी) महोदयेभ्यश्शतशो धन्यवादान् संवितीर्गन्ते सर्वानेव विपश्चिदपक्षिमान् सम्प्रार्थये-
यत्सावधानेन मनसा शोधितेऽप्यस्मिन् ग्रन्थे मनुष्पमात्रमुल्लमा अशुद्धपोऽवश्यं भवेयुः ता अपरि-
गण्य यदि कश्चन गुणलवत्स्यार्चिं तद्वहणेन मामनुगृहीयुरिति ।

फलिकाता.

१२-१२-१९५२

विद्वज्जनवशंवदः

पद्मभिरामशास्त्री विद्यासागरः

प्रमाणमञ्जर्या विषयसूची

विषयाः

मद्रलम्

पदार्थलक्षणं तद्विभागश्च

द्रव्यलक्षणं तद्विभागश्च

पृथिवीलक्षणं तद्विभागश्च

परमाणुलक्षणम्

पृथिवीपरमाणुः अणुकञ्च

पार्थिवमणुकम्

शरीरसामान्यलक्षणम्

पार्थिवशरीरं तद्विभागश्च

अयोनिजशरीरानुमानम्

इन्द्रियसामान्यलक्षणम्

पार्थिवमिन्द्रियं विषयाश्च

जललक्षणं तद्विभागः, जलीयशरीरम् इन्द्रियञ्च

तेजोलक्षणं तद्विभागश्च

नयनेन्द्रिये प्रमाणम्

तमसोऽद्रव्यत्वरूपणम्

वायुलक्षणं तद्विभागश्च

वायोः प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वविचारः

आकाशरूपणम्

आकाशस्य नित्यत्वम्

काललक्षणं तत्र प्रमाणञ्च

दिग्गलक्षणं तत्र प्रमाणञ्च

दिक्कालयोस्समुच्चित्यप्रमाणम्

दिक्कालयोस्सर्वकार्यनिमित्तत्वम्, सर्वगतत्वञ्च

भारमनिरूपणं तद्विभागश्च

ईश्वरज्ञानादेस्सर्वव्यापित्वम्

औबैक्यनिरासः, तस्य सर्वगतत्वञ्च

मनोलक्षणं तत्र प्रमाणञ्च

गुणलक्षणं तद्विभागश्च

रूपरसगन्धस्पर्शः

रूपादीनां विभागः, तेषां यावद्द्रव्यभावित्वञ्च

अयावद्द्रव्यभावित्वो गुणाः

सङ्ख्यालक्षणं तद्विभागश्च

द्वित्वसिद्धिः, द्वित्वस्यापावद्द्रव्यभावित्वञ्च

संख्याया यावद्द्रव्यभावित्वे प्रमाणम्

पृष्ठम्

विषयाः

१ परिमाणलक्षणं तद्विभागश्च

२ धृयस्त्वलक्षणं तद्विभागश्च

५ संयोगलक्षणप्रमाणविभागः

६ विभागलक्षणप्रमाणविभागः

७ परत्वापरत्वयोर्लक्षणं प्रमाणञ्च

८ बुद्धिः तद्विभागः, अविद्यात्मिका बुद्धिश्च

९ विद्यात्मिका बुद्धिः, सविस्तृप्तबुद्धिश्च

१० निर्विकल्पकबुद्धिः

११ लैङ्गिकीबुद्धिः, अन्वयप्यतिरेकरूपणञ्च

१२ हेत्वाभासलक्षणं तद्विभागश्च

१३ शब्दार्थापरत्युपलब्धीनामन्तर्भावविचारः

१४ स्मृतिनिरूपणम्

१५ मुक्तदुःखनिरूपणम्

१६ इच्छा तद्विभागो द्वेषश्च

२० प्रयत्नलक्षणं तद्विभागश्च

२२ गुरुत्वलक्षणं तद्विभागश्च

२३ द्रवत्वलक्षणं तद्विभागश्च

२४ खेहलक्षणम्, तस्य यावद्द्रव्यभावित्वं च

२५ संस्कारलक्षणं तद्विभागस्तत्र वेगश्च

२६ स्थितिस्थापकः भावना च

२९ धर्माधर्मौ

३२ शब्दलक्षणं तस्यानित्यत्वं गुणत्वञ्च

३३ शब्दस्य नित्यत्वशङ्का तत्परिहारश्च

३४ शब्दविभागः

३५ कर्मणो लक्षणं तस्य प्रत्यक्षत्वञ्च

३७ कर्मणोऽप्रमवायिकारणत्वाभावशङ्का,

तत्परिहारश्च

३८ सामान्यलक्षणम् तत्र प्रमाणञ्च

३९ सामान्यस्यावस्तुत्यशङ्का तत्परिहारः,

परसामान्यमपरसामान्यञ्च

४३ विशेषनिरूपणम्

४५ समवायनिरूपणम्

४६ अभावलक्षणं तद्विभागश्च

४९ मोक्षः, तत्र प्रमाणञ्च

पृष्ठम्

५०

५२

५३

५५

५७

५९

६१

६२

६३

६४

६७

६८

६९

७०

७१

७२

७७

७७

७८

८०

८१

८२

८३

८९

९०

९२

९४

९६

९९

१०१

१०३

१०४



तार्किकचूडामणि - श्रीसर्वदेव - विरचिता

प्रमाणमञ्जरी

कासारतीरसरसीरुहमाददानः

शुभ्रं भ्रमद्भ्रमरमध्यमिवेन्दुविम्बम् ।

द्वैमातुरश्चिरतरं भवतस्स पायात् ।

सञ्जातनिर्मलजलप्रतिबद्धनर्मा ॥ १ ॥

धोवलमद्भिरचिता टीका

[व. टी.] नत्वा हरिपदं मत्वा गुरोरर्थं प्रयत्नतः ।

प्रमाणमञ्जरीटीका बलभद्रेण तन्यते ॥ १ ॥

निर्विघ्नग्रन्थपरिसमाप्तिकामनया कृतं मङ्गलं शिष्यशिक्षायै निबध्नाति-
कासारेति । द्वैमातुरः द्वे मातरौ अर्थे स तथा गणेशः भवतः श्रोतृन् चिरं पायात्,
स विघ्नसंहारकत्वेन यतः प्रसिद्धः । स्तुतिरूपं मङ्गलमाचरति-सञ्जातेति ।
एतावता हर्षविशिष्टतया स्मृता देवता फलं ददातीति द्योतितम् । सञ्जातम् अभिनवम् ।
यद्वा सञ्जातं चन्दनादिना संस्कृतम्, एतादृशं यजलं तत्रारण्यं नये क्रीडा येन । जल-
क्रीडायां यदुचितं तदाह-कासारेति । कानां जलानाम् आसारः आगमनं यत्र स
कासारः तडागः । यद्वा इषदासारः कासारः अल्पसरः, अल्पसरसि एतन्नीरसमीपजातं
यत्सरसीरुहं कमलम् । कीदृशम् ? शुभ्रम् । पुनः कीदृशम् ? भ्रमद्भ्रमरमध्यं मध्ये
भ्रमरेणाक्रान्तम् । आददानः शुष्णदण्डेनाकर्षणं । आदधान इति पाठे विभ्रदित्यर्थः ।
भ्रमत् कम्पमानं, यद्वा भ्रमद्भ्रमरमध्यमित्येकमेव पदम्, भ्रमत्क्रियाविशेषविशिष्टो
भ्रमरो यत्र तद्भ्रमद्भ्रमरं तादृशं मध्यं यस्य तस्यथा । केचित्तु ध्यानरूपमेव मङ्गलं
शिष्यापोपदिष्टमुपमानयत्वेन उत्प्रेक्षावलेन वा ध्यानान्तरमाह-इन्दुविम्बमिवेत्याहुः ।
एतावता गगने नाट्यासक्तो विघ्नराजः करेण शशिमण्डलं कर्षणं ध्येय इति भावः ।
केचित्तु ध्यानं यद्यपि मङ्गलं न भवति, तथापि प्रायश्चित्तबहुस्तिनिवर्तकं भवतीत्याहुः ।

श्रीमद्वद्यारण्यविरचिता टीका

[अ. टी.] हेरम्ब संहर विमो तरसान्तरायवर्गं न भर्गवनयात्र तवोपचारः ।

यद्विघ्नमूलस्वननाथ विपाणहस्तः सन्तर्कितोऽसि भगवन् स्वयमुद्यतस्त्वम् ॥

१ नर्मेति छ. २ य यत्त इति च. ३ ग्रन्थेति नास्ति छ. ४ यत्वेति छ. ५ कारत्वेनेति छ.
६ अल्पसर इति नास्ति छ. ७ तद्योरे समीपे इति छ. ८ एकं पदमिति छ. ९, १० छलेनेति च.

अद्वयानुमवाचार्यपरिचर्याविधायिना ।

प्रमाणमञ्जरीव्याख्या मुनिना सम्प्रणीयते ॥ २ ॥

सं श्रीमानद्वयारण्यस्सुखबोधाय धीमताम् ।

प्रमाणमञ्जरीटीकां सन्दर्भं नवामिमाम् ॥ ३ ॥

विद्यारम्भे मङ्गलमाचरणीयम्, “स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः”, इत्यादिवैदिकमङ्गल-
च्छिष्टैरनुष्ठितत्वाच्च नास्ति तेषाममङ्गलमिति देवतानुस्मृतिलक्षणक्रियाजनितधर्मस्य “सर्वारम्भा
हि दोषेण धूमेनाग्निरिवाद्युताः” इति शास्त्रसिद्धारम्भदोषनिवर्तकत्वात्, “धर्मेण पापमप-
नुदति” इति श्रुतेश्च । ततस्सप्रमाणकत्वात्सप्रयोजनत्वाच्च ग्रन्थारम्भे, मङ्गलमाचरति-
कासारेति । द्वैमातुर इत्यत्र मातृशब्दगतस्य ऋ इति स्वरस्य अणि प्रत्यये उरि (उदि ?)-
त्यादेशविधानात् द्वयोर्मात्रोरपत्यं गजाननस्तद्वैमातुर इति पदं निष्पद्यते, ऋ उरणीत्य-
नुस्मरणात् । द्वैमातुरो गणेशः भवतः श्रोतृन् चिरतरं कालं पोषात् रक्षतीति, “स्वस्ति वः
पाराय तमसः परस्तात्” इति श्रोतृन् प्रत्याशीः श्रुतेश्च । स प्रसिद्धो यस्माद्विभेद्यज्ञाणहेतुत्वेन
देवतापि दृष्टाकारेणानुस्मृता कार्यकरीति द्योतयितुमाह-सङ्गातेति । सङ्गातमभिनवं संस्कृतं
चन्दनादिना, विमलं यद्गङ्गाजलं तस्मिन् प्रतिपद्यम् अन्वारब्धं नर्म क्रीडा येन स तथा ।
जलक्रीडाचितव्यापारमाह-कासारेति । कासारः कानां जलानामासरणमागमनं, यत्र, स
तडागः कासार ईयुष्यते मानसादिसमाह्वयः । तस्य तीरसमीपस्य सरसीरुहं कमलम् ।
तच्च शुभ्रं पाण्डुरं भ्रमरमध्यं मध्ये भ्रमरेणाक्रान्तम् आददानं औहरन् आकर्षन् शुण्डादण्डेन
तेन भ्रमत्कम्पमानम् । एवमेकं ध्यानमुक्त्वोपमानच्छलेन ध्यानान्तरमाह-इन्दुबिम्बमि-
वेति । गगने कासारवर्त्येणाङ्गमण्डलवद्विराजमानमित्यर्थः । नभसि नाट्योत्सक्तः चन्द्रमण्डलं
करेणाकर्षन् ध्येयो विघ्नराज इत्यर्थाच्छात्रेभ्यो ध्यानोपदेशोऽपि ग्रन्थप्रचारेण निर्विघ्नत्वाय ।

धीयामनमद्विरचिता भगवदीपिकाव्याख्या

[वा. टी.] पुरन्दरदलत्रेतरत्ननीराजनीकृतम् । वन्दे लम्बोदरोदारपदद्वन्द्वसरोरुहम् ॥ १ ॥

भट्टवामनसंज्ञेन तुलसीकृष्णसूनुना । प्रमाणमञ्जरीव्याख्या क्रियते भावदीपिका ॥ २ ॥

विशिष्टशिष्टाचारप्रमाणकं श्रौतीक्षितग्रन्थस्वादिप्रतिपत्तिप्रयोजनजद्विशिष्टदेवतानुस्मृति-
पूर्वकमाशीर्लक्षणं मङ्गलमाचरति-कासारेति । चन्दनादिसंस्कृतानाविलजलजातखेदो गण-
पतिः । सितमन्तर्भ्रमद्विरेफम् । अत एवैणाङ्गबिम्बमिव जलाशयतीरपुण्डरीकं गृह्णन् भवतश्चिरतरं
पालयतु । अनेन दृष्टा चिन्तिता देवता कार्यकरीति इष्टप्रदत्वं सूचितम् ।

१ पद्यमिदं ज. झ. पुस्तकयोर्नास्ति. २ विनिवर्तयेति ज. ट. ३ चेति नास्ति ज. ट. ४ प्रमाण-
स्वादिति ज. ट. ५ इत्यत्रेति नाम्नि ज. ट. ६ सन्दर्भेति ज. ट. ७ द्वे मातुरौ यस्य सं द्वैमातुर
इति ज., द्वे मातुरौ यस्य गजाननस्य तदपत्यत्वात्स द्वैमातुर इति ट. ८ अन्विति नास्ति ज. ट.
९ यावदिति ट. १० रक्षतादिति नास्ति ट. ११ कर्तृत्वेनेति ज. ट. १२ गङ्गादीनि ज. ट.
१३ कासार इति नाम्नि झ. १४ इनीनि नास्ति ज. ट. १५ आहरन्निति नास्ति ज. १६ सेनेति
नास्ति झ. १७ कासारवर्त्येति झ. ट. १८ मण्डलमिवेति ट. १९ संसक्तमित्येव झ.

अभिवन्द्य विधोर्द्धधारिणश्च कणव्रतम् ।

प्रमाणमञ्जरी सर्वदेवेन क्रियते मया ॥ २ ॥

[व. टी.] बहुतरविधनिवारणाय विद्याधिगतात्तरीश्वरम् एतच्छास्त्रप्रणेतुकणादमुनिश्च नमन् अभिधेयं निर्दिशति-अभिवन्द्येति । प्रमाणं प्रकृतं शास्त्रम् । तत् पादपस्थानीयम् । तस्यैव सञ्जरी बह्वरी अभिनवपल्लवस्थानीयेति भावः ।

[अ. टी.] इदानीं विद्याधिपतिवीथरं प्रवर्तनीयविद्यास्वातक्याय कणादमुनिश्च तदीयशास्त्र-
सरोद्धारचतुस्रप्रक्रियायां वाक्चेतसोरस्वल्लोभाय प्रणमन् यदुद्दिश्य मङ्गलचरणं कृतं तन्निर्दि-
शति-अभिवन्द्येति । विष्णुश्चन्द्रः । प्रमाणं तर्कशास्त्रम् । तच्च बुद्धिस्थं काणादम् । तस्य
मञ्जरी बह्वीर्यं । कणादपदपञ्चाशीदजगत्सागिन्नुपपत्त्यानीभयं प्रक्रियेत्यर्थः । ननु किमत्र
प्रतिपाद्यम् ? भागाभाष्यदर्शनात् चेत्-गोत्रानाम् गन्तव्यं, तत्रापि प्रमाणादिभावाभाव-
पदार्थवर्णनं दृश्यते (युतः) । सत्यम् ; तथापि पदेव भावाः, द्वे एव प्रमाणे इत्यादि महत्तरा-
वान्तरभेदेनापुनरेर्यता । अन्यथैकस्मिन्तन्त्रे स्वमतशुद्ध्यर्थं सर्वतन्त्रार्थोपन्यासादन्यानास्म-
प्रसङ्गात्, तदनास्मिन् च सर्वं स्वतन्त्रमेवेति पूर्वपक्षसिद्धान्तभेदेनार्द्धं ग्राह्यमर्द्धमग्राह्य-
मित्यर्द्धजरतीयन्यायेनाप्रामाण्यप्रसङ्गादेकमपि तत्र नारभ्येत । अतो वैशेषिकतन्त्रारम्भसिद्धौ
तत्प्रकरणारम्भोऽपि निश्चलः ।

[वा. टी.] 'ईश्वराज्ञानमिच्छेत्' इत्यादिस्मृतेरीश्वरस्यापि विद्याप्राप्तावतिशयगत्वावगमात् नमन् कणा-
दशास्त्रप्रकरणं चिकीर्षुराचार्यस्तच्छास्त्रप्रणेतारं कणादनामानञ्च मुनिं नमन् चिकीर्षितं प्रतिजा-
नाति—अभिचन्द्येति । विधुश्चन्द्रः । अर्द्धशब्दश्चात्र कृत्वा मात्रवाची.....त्युक्त्वा क्रियमाणस्य
निर्दोषत्वं सूचितम् । प्रमाणमङ्गुरिति ग्रन्थनाम । निश्चीयन्तेऽर्था अनेनेति प्रमाणमिति प्रमाणशब्द-
प्रतिपाद्यस्य बुद्धिस्थकणादशास्त्रस्य कल्पपादपत्वेनाभिमतस्याभिनवप्रबालशास्त्रास्थानीयेयं कृतिरिति
ग्रन्थकृदाशयः । अनेन श्रोतृप्रवृत्त्यङ्गभूतमेतद्व्यावान्तरविषयादिकमपि सूचितम्—स्वपदार्थं
'तद्भानतत्कामादि । *

(पदार्थलक्षणं तद्विभागश्च)

अभिधेयः पदार्थः ।^{१३} स भावाभावभेदेन द्विधा पूर्वा^{१४} विधिविपयः ।
स पोषा, द्रव्यादिभेदेन ।

१ गर्भं इति सु. २ शर्वदेव० इति. सु. पा. ३ निवर्तनायेति च. ४ बलुरिति नास्ति छ.
५ यदर्थमिति ज. ट. ६ कृतमिति नास्ति ज. ट. ७ पदार्थौ इति नास्ति श. ८ यत् इति नास्ति ॥
९ मेदादग्राण्येति च. ट. १० स्वाज्यमिति श. ११ नारमेव इति ॥. १२ निश्चित इति ट.
१३ रेभावा इति ख. १४ मेदादिति क. ख.^१ १५ द्वेधा इति ख. १६ पूर्व्व इति ख.

[व. टी.] विशेषलक्षणानि कर्तुं पदार्थसामान्यलक्षणमाह-अभिधेय इति । अभिधा शब्दः, तच्छक्तिर्वा, तद्विषयत्वं पदार्थलक्षणम् । तेन नोभिधापदवैयर्थ्यम् । यद्वा नेदं लक्षणम्, व्यावृत्त्यभावात्, किन्तु पदार्थपदप्रवृत्तिनिमित्तम् । प्रवृत्तिनिमित्ते च वैयर्थ्यं न दोष इति भावः । उद्देशस्तु पदार्थपदेन द्योतितो हृदिस्यो बोध्य इति । विशेषविभाग-माह-स इति । पूर्व इति । भावरूपः । स इति । विधिविषय इत्यर्थः । तथा च भावत्वं भावत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वं वा भावलक्षणं सूचितं भवति ।

[अ. टी.] अत्र काणादोक्ताः पदार्थाः सामान्यविशेषरूपाभ्यां संक्षेपतो बालबुद्धिव्युत्पादनाय लक्षणप्रमाणरूढा निरूप्यन्ते । ततः पदार्थसामान्यलक्षणं तावदाह-अभिधेय इति । अभिधाशब्दः तद्विषयोऽभिधेय इति लक्षणम् । पदार्थ इति लक्ष्यनिर्देशः । पर्यायत्वेऽपि लक्ष्यलक्षणभावो दृष्टः । प्रमाणमनुमूतिः, खं छिद्रमित्यादौ, ततोऽभिधेयपदार्थयोः पर्यायत्वात् न लक्ष्यलक्षणभाव इति नाशङ्कनीयम् । नाम्ना निर्देश उद्देशः । स च पदार्थानाम-निर्देशेनात्र लक्षणे सङ्गृहीतः । लक्षणव्यासाधारणरूपनिर्देशः । ननु वन्ध्यापुत्र इत्यादि-शब्दाभिधेयत्वेऽपि पदार्थत्वं नास्तीत्यतिव्याप्तिर्वन्ध्यापुत्रादौ । पदार्थो हि भावाभावात्मकः प्रमाणसिद्ध आश्रीयते । न च वन्ध्यापुत्रादौ प्रमाणमस्ति । मैवम्, प्रमाणशास्त्रे प्रमेयत्व-सहचरितस्यैवाभिधेयत्वस्य विवक्षितत्वात् । एतज्ज्ञापनायैव प्रमाणमञ्जरीति संज्ञोक्ता । तस्य च वन्ध्यापुत्रादावभावात्तातिव्याप्तिरित्यादिन्यायप्रमाणभ्यामवस्थापनं परीक्षा । प्रकार-भेदकथनं विभाग इति चतुर्था निरूपणम् । ततो विभागमाह-स भावाभावभेदादिति । सशब्दः पदार्थपरामर्शः, प्रमाणेनानुभवनादभावोऽपि भावशब्देनाभिधातुं शक्यते । ततः कथमयं विभाग इत्याशङ्कानिरासार्थं भावलक्षणमाह-पूर्वं इति । अनन्पूर्वकशब्दो विधिः । यथा द्रव्यं गुण इत्यादि । नास्तीति, शब्दमात्रम्, येनाभावोऽस्तीत्यभावस्यापि विधिविषयत्वादिति व्याप्तिराशङ्केत । अभावस्य प्रतियोगिभावनिरूपणापेक्षत्वात्तमुपेक्ष्य भावस्य विभागमाह-स षोडशेति । द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाः पद पदार्थाः । इत्याचार्यवचनेऽपि पदार्थशब्दस्तदेकदेशभूतभावविषयः । तथा च लीलावतीकारः-

भावत्वाधिष्ठिताः सर्वाः प्रत्येकं व्यक्तयो भताः ।

द्रव्यादिपट्टविच्छेदमेलकेन विवर्जिताः ॥

इति । ततो न सूत्रादिविरुद्धोऽयं भावविभागः ।

१ विषयत्वमेवात्र लक्षणम् । अत्रैवकारः प्रमापदव्यवच्छेदक इत्यधिकं च. २ नाभिधेयवैयर्थ्यमिति छ. ३ प्रवृत्तिनिमित्तमिति नास्ति छ. ४ स इतीति नास्ति छ. ५ भासमानवैशिष्ट्यप्रतियोगित्वं प्रका-रत्वम् विरोपणविरोप्याभ्यां युक्तं वैशिष्ट्यमिति 'च' पुनरुक्तिष्णो. ६ तत्रेति झ. ७ एतदिति ज. ट. ८ नास्तीत्यत इति ज. ट. ९ द्योतनायैवेति ज. ट. १० व्यवस्थेति ज. ट. ११ द्रव्यगुण इति झ. १२ अतिव्याप्तिमाशङ्केत इति ज. १३ भावविभागमिति ट. १४ कार इति नास्ति ज. ट.

[वा. टी.] अत्र काणादोक्तं पदार्थतत्त्वं प्रतिपिपादयिपुराचार्यो विना सामान्यलक्षणं विशेषलक्षणा-
प्रवृत्तेर्लक्ष्यनिर्देशेनैवोद्देशं भवान्नः पदार्थसामान्यलक्षणं तावदाह—अभिधेय इति । अभिधीयते
प्रतिपाद्यतेऽर्थोऽनेनेति अभिधा वाक्यात्मकः पदात्मकशब्दो वा । तेन प्रतिपाद्यः, तस्य विषयोऽ-
भिधेय इति । ननु खपुष्पमिति शब्देन खपुष्पमभिधीयते । न च तत्र पदार्थत्वम् । तेनातिव्याप्ति-
रुद्धता । अयमर्थः—खपुष्पमिति वाक्येन खसंसृष्टं पुष्पं प्रतिपाद्यते । न च तत्प्रमाणगोचरो येन
लक्ष्यकोटिनिविष्टं भवेत् । ननु मा भवतु प्रमाणगोचरः, न हि प्रमाणगोचरः पदार्थ इति
लक्षणम् । किन्तर्हि? अभिधेय इति (न च वाक्यम्?) पद्यते गम्यतेऽर्थोऽनेनेति पदं प्रमा-
णम्, तस्यार्थो विषय इति पदार्थशब्दव्युत्पत्तेरेव प्रमाणगोचरत्वस्य पदार्थस्वरूपत्वेन वा पदार्थ-
शब्दप्रवृत्तिनिमित्तेन वावश्यं वक्तव्यत्वात् । न चैतदस्ति; तथा च स्पष्टैशान्तिव्याप्तिरिति ।
उच्यते—विग्रहवाक्यं विना खपुष्पमिति समासवाक्यात्संसर्गप्रतीतिर्विग्रहसहकारितद्बोधकं वाक्यम्,
यत्तत्समासश्च विग्रहार्थे (प्रमाणम्), प्रमाणमन्तरेण च तत्तापुष्पस्य खसंसर्गप्रहात् खे पुष्पमिति
विग्रहायोगाच्च पुष्पं नास्तीत्यन्ताभावबोधकविग्रहार्थे समासोऽङ्गीकर्तव्यः.....त्यर्थो-
धकविग्रहवाक्यार्थे चन्द्राननसमासवत् । तथा च खपुष्पमिति वाक्यस्य खे पुष्पात्यन्ताभाव इत्यर्था-
वधारणात्तस्य च पदार्थत्वान्तिव्याप्तिः । ननु तर्हि खे पुष्पं नास्तीति निषेधानुपपत्तिरिति चेत्—न;
गृहीतावपवादार्थस्य पुंसः समासाद्वाजपुरुषादिवत्सामान्यतो ह्येन प्रसक्तसंसर्गप्रतीतिनिषेधार्थवादस्य
निषेधवाक्यमेवेति । यद्वा चन्द्राननवाक्यार्थक्यनार्थे चन्द्र इवाननमिति विग्रहवाक्यवत् समस्तख-
पुष्पवाक्यार्थक्यनार्थे खे पुष्पं नास्तीति विग्रहवाक्यमेतदिति न कश्चिदोपशङ्कावकाशः । नाप्य-
व्याप्तिः, यस्य कस्यापि पदार्थस्य शब्दगोचरत्वादेव । असम्भवस्तु असम्भावित एवेति सर्वं
सुखम् । अत्र प्रयोगे कर्तव्ये भगविषयो दृष्टान्तः, तस्य यस्मिन्नैकितयरीतिणां बुद्धिसाम्यं
दृष्टान्त इति दृष्टं तल्लभनीयत्वात् । न च धर्मिहेतुदृष्टान्ताः प्रामाणिका इति प्रमाणविषयस्यैव
दृष्टान्तत्वम्, तस्य सन्दिग्धे न्यायप्रवृत्तिरिति प्रायिकत्वात्, अङ्गीकृत्येदमिह लक्षणत्वेन
व्युत्पादितम् । यस्तत्तल्लभ साधर्म्यमेव, इतरयोर्करीत्या केवलान्यपि भङ्गप्रसङ्गो दुर्निवार इति ।
नवर्णानुल्लेखयोगिसापेक्षत्वादभावकमुपैक्ष्य भावं विभजते—स पोदेति । विभागो नाम—उद्दिष्ट-
स्यैतया कथनम् ।

*

(द्रव्यलक्षणं तद्विभागश्च)

तत्र समवायिकारणं द्रव्यम् । तन्नवधा, पृथिव्यादिभेदेन ।

[व. टी.] तत्रेति । कारणत्वं गुणादावतिप्रसक्तमिति तद्धारणाय समवायीति । जाति-
समवायित्वं गुणादावपीति कारणत्वमुक्तम् । यद्यपि रूपं यत्किञ्चित्समवायि यत्किञ्चि-
त्कारणञ्च, तथापि स्वसमवेतकारित्वमित्यर्थः । स्वसमवायिकारणत्वयोग्यतान्नं विवक्षिता,
तेन प्रथमे क्षणे घटादौ नातिव्याप्तिः ।

[अ. टी.] द्रव्यादिभेदेन पङ्क्तिर्भावपदार्थ इति विभागं कुर्वतैव द्रव्यादेरुद्देशः कृतः । ततो यथोद्देशलक्षणमाह-तत्रेति । यद्यपि तत्रेत्यनुक्तावपि द्रव्यलक्षणं न दुष्यति, अव्याप्त्यभावात् । तथापीतरेषां द्रव्याश्रितत्वेन द्रव्यस्य प्राधान्यद्योतनार्थं तत्रेत्युक्तम् । यद्यपि प्रथमं द्रव्यनामग्रहणेन तस्य प्राधान्यं द्योतितम्, तथापि तैत्रैकान्तिकम्, 'प्रमाणप्रमेय०' इत्यादि-सूत्रे प्रमेयं प्रति गुणभूतस्य प्रमाणस्य प्रथमं ग्रहणात् । कार्यस्य समवायो भवन् यत्रैव भवति तत्समवायिकारणम्, तद्व्यम् । एतेनोत्पन्नमात्रे द्रव्ये कार्यकारणयोनिर्यतपूर्वोत्तर-क्षणवर्तित्वात्कार्यसमवायाभावेनाव्याप्त्याशङ्का निरस्ता । न च गुणादेरपि संख्यागुण-समवायिकारणत्वादतिव्याप्तिः, उभयसम्प्रतिपत्त्यभावात् । न चाघातितत्त्ववहारेण सम्प्रति-पत्तिः, दूषणवादिनो वेदान्त्यादेरपि तत्प्रसङ्गेन द्वैतापातात् । अत्र च निमित्तासमवायि-कारणगुणादिव्यवच्छेदार्थं समवायिपदम् । परकीयलक्षणे दूषणानुसन्धानेन स्वलक्षणे सम्प्रतिपत्तिं सम्पाद्यैव व्यवच्छेदक्रमो द्रष्टव्यः । यथा स्वतन्त्रं द्रव्यमिति द्रव्यलक्षणे स्वातन्त्र्य-मनाश्रयत्वं चेत्कार्यद्रव्येऽव्याप्तिः । आश्रयोपलम्भनिरपेक्षोपलम्भश्चेदन्धादावतिव्याप्तिरिति दूषिते समवायिकारणं द्रव्यमिति लक्षणे सम्प्रतिपत्त्यापादनम् । एतेन गुणाश्रयो द्रव्यमित्यपि लक्षणं निर्दुष्टतया व्याख्यातम् ।

[बा. टी.] समवायिकारणमित्यत्र स्वसम्बन्धेत्कार्योत्पादकमिति विवक्षितम् । तेन समवायि च तत्कारणं च समवायिनः कारणं समवायिकारणमिति विकल्पान्मां यातिव्याप्तिस्तां परिहृता भवति ।

*

(पृथिवीलक्षणं तद्विभागश्च)

तत्र गन्धघटी पृथिवी । सा द्वेधा, पृथिव्यादिभेदेन ।

[ब. टी.] गन्धघटीति । यद्यपि प्रथमे क्षणे गन्धो नास्तीत्यव्याप्तिः, तथापि गन्धात्यन्ता-भावविरोधिमतं विवक्षितम् । स च विरोधी गन्धतत्प्रागभावतत्प्रध्वंसैरूपः । तदन्यत-मतं च न गन्धात्यन्ताभाव इति नातिव्याप्तिः । यद्वा गन्धात्यन्ताभावानधिकरणमेव लक्षणम् । न च गन्धात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तिः, गन्धात्यन्ताभावे गन्धो नास्तीति प्रतीति-बलेन गन्धात्यन्ताभावे गन्धात्यन्ताभावस्य सत्वात् । अन्यथा तत्र गन्धतत्प्रागभावादिव-र्वर्तेत । यत्र यदत्यन्ताभावो नास्ति तत्र तद्विरोध्यस्ति इत्यतिव्याप्तिः । ॥ च गन्धात्य-न्ताभावे गन्धात्यन्ताभावोऽधिकरणस्वरूपो वा, वैधर्म्यं वा अभावान्तरमेव वा इत्यन्य-देतदिति दिक् । यद्यपि सुरम्यसुरभिकपालारब्धे घटे गन्धतत्प्रागभावतत्प्रध्वंसा न सन्ति, तथापि गन्धयोग्यता विवक्षिता, सा च पृथिवीत्वमेव ।

१ भयो इति ट. २ तत्रैकमिति झ. ३ प्रमाणस्येति नास्ति झ. ४ तत्र उत्पन्नेति ज. ट. ५ द्वैतवादादिति ज. ट. ६ गुणेनेति झ. ७ प्रतिपाद्येति ट, सम्भाव्येति ज. ८ द्रव्येति नास्ति ज. ट. ९ द्रव्येति ज. ट. १० दूषणवर्ति ट. ११ कारणलक्षण इति १२ भपीति नास्ति ज. ट. १३ स्वरूप इति च.

[अ. टी.] पृथिव्यसेजोवाय्वाकाशकालदिगात्मनोभेदेन द्रव्यपदार्थो नवप्रकार इति विभागो-
देशोक्तत्वात्क्रमेण लक्षणमाह—तत्र गन्धवतीति । सजातीयविजातीयव्यवच्छेदो लक्षण-
प्रयोजनमिति केचित् । तत्र पृथिव्यादिलक्षणे द्रव्यत्वेन सजातीयव्यवच्छेदसम्भवेऽपि
जात्यादेर्विलक्षणजात्यभावेन विजातीयत्वाभावाद्यवच्छेदाभावप्रसङ्गः स्यात् । तस्मादेतत्परि-
त्यागेन व्यवहारसिद्धिर्वा लक्षणप्रयोजनमित्युदयनाचार्याः । अत्र च प्रयोजनान्तरानुक्ते-
रुद्धोक्तं फलमेव आह्वयम् । तथा च लक्ष्यादितरमात्रव्यवच्छेदो लक्षणप्रयोजनं भवेत् ।
एवं च गन्धवत्त्वस्य पृथिवीतरमात्रावृत्तेः पृथिवीलक्षणं युक्तम् । विमतं पृथिवीति व्यवहर्तव्यम्,
गन्धवत्त्वात्, व्यतिरेकेण जलादिवदिति व्यवहारसिद्धिः प्रयोजनम् ।

[वा. टी.] गन्धवतीत्यत्र गन्धमात्रं विवक्षितम्, न सुरम्भादि । तेन नाव्याप्तिरिति द्रष्टव्यम् । ननु
पृथिव्या अनित्यत्वेऽवयवनाशेनैव नाशेऽवयवानवस्थानादवधेरभावात्, ततश्च मेरुसर्पयोस्तुल्य-
परिमाणत्वापत्तिः । तेन विनैव नाशेऽवयवव्यंसेऽपि कार्यकारणत्वं स्यात् । नित्यत्वेऽनुपलब्धिबाधः,
प्रमाणभावश्चेत्यत आह—सा द्वेधा इति ।

*

१)

(परमाणुलक्षणम्)

पूर्वा परमाणुरूपा । क्रियावानित्यः परमाणुरिति सामान्यलक्षणम् ।

[व. टी.] नित्य इति । आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय क्रियावानिति । घटादावतिव्याप्ति-
वारणाय नित्य इति । मनोऽपि परमाणुरिति नातिव्याप्तिः । यदि मनोव्यावृत्तपरमाणो-
लक्षणम्, तदा द्रव्यारम्भप्रयोजिका क्रिया विवक्षितेति नातिव्याप्तिः ।

[अ. टी.] परमाणोः किं लक्षणेमित्यत आह—क्रियावानिति । घटादिव्यवच्छेदार्थं नित्य-
पदम् । आत्मादिव्यवच्छेदार्थं क्रियावानिति । ननु मनस्यतिव्यापकमेतत् । न च मनोऽपि
परमाणुरेव, मूर्तत्वे सति, सदा स्पर्शशून्यं मनं इति वक्ष्यमाणमनोलक्षणे स्पर्शशून्यपदेन
परमाणुव्यावर्तनात् । पाकावस्थायां क्षणैस्पर्शशून्यपार्थिवार्थुव्यवच्छेदाय सदेति विशेषणाच्च ।
न च लक्ष्यव्यवच्छेदो युक्त इति । उच्यते—क्रियावानिति द्रव्यारम्भकर्तृस्य क्रियावत्त्वं प्रयुक्तस्य
विवक्षितत्वान्मनसि च तदभावाच्चातिव्याप्तिः ।

[वा. टी.] परमाणुरूपत्वेनेन महत्त्वाभावादनुपलब्धिबाधस्तदवधिना नवस्थादोषश्च परिहृतो भवति ।
प्रमाणं चाप्रत एव वक्ष्यति । आकाशनिवारणार्थं क्रियेति । ऋणकुनिवारणार्थं नित्य इति । नन्विदं
पृथिवीपरमाणुलक्षणम् ? परमाणुसामान्यलक्षणं वा ? आयेऽतिव्यापकम्, द्वितीये प्रमाणाभावः ।

१ भावप्रसङ्ग इति ॥ २ सिद्धिरिति ॥ ३ चेति नास्ति ज. ४ वृद्धोक्तमेव युक्तमिति ज.
५ चेति नास्ति ज. ६ वृत्ताविति ॥ ७ फलमिति झ. ८ प्रयोजनमिति नास्ति. ९ लक्षणमत
इति ज. ट. १० व्युत्पादासार्थमिति ज. ट. ११ सर्वदेति ज. ट. झ. १२ नित्यसर्वदेति ट. १३ क्षणमिति ट.
१४ भणुकेति ॥ १५ सर्वदेति ट. १६ आरम्भकर्तृप्रयुक्तस्य क्रियावत्त्वमेति झ.

[अ. टी.] द्रव्यादिभेदेन पङ्क्तिषो भावपदार्थ इति विभागं कुर्वतैव द्रव्यादेरुद्देशः कृतः । ततो यथोद्देशलक्षणमाह-तत्रेति । यद्यपि तत्रेत्यनुक्तावपि द्रव्यलक्षणं न दुष्यति, अव्यास्य-भावात् । तथापीतिरेषां द्रव्याश्रितत्वेन द्रव्यस्य प्राधान्यद्योतनार्थं तत्रेत्युक्तम् । यद्यपि प्रथमं द्रव्यनामग्रहणेन तस्य प्राधान्यं द्योतितम्, तथापि तत्रैकान्तिकम्, 'प्रमाणप्रमेयं' इत्यादि-सूत्रे प्रमेयं प्रति गुणभूतस्य प्रमाणस्य प्रथमं ग्रहणात् । कार्यस्य समवायो भवन् यत्रैव भवति तत्समवायिकारणम्, तद्रव्यम् । एतेनोत्पन्नमात्रे द्रव्ये कार्यकारणयोर्नियतपूर्वोत्तर-क्षणवर्तित्वात्कार्यसमवायाभावेनाव्याख्याशङ्का निरस्ता । न च गुणादेरपि संख्यागुण-समवायिकारणत्वादतिव्याप्तिः, उभयसम्प्रतिपत्त्यभावात् । न चावाधिततद्व्यवहारेण सम्प्रति-पत्तिः, दूषणवादिनो वेदान्त्यादेरपि तत्प्रसङ्गेन द्वैतोपातात् । अत्र च निमित्तासमवायि-कारणगुणादिव्यवच्छेदार्थं समवायिपदम् । परकीयलक्षणे दूषणानुसन्धानेन स्वलक्षणे सम्प्रतिपत्तिं संप्राप्यैव व्यवच्छेदक्रमो द्रष्टव्यः । यथा स्वतन्त्रं द्रव्यमिति द्रव्यलक्षणे स्वातन्त्र्य-मनाश्रयत्वं चेत्कार्यद्वन्द्वेऽव्याप्तिः । आश्रयोपलम्भनिरपेक्षोपलम्भश्चेदन्धादावतिव्याप्तिरिति दूषिते समवायिकारणं द्रव्यमिति लक्षणे सम्प्रतिपत्त्यापादनम् । एतेन गुणाश्रयो द्रव्यमित्यपि लक्षणं निर्दुष्टतया व्याख्यातम् ।

[वा. टी.] समवायिकारणमित्यत्र स्वसम्बन्धतत्कार्योत्पादकमिति विवक्षितम् । तेन समवायि च तत्कारणं च समवायिनः कारणं समवायिकारणमिति विकल्पाभ्यां यातिव्याप्तिस्सां परिहृता भवति ।

*

(पृथिवीलक्षणं तद्विभागश्च)

तत्र गन्धवती पृथिवी । सा द्वेधा, पृथिव्यादिभेदेन ।

[अ. टी.] गन्धवतीति । यद्यपि प्रथमे क्षणे गन्धो नास्तीत्यव्याप्तिः, तथापि गन्धात्यन्ता-भावविरोधिमतत्वं विवक्षितम् । स च विरोधी गन्धतत्प्रागभावतत्प्रध्वंसरूपः । तदन्यत-मत्वं च न गन्धात्यन्ताभाव इति नातिव्याप्तिः । यद्वा गन्धात्यन्ताभावानधिकरणमेव लक्षणम् । न च गन्धात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तिः, गन्धात्यन्ताभावे गन्धो नास्तीति प्रतीति-धलेन गन्धात्यन्ताभावे गन्धात्यन्ताभावस्य सत्त्वात् । अन्यथा तत्र गन्धतत्प्रागभावादि-र्वर्तते । यत्र यदत्यन्ताभावो नास्ति तत्र तद्विरोध्यस्ति इत्यतिव्याप्तिः । स च गन्धात्य-न्ताभावे गन्धात्यन्ताभावोऽधिकरणस्वरूपो वा, वैधर्म्यं वा अमावान्तरमेव वा इत्यन्य-देतदिति दिक् । यद्यपि सुरभ्यसुरभिकपालारब्धे घटे गन्धतत्प्रागभावतत्प्रध्वंसा न सन्ति, तथापि गन्धयोग्यता विवक्षिता, सा च पृथिवीत्वमेव ।

१ भयो इति ट. २ तत्रैकमिति श. ३ प्रमाणत्वेति नास्ति श. ४ तत्र उत्पद्येति ज. ट. ५ द्वैतवादादिति ज. ट. ६ गुणेनेति श. ७ प्रतिपाद्येति ट, सम्भाव्येति ज. ८ द्रव्येति नास्ति ज. ट. ९ द्रव्येतिविति ज. ट. १० दूषयतीति ट. ११ कारणलक्षण इति १२ अपीति नास्ति ज. ट. १३ स्वरूप इति च.

[अ. टी.] पृथिव्यसेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनोभेदेन द्रव्यपदार्थो नवप्रकार इति विभागो-
द्देशोक्तत्वात्क्रमेण लक्षणमाह—तत्र गन्धवतीति : —————
प्रयोजनमिति केचित् । तत्र पृथिव्यादिलक्षणे
जात्यादेर्विलक्षणजात्यभावेन विजातीयत्वाभावाच्चच्छेदाभावप्रसङ्गः स्यात् ।^१ तस्मादेतत्सं-
त्यागेन व्यवहारसिद्धिर्वा लक्षणप्रयोजनमित्युदयनाचार्याः । अत्र च प्रयोजनान्तरानुक्ते-
र्वृद्धोक्तं फलमेव ग्राह्यम् । तथा च लक्ष्यादितरमात्रव्यवच्छेदो लक्षणप्रयोजनं भवेत् ।
एवं च गन्धवत्त्वस्य पृथिवीतरमात्रवृत्तेः पृथिवीलक्षणं युक्तम् । त्रिमते पृथिवीति व्यवहर्तव्यम्,
गन्धवत्त्वात्, व्यतिरेकेण जलादिवदिति व्यवहारसिद्धिः प्रयोजनम् ।^२

[बा. टी.] गन्धवतीलक्षणं गन्धमात्रं विवक्षितम्, न सुरम्यादि । तेन नान्याप्तिरिति द्रष्टव्यम् । ननु
पृथिव्या अनित्यत्वेऽवयवनाशेनैव नाशोऽवयवानवस्थानादवधेरभावात्, ततश्च मेरुसर्पयोस्तुल्य-
परिमाणत्वापत्तिः । तेन विनैव नाशोऽवयववत्त्वेऽपि कार्यकारणत्वं स्यात् । नित्यत्वेऽनुपलब्धिबाधः,
प्रमाणभावश्चेत्यत आह—सा द्वेधा इति ।

(परमाणुलक्षणम्)

पूर्वा परमाणुरूपा । क्रियावान्नित्यः परमाणुरिति सामान्यलक्षणम् ।

[व. टी.] नित्य इति । आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय क्रियावानिति । घटादावतिव्याप्ति-
वारणाय नित्य इति । मनोऽपि परमाणुरिति नातिव्याप्तिः । यदि मनोव्यावृत्तपरमाणो-
लक्षणम्, तदा द्रव्यारम्भप्रयोजिका क्रिया विवक्षितेति नातिव्याप्तिः ।

[अ. टी.] परमाणोः किं लक्षणेमित्यत आह—क्रियावानिति । घटादिव्यवच्छेदार्थं नित्य-
पदम् । आत्मादिव्यवच्छेदार्थं क्रियावानिति । ननु मनस्यतिव्यापकमेतत् । न च मनोऽपि
परमाणुरेव, मूर्तत्वे सति सदैव स्पर्शशून्यं मनं इति वक्ष्यमाणमनोलक्षणे स्पर्शशून्यपदेन
परमाणुव्यावर्तनात् । पाकावस्थायां क्षणैस्पर्शशून्यपार्थिवार्णुव्यवच्छेदाय सदेति विशेषणाच्च ।
न च लक्ष्यव्यवच्छेदो युक्त इति । उच्यते—क्रियावानिति द्रव्यारम्भकर्तृत्वस्य क्रियावत्त्वं प्रयुक्तस्य
विवक्षितत्वान्मनसि च तदभावाच्चातिव्याप्तिः ।

[बा. टी.] परमाणुरूपेणानेन महत्त्वाभावादनुपलब्धिबाधस्तदवधिमानवस्यादोषश्च परिहृतो भवति ।
प्रमाणं चाप्रत एव वक्ष्यति । आकाशनिवारणार्थं क्रियेति । अणुकनिवारणार्थं नित्य इति । नन्विदं
पृथिवीपरमाणुलक्षणम् ? परमाणुसामान्यलक्षणं वा ? आद्येऽतिव्यापकम्, द्वितीये प्रमाणाभावः ।

१ भावप्रसङ्ग इति ॥ २ सिद्धिरेवेति ट. ३ चेति नास्ति ख. ४ वृद्धोक्तमेव युक्तमिति ज.
ट. ५ चेति नास्ति ज. ६ वृत्ताविति ॥ ७ फलमिति झ. ८ प्रयोजनमिति नास्ति. ९ लक्षणमत
इति ज. ट. १० व्युत्पत्त्यर्थमिति ज. ॥ ११ सर्वदेति ज. ट. झ. १२ अस्पर्शवदेति ट. १३ क्षणमिति ॥
१४ अणुकेति झ. १५ सर्वदेति ट. १६ आरम्भकर्तृत्वप्रयुक्तस्य क्रियावत्त्वस्येति झ.

अत आह-इतीति । न च प्रयोजनाभावः, (तत्रद्विशेषपरप्रक्षेपेक्ष्य ? तत्रद्विशेषपदप्रक्षेपस्य) तत्रद्विशेषपरप्रक्षेपेक्ष्य तत्तत्परमाण्वादिलक्षणबोधस्य प्रयोजनस्य विवक्ष्यमाणत्वादिति ।

(पृथिवीपरमाणुलक्षणम्)

परमाणुर्गन्धवान् पार्थिवः । उत्तरा द्वेधा-नित्यसमवेता, अन्यथा चेति ।

[व. टी.] पृथिवीपरमाणुलक्षणमाह-गन्धवानिति । जलादिपरमाण्वादावतिव्याप्तिवारणाय गन्धवानित्युक्तम् । घटादावतिव्याप्तिवारणाय परमाणुरिति । द्युकेऽतिव्याप्तिवारणाय परमेति । द्युणुकमपि युक्तिश्चिदपेक्षया परमं भवति, इत्यतिव्याप्तिवारणाय श्रुत्वमुक्तम् । उत्तरेति । अनित्येत्यर्थः । अन्यथेति । अनित्यसमवेतेत्यर्थः, न तु नित्यासमवेतेति तदर्थः । अन्यथा अनित्यपृथिवीविभागे परमाणोरपि सङ्ग्रहापत्तिः ।

[अ. टी.] परमाणुत्वे सति गन्धवान् यः, स पार्थिवः परमाणुरिति विशेषलक्षणमाह-परमाणुरिति । पार्थिवद्व्यणुकादिव्यवच्छेदार्थं परमाणुपदम् । सलिलादिपरमाणुव्यवच्छेदार्थं गन्धवानिति । उत्तरां अनित्या पृथिवी । अन्यथा अनित्यसमवेतेत्यर्थः ।

[वा. टी.] घटातिव्याप्तिवारणाय परमाणुरिति । तेजोऽणुनिवारणाय गन्धवानिति ।

(द्युणुकलक्षणम्)

पूर्वा द्युणुकम् । स्पर्शवन्नित्यसमवेतं द्युणुकमिति सामान्यलक्षणम् ।

[व. टी.] पूर्वा नित्यसमवेता । क्रियावदिति । शब्दादावतिव्याप्तिवारणाय क्रियावदिति । घटादौ तदोपभङ्गाय नित्यसमवेतमिति । नित्यकालादिसर्वद्वं घटादिभवत्येवेति पुनरप्यतिव्याप्तिं भङ्गयितुं नित्यसमवेतमिति निजगदे । न च निष्क्रियनद्व्यणुकैऽव्याप्तिः, क्रियावन्नित्यसमवेतवृत्तिद्रव्यविभाजकोपाधिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात् । न च क्रियावदिति व्यर्थम्, तस्मादेयत्वात् । न च घटादावतिव्याप्तिः, परमाणुसमवेतद्रव्यमात्रस्य विवक्षितत्वात् ।

[अ. टी.] आद्या नित्यसमवेता । द्युणुकमित्यत्राणुकशब्दो न द्युणुकवाची, द्वाभ्यामणुकाम्यारब्धमिति व्युत्पत्त्या यथा द्युणुकमित्यत्र येन द्युणुकवद्व्यणुकमनित्यसमवेताशङ्क्येत । न च द्युणुकं परमाणुत्रयारब्धमिच्छन्ति काणादाः । तथा सति साक्षात् द्युणुकारम्भसम्भवेन द्युणुकोपक्रमारम्भभङ्गप्रसङ्गात् । न च द्युणुकवद् द्युणुकं द्युणुकारब्धं सम्भवति । अतोऽयमणुशब्दः परमाणुवाचीति परमाणुद्वयारब्धद्व्यणुकस्य नित्यसमवेतत्वं युक्तम् । नित्यसमवे-

१ परमाणुरित्यधिकं क. ख. २ द्युणुके इति छ. ३ द्युणुकमपीति छ. ४ अन्यथेति नास्ति च.

५ पार्थिवपरमेति झ. ६ व्यवच्छेदायेति ज. ट. ७ व्युदासायेति ज. ट. ८ सम्भवे घटादिरिति च.

९ द्रव्यत्वमेति छ. १० द्युणुशब्द इति झ. ट. ११ द्युणुम्यमिति ज. ट. १२ द्युणुकमिति नास्ति ह.

१३ नित्येव्यारम्भ युक्तमित्यन्तं नास्ति झ.

तसामान्यादेर्व्युदासाय स्पर्शवदित्युक्तम् । स्पर्शवत्परमाणुव्युदासाय समवेतपदम् ।
स्पर्शत्वमेव सत्यनित्यसमवेतव्यणुकनिरासार्थं नित्यपदम् ।

[वा. टी.] स्पर्शवदिति । घटेऽतिव्याप्तिवारणाय नित्येति । स्पर्शनिवारणाय स्पर्शवदिति ।
परमाणुनिवारणाय समवेतमिति । घटतेजोऽणुकनिवारणायः पदद्वयम् ।

(पार्थिवद्व्यणुकलक्षणम्)

गन्धवद्द्व्यणुकं पार्थिवद्व्यणुकम् । पृथिवीत्वं नित्यसमवेतवृत्तिः, घट-
पटवृत्तिजातित्वात् सत्तावदिति परमाणुद्व्यणुकयोस्सिद्धिः ।

[व. टी.] यत्तु निष्क्रियद्व्यणुकमेव न सम्भवति, अन्यथा तेन द्व्यणुकेन सर्वं गगनादेस्सं-
योगमावापत्या सर्वमूर्तसंपोगित्वलक्षणविभ्रुत्वानापत्तेरिति, तत्र; संपोगजसंपोगेन
विभ्रुत्वोपपत्तेः ।

गन्धवदिति । जलादिद्व्यणुकेऽतिव्याप्तिवारणाय गन्धवदिति । घटादावति-
व्याप्तिभङ्गाय द्व्यणुकमिति । परमाण्वावतिव्याप्तिवारणाय द्वीति । न च सुरभ्यसुरभि-
परमाण्वादावव्याप्तिः, गन्धयोग्यताया विवक्षितत्वात् । परमाणुद्व्यणुकयोः प्रमाणमाह-
पृथिवीत्वमिति । वृत्तिभेदावबुध्यमानेऽर्थान्तरम् । समवेतवृत्तीत्युच्यमानेऽपि तथा ।
तदर्थमुक्तम्-नित्येति । नित्यकालादिसम्बद्धे घटादौ पृथिवीत्वं वर्तत एवेत्यर्थः । तद्वा-
रणाय समवेतेति । नित्यसमवेतवृत्तीत्यर्थः । तेन परमाणुद्व्यणुकवृत्तित्वसिद्धिः । यद्वा
यन्नित्यं तत्पक्षधर्मताबलेन पृथिवीत्वाधिकरणमेव सिध्यतीति भावः । नित्यमिति
वक्तव्येऽर्थान्तरम् । नित्यसमवेतम्, एतावदिति वक्तव्ये परमाणुमात्रस्य सिद्धिः, तदर्थं
विशिष्टमुक्तम् । घटपटपदे घटत्वपटत्वयोर्व्यभिचारवारणाय । घटपटान्तरत्वेऽप्यभि-
चारवारणाय जातित्वादिति । सत्ता नित्यसमवेते शब्दादौ वर्तत इति घटान्तसिद्धिः ।
न च द्रव्यत्वे व्यभिचारः, तस्य पक्षसमत्वात् ।

[अ. टी.] ननु प्रमाणमन्तरेण कथं परमाण्वादिसिद्धिः ? लक्षणमात्रेण वस्तुसिद्धौ केनचित्-
लक्षणेन वन्ध्यापुत्रादेरपि सिद्धिरस्मात् । अथ-लक्षणं केवलव्यतिरेकी हेतुः । स च वन्ध्या-
पुत्रादौ न, धर्म्यादिप्रमित्यभावात्, तर्हि धर्म्यादिप्रमितौ लक्षणप्रवृत्तिरिति तत्र प्रमाणं
वाच्यमित्याह-पृथिवीत्वमिति । पृथिवीत्वस्यानित्यतत्त्वादिसमवेतपटादिवृत्तित्वेन

१. १. १ व्यवच्छेदायेति ज. ट. २ युक्तमिति ट. ३ व्यणुकादीति ज. ट. ४ इदं पदं नास्ति. ख. पुस्तके.
५ वृत्तिरिति नास्ति क. ख. पुस्तकयोः. ६ इतीति नास्ति सु. पुस्तके. ७ संयोगत्वापत्तेरिति छ. ८ परमाण्वा-
रब्धद्व्यणुक इति च. ९ पदमिदं नास्ति च. पुस्तके. १० एतावतीति छ. ११ भङ्गायेति च. १२ घटत्वे
व्यभिचारवारणाय घटेति । घटत्वे व्यभिचारवारणाय घटेति । घटपटद्वित्वे व्यभिचारवारणाय वृत्तिरिति
इति छ. १३ मित्याकाशेति च. १४ व्यभिचारत्वमेति छ. १५ चेति नास्ति ज. ट. १६ लक्षणे
इति ह. १७ अत आहिति ज. ट.

सिद्धसाधनताव्युदासार्थं नित्येत्युक्तम् । पृथिवीत्वं नित्यसमवेतमित्युक्ते यद्यपि नित्य-
पृथिवीसिद्धौ परमाणुसिद्धिरेस्यात्, तथापि न अणुकसिद्धिरिति तस्य सिध्यर्थं वृत्तिपदम् ।
जातित्वादित्युक्ते मनस्त्वादौ व्यभिचारस्यादत्त उक्तम्-घटपटेति । घटजातित्वादित्युक्ते
घटत्वे, एवं पटजातित्वादित्युक्ते पटत्वे व्यभिचारस्यादत्त उक्तम्-घटपटजातित्वादिति ।
सत्तावन्नित्ये नित्यसमवेते च पृथिवीत्वस्य वृत्तौ तदुभयं सिध्येत्, परमाणुअणुकतयैव
सिध्यति । पृथिव्या निरतिशयाणुत्वेनैव निरवयवद्रव्यतयात्मवन्नित्यत्वं, अणुकस्य च नित्य-
समवेतत्वं, परमाणोश्च क्रियावत्त्वं, स्वसमवेतद्रव्यारम्भकत्वात् । ततो यद्योक्तअणुकपर-
माण्वोः सिद्धिः ।

[वा. टी.] पृथिवीत्वमिति । तन्तुसमवेतपटवृत्तित्वेन, सिद्धसाधनतानिवारणाय नित्येति ।
अणुकसिद्धौ समवेतेति । घटपटवृत्तिवृत्तये घटपटेति । असिद्धिनिवारणाय जातीति ।
दृष्टान्ते च नित्याकाशसमवेतशब्दवृत्तित्वेन साध्यसिद्धिः । पुद्गे च तदनुपपत्त्याभिमतसाध्यसि-
द्धिरिति । शरीरादिसंज्ञा च पृथिवीत्वेन परापरमावन्निरूपणाश्च शरीरत्वादिर्जातिनिबन्धना, किन्तर्हि ?
तत्तल्लक्षणोपाधिकेति मन्तव्यम् ।

(शरीरसामान्यलक्षणम्)

उत्तरा श्रेया-शरीरादिभेदेन । स्पर्शवदिन्द्रियसंयुक्तमेव भोगसा-
धनम् अन्त्यावयवि शरीरमिति सामान्यलक्षणम् ।

[वा. टी.] उत्तरेति । अनित्यसमवेतेत्यर्थः । स्पर्शवदिन्द्रियसंयुक्तमेव भोगसा-
धनमिति । भोगः सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कार इति । तस्य साधनमिति । न नित्यं
शरीरेऽव्याप्तिवारकत्वात् । तस्य शरीरस्य केवलपापरब्धतया सुखानवच्छेदकत्वात् । न
च दुःखसाक्षात्कारसाधनं दुःखसाधनमित्येवास्तु, इतरपदवैयर्थ्यमिति वाच्यम् । स्वर्गे
शरीरे तस्याव्याप्तिवारकत्वात्, तस्य केवलपुण्यारब्धतया दुःखानवच्छेदकत्वात् । ननु
मरणस्य दुःखाविनाभूतत्वेन स्वर्गिशरीरमपि दुःखजनकं भवत्येवेति चेन्न; सुखजनके
परिमाणभेदोद्भिन्नैशरीरे दुःखमजनयित्वैव नष्टे तस्य विशेषणस्याव्याप्तिवारकत्वात् ।
यत्तु मरणदशायामपि स्वर्गिणो न दुःखम्,

१ व्युदासायेति ज. ट. २ सिद्धिरिति नास्ति ट. ३ उत्तिष्ठत्यर्थमिति ज. ट. ४ आत्मत्वे मनस्त्वे
चेति ट. ५ व्यभिचारस्यादित्यधिकं झ. ६ चेत्यधिकं च. पुस्तके. ७ अन्त्यावयवीति. नास्ति क. ख.
पुस्तकयोः. ८ मारकेति च. ९ सुखदुःखेति च. १० इतरपदवैयर्थ्यमिति छ. ११ तस्य स्वर्गयिनि.
च. १२ सुखेति च. १३ पदमिदं नास्ति छ. पुस्तके. १४ जनकेमेति छ. १५ भेदादिभेदेति च.

‘यन्न दुःखेन सम्मिश्रं न च ग्रस्तमनन्तरम् ।
अभिलाषोपनीतं यत्तत्सुखं स्वपदास्पदम्’ ॥

इत्यादेरुक्तत्वादिति तन्न; तत्र मरणकालीनदुःखातिरिक्तदुःखासम्भेदस्योक्तत्वात् । न च मरणं दुःखाविनाभूतमेवेति तत्राव्याप्तौ स्वर्गमरणातिरिक्तमरणमेव गृह्यतामिति वाच्यम् । सामान्यव्याप्तौ वाक्यमन्तरेण सङ्कोचे मोनाभावात् । न च ‘यन्न दुःखेन सम्मिश्रम्’ इत्येष तत्र सङ्कोचकम्, अन्यथा भवद्विरपि कर्तव्ये सङ्कोचे विनिगमनाविरह इति वाच्यम् । स्वर्गे मरणदशायां दुःखस्य पुराणादिसिद्धत्वात् । न च ते नराः सुखमृत्यव इत्यनेन सह विरोध इति वाच्यम्, तस्याल्पकालव्योपपन्नदुःखपूर्वकमरणतात्पर्यकत्वात् । न चैवं सुखान्तमुक्तिभङ्गप्रसङ्गः, इष्टापत्तेः । तदुपपादितमस्माभिः द्रव्यप्रकाशप्रकाशे । आत्मन्यतिव्याप्तिवारणाय स्पर्शवदिति । न च शरीरावयवे लक्षणमतिव्यापकमिति वाच्यम्, स्पर्शवत्पदेनान्त्यावयविन उक्तत्वात् । न च घटेऽतिव्याप्तिः, तस्य भोगजनकत्वात्, भोगसाधनपदेन भोगवच्छेदकत्वस्योक्तत्वाद्वा । न चेन्द्रियसंयुक्तमेवेति भोगस्य वैयर्थ्यमिति वाच्यम्, तस्योपरञ्जकत्वात् ।

अन्ये तु भोगसाधनमित्युक्ते चक्षुरादावतिव्याप्तिस्स्यात्, तदर्थमिन्द्रियसंयुक्तमिति वाच्यम् । घटादावतिव्याप्तिवारणायैवकारः । तस्य स्मृत्यादिविषयतापन्नस्यापि भोगसाधनतयावधारणार्थो नास्तीति नातिव्याप्तिः, मनस्संयुक्तस्यात्मनो भोगसाधनस्य व्यवच्छेदार्थं स्पर्शवदिति व्याचक्षुः ।

तन्न; इन्द्रियादीनां भोगजनकतया पदवैयर्थ्यात्, प्राणवायुशरीरावयवकर्चरणादावतिव्याप्तिश्च । ननु पूर्वव्याख्यानेऽपि लक्षणमिदं मृतशरीरव्यापकम्, अव्योपपन्नञ्च नृत्तिर्हेशरीरं इति चेत्-न; आत्मविशेषगुणजनकमनस्संयोगवद्द्वैतव्यावयविमात्रवृत्तिजातिमत्त्वं शरीरत्वमित्यस्य विवक्षितत्वात् । व्याख्यातश्चैतत् द्रव्योपायोपाये ।

* यत्सुखं न दुःखेन सम्मिश्रम्-दुःखमिश्रं न भवति, न च अन्तम्-सञ्चकृतापहारादिगङ्गारहितम्, मनन्तरम् अविच्छिन्नं सन्ततं वर्षादियावत्कालभोग्यम्, अभिलाषोपनीतम्-अवसानपेक्षामभिलाषमात्रोपनीतविषयम्, तत्सुखं स्वपदास्पदं स्वर्गपदवाच्यं भवतीत्यर्थः । सांसारिकमुखवैलक्षण्यमननं प्रदर्शितमिति बोध्यम् । इयं स्मृतिरिति विज्ञानमिश्रवः । परन्तु परिमलादिषु प्रामाणिक्यमन्येषु श्रुतिवैयर्थ्यवद्वादादयं धादृश्या श्रुतिरिति वयं मन्यामहे ।

१ तत्रेति नास्ति च पुलके. २ सङ्कोचस्यामानकत्वादिति छ. ३ तत्सुखमेवेति च. ४ शरीरति नास्ति च. ५ व्याप्तिरिति च. ६ अवच्छेदकत्वेति च. ७ चक्षुरादिष्विति च. ८ पदमिदं नास्ति च. ९ भोगजनकमिति च. १० पदमिदं नास्ति च. ११ नृत्तिहादीति च. १२ संयोगवद्द्वैत्येति छ.

सिद्धसाधनताव्युदासार्थं नित्येत्युक्तम् । पृथिवीत्वं नित्यसमवेतमित्युक्ते यद्यपि नित्य-
पृथिवीसिद्धौ परमाणुसिद्धिस्स्यात्, तथापि न व्यणुकसिद्धिरिति तस्य सिध्यर्थं घृत्तिपदम् ।
जातित्वादित्युक्ते मनस्त्वादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम्-घटपटेति । घटजातित्वादित्युक्ते
घटत्वे, एवं पटजातित्वादित्युक्ते पटत्वे व्यभिचारस्स्यादत उक्तम्-घटपटजातित्वादिति ।
सत्तावन्नित्ये नित्यसमवेते च पृथिवीत्वस्य वृत्तौ तदुभयं सिध्येत्, परमाणुव्यणुकतयैव
सिध्यति । पृथिव्या निरतिशयाणुत्वेनैव निरवयवद्रव्यतयात्मवन्नित्यत्वं, व्यणुकस्य च नित्य-
समवेतत्वं, परमाणोश्च क्रियावत्त्वं, स्वसमवेतद्रव्यारम्भकत्वात् । ततो यद्योक्तव्यणुकपर-
माण्वोः सिद्धिः ।

[वा. टी.] ' पृथिवीत्वमिति । तन्तुसमवेतपटवृत्तिचेन-सिद्धसाधनतानिवारणाय नित्येति ।
व्यणुकसिद्धौ समवेतेति । घटवपटवनिवृत्तये घटपटेति । असिद्धनिवारणाय जातीति ।
दृष्टान्ते च नित्याकाशसमवेतशब्दवृत्तिचेन साध्यसिद्धिः । पक्षे च तदनुपपत्त्याभिमतसाध्यसि-
द्धिरिति । शरीरादिसंज्ञा च पृथिवीत्वेन परापरभावानिरूपणाच्च शरीरत्वादिर्जातिनिबन्धना, किन्तर्हि !
तत्तद्व्यणुपोषाधिकेति मन्तव्यम् ।

✱

(शरीरसामान्यलक्षणम्)

उत्तरा त्रेधा-शरीरादिभेदेन । स्पर्शचदिन्द्रियसंयुक्तमेव भोगसा-
धनम् अन्यथावयवि शरीरमिति सामान्यलक्षणम् ।

[व. टी.] उत्तरेति । अनित्यसमवेतेत्यर्थः । स्पर्शचदिति । दण्डादावतिव्याप्तिवारणाय
भोगेति । भोगः सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कार इति । दुःखपदं व्यर्थमिति चेन्न; नारकीय-
शरीरेऽव्याप्तिवारकत्वात् । तस्य शरीरस्य केवलपारब्धतया सुखानवच्छेदकत्वात् । न
च दुःखसाक्षात्कारसाधनं दुःखसाधनमित्येवास्तु, इतरपदवैपर्ययमिति वाच्यम् । स्वर्गो
शरीरे तस्याव्याप्तिवारकत्वात्, तस्य केवलपुण्यारब्धतया दुःखानवच्छेदकत्वात् । ननु
भरणस्य दुःखाविनाभूतत्वेन स्वर्गिशरीरमपि दुःखजनकं भवत्येवेति चेन्न; सुखजनके
परिमाणभेदोद्भिन्नशरीरे दुःखमजनयित्वैव नष्टं तस्य विशेषणस्याव्याप्तिवारकत्वात् ।
यत्तु मरणदशायामपि स्वर्गिणो न दुःखम्,

१. व्युदासावेति ज. ट. २. सिद्धिमिति नास्ति ट. ३. तन्मिथ्ययमिति ज. ट. ४. आरम्भत्वे मनस्त्वे
येति ट. ५. व्यभिचारस्स्यादित्यधिकं झ. ६. चेत्त्यधिकं च. पुनरे. ७. अन्यथावयवीति. नास्ति क. ख.
पुस्तकयोः. ८. न्नास्ति चे. ९. सुखदुःखेति च. १०. इतरपदवैपर्ययमिति छ. ११. तस्य स्वर्गयिति
च. १२. सुखेति च. १३. पदमिदं नास्ति छ. पुनरे. १४. जननेति छ. १५. भेदाद्विधेति च.

‘यन्न दुःखेन सम्मिश्रं न च ग्रस्तमनन्तरम् ।
अभिलाषोपनीतं यत्तत्सुखं स्वःपदास्पदम्’ ॥

इत्यादेरुक्तत्वादिति तत्र; तत्र मरणकालीनदुःखातिरिक्तदुःखासम्भेदस्योक्तत्वात् । न च मरणं दुःखाविनाभूतमेवेति तत्राव्याप्तौ स्वर्गिमरणातिरिक्तमरणमेव गृह्यतामिति वाच्यम् । सामान्यव्याप्तौ वाक्यमन्तरेण सङ्कोचे मौनमावात् । न च ‘यन्न दुःखेन सम्मिश्रम्’ इत्येव तत्र सङ्कोचकम्, अन्यथा भवद्विरपि कर्तव्ये सङ्कोचे विनिगमनाविरह इति वाच्यम् । स्वर्गे मरणदशायां दुःखस्य पुराणादिसिद्धत्वात् । न च ते नराः सुखमृत्यव इत्यनेन सह विरोध इति वाच्यम्, तस्याल्पकालव्यापकदुःखपूर्वकमरणतात्पर्यकत्वात् । न चैवं सुखान्तमुक्तिभङ्गप्रसङ्गः, इष्टापत्तेः । तदुपपादितमस्माभिः द्रव्यप्रकाशप्रकाशे । आत्मन्यतिव्याप्तिवारणाय स्पर्शवदिति । न च शरीरावयवे लक्षणमतिव्यापकमिति वाच्यम्, स्पर्शवत्पदेनान्तयावयविन उक्तत्वात् । न च घटेऽतिव्याप्तिः, तस्य भोगजनकत्वात्, भोगसाधनपदेन भोगावच्छेदकत्वस्योक्तत्वाद्वा । न चेन्द्रियसंयुक्तमेवेति भोगस्य वैयर्थ्यमिति वाच्यम्, तस्योपरञ्जकत्वात् ।

अन्ये तु भोगसाधनमित्युक्ते वाच्यम् । घटादावतिव्याप्तिवारणायैव । धनतयावधारणार्थो नास्तीति नातिव्याप्तिः, मनस्संयुक्तस्यात्मनो भोगसाधनस्य व्यवच्छेदार्थं स्पर्शवदिति व्याचक्षुः ।

तत्र; इन्द्रियादीनां भोगजनकतया पदवैयर्थ्यात्, प्राणवायुशरीरावयवकर्तृचरणादावतिव्याप्तिश्च । ननु पूर्वव्याख्यानेऽपि लक्षणमिदं मृतशरीरव्यापकम्, अव्योपकञ्च नृसिंहशरीर इति चेत्-न; आत्मविशेषगुणजनकमनस्संयोगवद्द्वयस्त्वावयवविमात्रवृत्तिजातिमत्त्वं शरीरत्वमित्यस्य विवक्षितत्वात् । व्याख्यातञ्चैतद् द्रव्योपायोपाये ।

* तत्सुखं न दुःखेन सम्मिश्रम्-दुःखमिश्रं न भवति, न च ग्रस्तम्-शत्रुक्रवापहारादिसङ्घारहितम्, मनन्तरम्-अविच्छिन्नं सन्ततं-वर्षादिवाक्कालमोक्षम्, अभिलाषोपनीतम्-प्रवृत्तानपेक्षाभिलाषमात्रोपनीतविवक्षम्, तत्सुखं स्वःपदास्पदं स्वर्गपदवाच्यं भवतीत्यर्थः । सासारिकमुल्लेखमननेन प्रदर्शितमिति बोध्यम् । इयं स्थितिरिति विज्ञानमिश्रवः । परन्तु परिमलादिषु प्रामाणिकग्रन्थेषु स्थितिवेन व्ययद्वारादर्शपादस्या स्थितिरिति वयं मन्यामहे ।

१ तत्रेति नास्ति च पुराके. २ सङ्कोचस्यामानकत्वादिति छ. ३ तत्सुखमेवेति च. ४ अपीति नास्ति च. ५ व्याप्तीति च. ६ अवच्छेदकत्वेति च. ७ चक्षुरादिध्विति च. ८ पदमिदं नास्ति च. ९ भोगजनक इति च. १० पदमिदं नास्ति च. ११ नृसिंहादीति च. १२ संयोगवदन्त्येति छ.

[अ. टी.] भोगसाधनं शरीरमित्युक्ते चक्षुरादिप्रतिव्याप्तिः । तस्मात् इन्द्रियसंयुक्तमिति पदम् । चक्षुरादिसंयुक्तेष्वदादिविषयव्युदासार्यम् एवेत्युक्तम् । विषयाणां स्मृत्यादिगोचरत्वेनापि भोगसाधनानामवधारणार्थो नास्ति । मनसेन्द्रियेण संयुक्तस्यैवात्मनो भोगसाधनस्य व्यवच्छेदाय स्पर्शवदित्युक्तम् ।

[वां. टी.] स्पर्शवदिति । ईशेष्ट्यादिनिवारणाय इन्द्रियसंयुक्तमिति । भ्रमादिनिवारणाय एवेति । स्मृतिगोचरत्वेनापि तस्य भोगकारणत्वात्ततो व्यावृत्तिः । कालादिनिवारणाय स्पर्शवदिति । चक्षुरादावतिव्यापकत्वात्तदतिरिक्ते सतीति वाच्यम् । यद्वा स्पर्शवद्भोगसाधनमिन्द्रियमित्येकं लक्षणम् । द्वितीयं ... (त्रताद्यर्थः ?) भोगसाध्यते निष्पाद्यतेऽनेनेति भोगसाधनम्, भोगजनकात्मादिसंयोगाधिकरणमित्यर्थः । 'अर्थ आदिभ्योऽजि'ति पाणिनीयस्मरणात् । आत्ममनोनिवृत्त्यर्थं स्पर्शवदिति । घटादिनिवृत्त्ये भोगेति । द्वितीयम्-इन्द्रियैस्तस्युक्तमिन्द्रियसंयुक्तम् । संयोगश्चात्र पतनप्रतिबन्धकः, केशमस्तकसंयोगवत् । ततश्चेन्द्रियाणामधिकरणमित्यर्थः । एवञ्च न घटादावतिव्याप्तिः । एवकारस्तु कार्ये । तेजशरीरघटनिवृत्त्ये पदद्वयम् ।

*

(पार्थिवशरीरं तद्विभागश्च)

गन्धवच्छरीरं पार्थिवं शरीरम् । स्वसमवेतसुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारो भोगः । तद्देहा-योनिजायोनिजभेदेन । पूर्वमस्मदादीनां प्रत्यक्षसिद्धम् । उत्तरार्धं देहा-प्रकृष्टधर्मजम् अन्यथा चेति ।

[व.टी.] विशेषलक्षणमाह-गन्धवदिति । अत्र गन्धयोग्यता विवक्षिता, तेन न सुरभ्यसुरभ्यवपवारब्धेऽव्याप्तिः । जलीयशरीरेऽतिव्याप्तिवारणाय गन्धवदिति । घटादावतिव्याप्तिवारणाय शरीरमिति । शरीरलक्षणे प्रविष्टो भोग एव क इत्यत आह-स्वेति । ईश्वरसाक्षात्कारस्य भोगवारणाय स्वेति । अस्मदादिमुखमीश्वरसम्बद्धं केनचित्सम्बन्धेन भवत्येवेत्यत उक्तम्-समवेतेति । साक्षात्समवेतेत्यर्थः । साक्षात्सम्बन्धतौ वचने विषयतासम्बन्धेनास्मत्सुखमीश्वरसम्बद्धं भवत्येवेत्यत उक्तम्-समवेतेति । आत्मत्वादिसाक्षात्कारस्य भोगवारणाय सुखेति । सुखसाक्षात्कारत्वं दुःखसाक्षात्काराव्यापकम् । दुःखसाक्षात्कारत्वं सुखसाक्षात्काराव्यापकम् । एतत्समुचितसाक्षात्कारत्वमसम्भवि, अत उक्तम्-अन्यतरेति ।

१ इत्युक्त्यादिति ज. ॥ २ संयुक्तेष्ट्यादिति ज. ट. * पा. सू. ५. २. १२७. ३ पार्थिवशरीरमिति ख, पदमिदं नास्ति क पुस्तके. ४ भोगार्थं इति क. ॥ ५ तद्विविधमिति क. ६ योनिजभेदेनेति ख. ७ पूर्वमिति ख. ८ चेति नास्ति ख. मुद्रितपुस्तकयोः. ९ धर्ममिति ख. १०, ११ भोगेति ख. १२ सुखसाक्षात्कारत्वं दुःखसाक्षात्कारत्वं दुःखसाक्षात्काराव्यापकं दुःखसाक्षात्काराव्यापकमित्यनुदपाठः च पुस्तके. १३ असम्भव इत्यत इति च.

अन्ये तु-एकोत्पत्त्यनन्तरमपरं यत्रोत्पन्नं तत्र विनश्यदवस्थाविनश्यदवस्थद्वय-
विषयक एकसाक्षात्कारसम्भवतीत्याहुः ।

अन्ये तु-आदौ सुखमनन्तरं तज्ज्ञानम्, अनन्तरं दुःखम्, तदनन्तरं जायमानेन
दुःखसाक्षात्कारेण द्वयमपि विषयीक्रियते । चतुर्थ्यादिषण्वृत्तित्वं सुखादेः स्वीक्रियत एवे-
त्याहुः । (अत्र) लौकिकसाक्षात्कारो विवक्षितः, तेन न ज्ञानोपनीतसुखसाक्षात्कारा-
दिर्भोगः । केचित्तु सविकल्पकं साक्षात्कारं गृह्णन्ति । तेन न सुखनिर्विकल्पकस्य भोगता ।
अन्ये तु तैर्विविकल्पस्यापि भोगत्वं वदन्ति ।

[अ. टी.] कस्तर्हि भोगो यत्साधनं शरीरगत आह-स्वसमवेतेति । घटसाक्षात्कारव्यव-
च्छेदार्थं सुखादिपदम् । योगिनामीश्वरस्य च परसमवेतसुखादिसाक्षात्कारे व्यवच्छेदार्थं
स्वसमवेतेत्युक्तम् । विनश्यदविनश्यदवस्थसुखदुःखयोर्युगपत्साक्षात्कारादन्यतरग्रहण-
मुपलक्ष्यार्थम् ।

[वा. टी.] स्वसमवेतेति । घटसाक्षात्कारनिवृत्तये दुःखेति । सुखसाक्षात्कारेऽतिव्याप्ति-
परिहाराय सुखेति । उभयोरैकसाक्षात्कारे द्वये न्यातिव्याप्तिरत आह-अन्यतरेति । अन्यतर-
त्वं सुखदुःखान्यत्वाद्यन्ताभावाश्रयत्वम् । तथा च साक्षात्कारसम्भवान्नैकत्राव्याप्तिः । ईशस्य
सुखसाक्षात्कारेऽतिव्याप्तिपरिहाराय स्वसमवेतेति ।

*

(अयोनिजशरीरानुमानम्)

पार्थिवाः परमाणवः पारम्पर्येण कदाचित्प्रकृष्टधर्मजायोनिजशरी-
रारम्भकाः, स्पर्शवत्परमाणुत्वात्, उदकपरमाणुवदिति अयोनिजशरी-
रसिद्धिः । दुःखभूयस्त्वादधर्मजमुत्तरं शरीरं मशकादीनाम् । प्रत्यक्षसिद्धं
तस्यायोनिजत्वम् ।

[व. टी.] आगमसिद्धेऽपि प्रकृष्टधर्मजायोनिजशरीरेऽनुमानमाह-पार्थिवा इति । अंशतः
सिद्धसाधनवारणाय पार्थिवा इति । घटादीनां बाधवारणाय परमाणव इति ।
अजनिजशरीरनष्ट्यणुकेन बाधवारणाय परमेति । पार्थिवपदेन मनसा बाधवारणेऽपि
साक्षाच्छरीरारम्भकत्वे बाधादाह-पारम्पर्येणेति । सर्वदा शरीरारम्भकत्वे बाधा-
दाह-कदाचिदिति । मशकादिशरीरारम्भकत्वेनार्यान्तरवारणाय प्रकृष्टेति । प्रकृष्ट-
धर्मजयोनिजशरीरेणार्यान्तरवारणाय अयोनिजेति । उत्तमसुखजनकविषयजनकत्वेना-
र्यान्तरवारणाय शरीरेति । मनसि व्यभिचारवारणाय स्पर्शवदिति । घटे व्यभिचा-
रवारणाय अणुत्वादिति । शरीरानारम्भकैष्वणुकव्यभिचारवारणाय, परमेति ।
उदकेति । उदकपरमाणोरगमसिद्धं शरीरारम्भकत्वम् ।

१ द्रव्यमपीति छ. २ तदिति नास्ति च पुस्तके. ३ घटादीति ज. ट. ४ भोगव्यवच्छेदार्थेति

ज. ट. ५ आरम्भकास्पृशति सु. ६ अधर्मेति छ. ७ शरीरमिति नास्ति ख पुस्तके. ८ प्रमाणमिति च

९ वारणमपीति च. १० अनात्ममध्यणुकेति च. ११ उदकेति नास्ति च पुस्तके. १२ आरम्भकत्वादिति छ.

[अ. टी.] भोगसाधनं शरीरमित्युक्ते चक्षुरादिष्वतिव्याप्तिः । तस्मात् इन्द्रियसंयुक्तमिति पदम् । चक्षुरादिसंयुक्तैषादिविषयव्युदासार्थम् एवेत्युक्तम् । विषयाणां स्मृत्यादिगोचरत्वेनापि भोगसाधनानामवधारणार्थो नास्ति । मनसेन्द्रियेण संयुक्तसैवात्मनो भोगसाधनस्य व्यवच्छेदाय स्पर्शवदित्युक्तम् ।

[बा. टी.] स्पर्शवदिति । ईशेच्छादिनिवारणाय इन्द्रियसंयुक्तमिति । भ्रमादिनिवारणाय एवेति । स्मृतिगोचरत्वेनापि तस्य भोगकारणत्वात्ततो व्यावृत्तिः । कालादिनिवारणाय स्पर्शवदिति । चक्षुरादावतिव्यापकत्वात्तदतिरिक्ते सतीति वाच्यम् । यद्वा स्पर्शवद्भोगसाधनमिन्द्रियमित्येकं लक्षणम् । द्वितीयं ... (व्रताचार्यः ?) भोगस्साध्यते निष्पाद्यतेऽनेनेति भोगसाधनम्, भोगजन-कात्मादिसंयोगाधिकरणमित्यर्थः । 'अंश आदिभ्योऽजि'ति पाणिनीयस्मरणात् । आत्ममनोनिवृत्त्यर्थं स्पर्शवदिति । घटादिनिवृत्तये भोगेति । द्वितीयम्-इन्द्रियैस्संयुक्तमिन्द्रियसंयुक्तम् । संयोगश्चात्र पतनप्रतिबन्धकः, केशमस्तकसंयोगवत् । ततश्चेन्द्रियाणामधिकरणमित्यर्थः । एवञ्च न घटादावतिव्याप्तिः । एवकारस्तु वार्ये । तेजश्शरीरघटनिवृत्तये पदद्वयम् ।

*

(पार्थिवशरीरं तद्विभागश्च)

गन्धवच्छरीरं पार्थिवं शरीरम् । स्वसमवेतसुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारो भोगः । तद्वेधा-योनिर्जायोनिजभेदेन । पूर्वमस्मदादीनां प्रत्यक्ष-सिद्धम् । उत्तरार्धं द्वेधा-प्रकृष्टधर्मजम् अन्यथा चेति ।

[ब. टी.] विशेषलक्षणमाह-गन्धवदिति । अत्र गन्धयोग्यता विवक्षिता, तेन न सुर-भ्यसुरभ्यवयवारब्धेऽप्याप्तिः । जलीयशरीरेऽतिव्याप्तिवारणाय गन्धवदिति । घटादावतिव्याप्तिवारणाय शरीरमिति । शरीरलक्षणे प्रविष्टो भोग एव क इत्यत आह-स्वेति । ईश्वरसाक्षात्कारस्य भोगंवारणाय स्वेति । अस्मदादिसुखमीश्वरसम्बद्धं केनचित्सम्बन्धेन भवत्येवेत्यत उक्तम्-समवेतेति । साक्षात्समवेतेत्यर्थः । साक्षात्सम्बन्धतो वचने विषयतासम्बन्धेनास्मत्सुखमीश्वरसम्बद्धं भवत्येवेत्यत उक्तम्-समवेतेति । आत्मत्वादिसाक्षात्कारस्य भोगंवारणाय सुखेति । सुखसाक्षात्कारत्वं दुःखसाक्षात्काराद्यापकम् । दुःखसाक्षात्कारत्वन्तु सुखसाक्षात्काराव्यापकम् । एतत्समुचितसाक्षात्कारत्वमस्मभवि, अत उक्तम्-अन्यतरेति ।

१ साक्षात्साधिति ज. ट. २ संयुक्तेष्टादिति ज. ट. * पा. सू. ५. २. ३२७. ३ पार्थिवशरीरमिति ख, पदमिदं नामि क पुनर्के. ४ भोगार्थे इति क. ख. ५ तद्विधिमिति क. ६ योनिजभेदेनेति ख. ७ पूर्वमिति ख. ८ चेति. नास्ति ख. मुद्रितपुस्तकयोः. ९ धर्ममिति ख. १०, ११ भोगेति च १२ सुखसाक्षात्कारत्वं दुःखसाक्षात्कारत्वं दुःखसाक्षात्काराव्यापकं दुःखसाक्षात्कार व्यापकमित्यशुद्ध पाठः च पुस्तके. १३ असम्भव इत्यत इति च.

अन्ये तु-एकोत्पत्त्यनन्तरमपरं यत्रोत्पन्नं तत्र विनश्यदवस्थाविनश्यदवस्थद्वय-
विषयक एकसाक्षात्कारसम्भवतीत्याहुः ।

अन्ये तु-आदौ सुखमनन्तरं तज्ज्ञानम्, अनन्तरं दुःखम्, तदनन्तरं जायमानेन
दुःखसाक्षात्कारेण द्वयमपि विषयीक्रियते । चतुर्थ्यादिशृणुचित्वं सुखादेः स्वीक्रियत एवे-
त्याहुः । (अत्र) लौकिकसाक्षात्कारो विवक्षितः, तेन न ज्ञानोपनीतसुखसाक्षात्कारा-
दिभोगः । केचित्तु सविकल्पकं साक्षात्कारं गृह्णन्ति । तेन न सुखनिर्विकल्पकस्य भोगता ।
अन्ये तु तन्निर्विकल्पकस्यापि भोगत्वं वदन्ति ।

[अ. टी.] कस्तर्हि भोगो यत्साधनं शरीरमत आह-स्वसमवेतेति । घटसाक्षात्कारव्यव-
च्छेदार्थं सुखादिपदम् । योगिनामीश्वरस्य च परसमवेतसुखादिसाक्षात्कारे व्यवच्छेदार्थं
स्वसमवेतेत्युक्तम् । विनश्यदविनश्यदवस्थसुखदुःखयोर्युगपत्साक्षात्कारादन्यतरग्रहण-
मुपलक्षणार्थम् ।

[बा. टी.] स्वसमवेतेति । घटसाक्षात्कारनिवृत्तये दुःखेति । सुखसाक्षात्कारेऽतिव्याप्ति-
परिहाराय सुखेति । उभयोरैकसाक्षात्कारे द्वये चातिव्याप्तिरत आह-अन्यत्वेति । अन्यतर-
त्वञ्च सुखदुःखान्यत्वाव्यन्ताभावाश्रयत्वम् । तथा च साक्षात्कारसम्भवानैकत्राव्याप्तिः । ईशस्य
सुखसाक्षात्कारेऽतिव्याप्तिपरिहाराय स्वसमवेतेति ।

(अयोनिजशरीरानुमानम्)

पार्थिवाः परमाणवः पारम्पर्येण कदाचित्प्रकृष्टधर्मजायोनिजशरी-
रौ रम्भकाः, स्पर्शवत्परमाणुत्वात्, उदकपरमाणुवदिति अयोनिजशरी-
रसिद्धिः । दुःखभूयस्त्वादधर्मजमुत्तरं शरीरं मशकादीनाम् । प्रत्यक्षसिद्धं
तस्यायोनिजत्वम् ।

[अ. टी.] आगमसिद्धेऽपि प्रकृष्टधर्मजायोनिजशरीरेऽनुमानमाह-पार्थिवा इति । अंशतः
सिद्धसाधनवारणाय पार्थिवा इति । घटादीनां बाधवारणाय परमाणवः इति ।
अजनितशरीरनष्टवृणुकेन बाधवारणाय परमेति । पार्थिवपदेन मनसा बाधवारणेऽपि
साक्षाच्छरीरारम्भकत्वे बाधादाह-पारम्पर्येणेति । सर्वदा शरीरारम्भकत्वे बाधा-
दाह-कदाचिदिति । मशकादिशरीरारम्भकत्वेनार्थान्तरवारणाय प्रकृष्टेति । प्रकृष्ट-
धर्मजयोनिजशरीरेणार्थान्तरवारणाय अयोनिजेति । उत्तमसुखजनकविषयजनकत्वेना-
र्थान्तरवारणाय शरीरेति । मनसि व्यभिचारवारणाय स्पर्शवदिति । घटे व्यभिचा-
रवारणाय अणुत्वादिति । शरीरानारम्भकं वृणुकव्यभिचारवारणाय परमेति ।
उदकेति । उदकपरमाणोरगमसिद्धं शरीरारम्भकत्वम् ।

१ द्रव्यमपीति छ. २ तदिति नास्ति च पुस्तके. ३ घटादीनि ज. ट. ४ भोगव्यवच्छेदायेति
ज. ट. ५ शरीरारम्भकास्पृशेति सु. ६ अधर्मोति छ. ७ शरीरमिति नास्ति च पुस्तके. ८ प्रमाणमिति च
९ वारणमपीति च. १० अनारम्भकमुक्तेति च. ११ उदकेति नास्ति च पुस्तके. १२ शरीरारम्भकत्वेति छ.

[अ. टी.] प्रकृष्टधर्मजायोनिजशरीरं द्रौपद्यादेरागमसिद्धम्, अनुमानतोऽपि तत्सिद्धिरित्याह-
पार्थिवा इति । परमाणूनां साक्षाच्छरीरारम्भकत्वं नास्तीति चाधस्तात् । अत उक्तम्-
पारम्पर्येणेति । अणुकादिक्रमेणेत्यर्थः । तदपि सर्वदा नास्तीति स एव दोष इत्यत
आह—कदाचिदिति । अयोनिजमशकादिशरीरारम्भकत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं
प्रकृष्टधर्मजेत्युक्तम् । परमाणुत्वं निरतिशयाणुपरिमाणवत्त्वं, तन्मनसि, व्यभिचरतीति
स्पर्शवत्पदम् । उदकपरमाणूनामेतादृग्देहारम्भकत्वम् “अदोऽम्मः परेण दिवम्” इत्या-
द्यागमसिद्धं द्रष्टव्यम् ।

[बा. टी.] यत्तु मतम्—दाहक्लेशादिदर्शनेन पाञ्चभौतिकं, शरीरमिति, तन्न; पञ्चानां भूतानां
समवायिकारणत्वे समवायिकारणगता गुणाः कार्ये गुणानारम्भन्त इति न्यायाच्छरीरोष्णत्वाद्यनेक-
विरुद्धधर्माधिकरणत्वेन यस्तुभेदः प्रसज्येत । तत्तद्गुणाभिव्यज्यमानानां परस्परपरिहारेण स्थितानां
पृथिवीत्वादीनामैकत्र समावेशे जातिसङ्करश्च । तस्मात्तानि निमित्तान्येवेति न पाञ्चभौतिकत्वमिति तदे-
तन्मनसि निधाय प्रतिज्ञायां पार्थिवा इति पदम् । पारम्पर्येण अणुकादिक्रमेणेत्यर्थः । अन्यथा
नष्टेऽवयविनि अवयवदर्शने न स्यात् । साक्षादण्वारम्भत्वेऽप्रत्यक्षत्वञ्च, सततारम्भे प्रलयानुपपत्तिः,
तन्निराकरोति—कदाचिदिति । सिद्धसाधनपरिहाराय शरीरेति । योनिजारम्भकत्वेन सिद्ध-
साधनपरिहाराय अयोनिजेति । अयोनिजमशकादिशरीरारम्भेण सिद्धसाधनपरिहाराय प्रकृष्टेति ।
पाकावस्थाणुनिरासाय स्पर्शवदिति । घटनिवृत्तये परमाणुत्वादिति ।

(इन्द्रियसामान्यलक्षणम्)

पञ्चगणमप्रत्यक्षं साक्षात्कारप्रतीतिसाधनमिति सामान्यलक्षणम् ।

[ब. टी.] पञ्चगणमिति । शरीरादावतिव्याप्तिवारणाय अप्रत्यक्षमिति । साक्षात्त्वं
जातिः, न त्विन्द्रियजन्यत्वम् । तेन न व्यर्थता, न आत्माश्रयः । प्रतीतिपदं देयमेव,
तेन साक्षात्त्वाधिकरणसाधनमित्यर्थः । इदन्तु विशेषणं परमाण्वादावतिव्याप्तिवारणाय ।
कालादावतिव्याप्तिवारणाय पञ्चगणमिति । गुणविभाजकोपाधिमत्त्वेन पञ्चगणमित्यर्थ इति
यत् तत्रेश्वरात्मन्यतिव्याप्तिः । न च षडेव गुणा इति विवक्षितम्, ईश्वरे चाष्टौ गुणा इति
नातिव्याप्तिः, तदा प्राणादावव्याप्तेः । यत्तु षट्सहस्रात्वं विवक्षितमिति तर्कः, आकाश-
दिगीश्वरेषु प्राणवायुसंहितेष्वतिव्याप्तेः । न चेन्द्रियत्वेन रूपेण षट्त्वं विवक्षितमिति
वाच्यम्; आत्माश्रयात्, प्रकारान्तरस्य वक्तुमशक्यत्वाच्च । तस्मात् पञ्चगणमिति स्वरूपक-
थनमात्रम् । तस्मात्प्रलादावतिव्याप्तिवारणाय प्रकृतज्ञानकारणीभूतशरीरनिष्ठसंयोगा-

१ इत्यत आहति स्त. २ दोषोऽत इति ज. ट. ३ न देयमेवेति च. ४ व्याप्तेरिति च. ५ प्राणादा-
वेति च. ६ तथेति च. ७ आकाशकालेति च. ८ वायुद्वयेति च. ९ द्वित्वेनेति च.

श्रयत्वं विवक्षितम् । न च प्राणवायावतिव्याप्तिः, अप्रत्यक्षपदेन त्वग्राह्यगुणवत्त्वाहित्यस्य विवक्षितत्वात् । न चात्मन्यतिव्याप्तिः । न चाप्रत्यक्षपदेन लौकिकप्रत्यासत्या मनोग्राह्यगुणवत्त्वाहित्यं विवक्षितम्, शरीरप्राणवाय्वादावतिव्याप्तेः । न चाप्रत्यक्षपदेन मनोग्राह्यगुणवत्त्वाहित्ये सति त्वग्राह्यगुणवत्त्वाहित्यं विवक्षितम्, परिमाणोचरसाक्षात्प्रतीतिसाधनेन्द्रियावयवेऽतिव्याप्तेः । न चेन्द्रियावयवसंयोगस्य विषयावयवादिनिष्ठस्य परिमाणग्रहं प्रति कारणतैव नास्ति, दूरे तथापि शरीरनिष्ठेन्द्रियसंयोगस्याजनकत्ववर्जनकत्वात् । अत्राहुः—शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनस्संयोगाश्रयत्वस्य स्मृत्यजनकज्ञानकारणमनस्संयोगाश्रयत्वस्य चेन्द्रियत्वस्य विवक्षितत्वाभोक्तदोष इति ।

[अ. टी.] अनुमानादिव्यवच्छेदार्थमिन्द्रियलक्षणे साक्षात्कारपदम् । आत्मादिव्यवच्छेदार्थम् अप्रत्यक्षपदम् । धर्मादिव्यवच्छेदार्थं शरीरसंयुक्तपदं द्रष्टव्यम्, कालान्यत्वञ्च । पङ्गुणं पङ्गुसंख्याकं तच्चेन्द्रियमिति शेषः । पङ्गुणमिति पदस्य लक्षणान्तर्गतत्वेनैवाष्टकालादिव्यवच्छेदान्न पदान्तराध्याहारः ।

[वा. टी.] पङ्गुणमिति । घटसाधननिवृत्त्यर्थं प्रतीतीति । लिङ्गनिवृत्त्यर्थं साक्षात्कारेति । इन्द्रियार्थसन्निकर्षनिवृत्तये शरीरसंयुक्तमिति । साधनशब्दस्य करणपर्यापत्वाच्च कालादावतिव्याप्तिः । पङ्गुणपदं विभागपरम् । अप्रत्यक्षपदं स्वरूपपरम् । अप्रत्यक्षत्वञ्चात्र योगजधर्माजन्यसाक्षात्कारविषयत्वम्, नेन्द्रियजन्यज्ञानविषयत्वम् आत्माश्रयापत्तेरिति । यद्वा पङ्गुणमप्रत्यक्षमिति । लक्षणान्तरम् । तस्यार्थः—आकाशनिवृत्तये पङ्गुणमिति । पङ्गुप्रकारकमित्यर्थः । तत्त्वज्ञानवृत्तधर्मापेक्षया न व्यावृत्तेन धर्मेण । तेन नैकैकत्राव्याप्तिः । अनुवृत्तेनेन्द्रियस्वरूपेण धर्मेण यद्विधत्वात्पायात् । इन्द्रियार्थसन्निकर्षनिवृत्तये—अप्रत्यक्षेति । अप्रत्यक्षत्वञ्चात्र न विद्यते प्रत्यक्षं साक्षात्कारविर्ययो घटादिसमवायिकारणतया निरूपकत्वेन वा यस्य तत्तथेति सर्वं सुस्पष्टम् ।

*

१ पदमिदं नास्ति च पुस्तके. २ सतीत्यारम्भ राहित्यमित्यन्तं नास्ति च पुस्तके. ३ परिमाणोचरेति च. ४ सम्मनोर्पपत्तेरिति च.

* शब्देतरे ये उद्भूतविशेषगुणाः सदनाश्रयत्वे सति, ज्ञानकारणीभूतो यो मनस्संयोगः सदाश्रयत्वमित्यर्थः । आत्मादावतिव्याप्तिमिरासाय सत्यन्तम् । ओष्ठेन्द्रियव्याप्तिवारणाय शब्देतरेति । प्राणादावव्याप्तिवारणाय उद्भूतेति । शब्देतरोद्भूतगुणं संयोगमादायासम्भववारणाय विशेषेति । कालादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यद्वलम् । विशेष्यगतज्ञानकारणेत्यपि तद्वारणाय । कालादावुद्भूतरूपाभावचाक्षुर्यं प्रति बहुस्तसंयुक्तविशेषणतामाः सन्निकर्षतया सददृक्चक्षुस्तसंयोगस्यापि हेतुत्वेन तत्रातिव्याप्तिवारणाय मनःपदम् ।

५ आत्मन्येति ज. ट. ६ पदसंख्यमिति ज. ट. ७ अदृष्टादीति इ.

(पार्थिवमिन्द्रियं तत्प्रमाणञ्च)

गन्धचदिन्द्रियं घ्राणम् । तत्र प्रमाणम्—पार्थिवाः परमाणवः पारम्पर्येणेन्द्रियारम्भकाः, स्पर्शवत्परमाणुत्वात्, तेजःपरमाणुवदिति ।

[व. टी.] गन्धचदिति । घटादावतिव्याप्तिं वारयितुम् इन्द्रियमिति । रसनादावतिव्याप्तिवारणाय गन्धचदिति । पार्थिवा इति । मनसि बाधवारणाय जलपरमाणौ सिद्धसाधनवारणाय च पार्थिवा इति । घटादौ बाधवारणाय अणव इति । अणुके बाधवारणाय परमेति । साक्षादारम्भकत्वे बाधवारणाय पारम्पर्येणेति । घटादिजनकत्वेनार्थान्तरवारणाय इन्द्रियेति । मनोव्यणुकघटेषु व्यभिचारवारणाय क्रमेण हेतुविशेषणानि । तेजः परमाणोरिन्द्रियारम्भकत्वमागमिकम् ।

[अ. टी.] तेजःपरमाणूनामिन्द्रियारम्भकत्वम् “स एतास्तेजोमात्राः समम्याददानः” इत्यागमसिद्धं द्रष्टव्यम् ।

[वा. टी.] गन्धचदिति । पार्थिवेन्द्रियमिति शेषः । पृथिवीप्रकरणे पार्थिवत्वेनैव तत्तत्परमाण्वादीनां प्रतिपादनप्रकृते तेनैव प्रतिपादनमुचितम् । ननु घ्राणमिति विशेषणेन च तत्प्रकरणबलाज्ज्ञातुं शक्यमिति शङ्क्यम्, ‘शाब्दी ह्याकाङ्क्षा शब्देनैव पूर्यते’ इति न्यायादिति तत्किमत आह—घ्राणमिति । पर्यायत्वेन बोधयितुं शक्यत्वेऽपि घ्राणपदेन जिघ्रसि गन्धमिति व्युत्पत्त्या गन्धग्राहकत्वमुक्तम् । ततश्च यस्य भूतस्य यदिन्द्रियं तत् तस्य विशेषगुणग्राहकमिति सूचितम् ।

(विषयलक्षणं पार्थिवविषयश्च)

१. स्पर्शवान् शरीरेन्द्रियव्यतिरिक्तः कार्यजातो विषय इति सामान्यलक्षणम् । गन्धवान् विषयः पार्थिवो विषयः । स चेष्टकादिः प्रत्यक्षसिद्धः । सा चतुर्दशगुणवती । एवमुत्तरत्र सामान्यलक्षणानुवृत्तौ पदान्तरानुगमेन तत्तत्परमाण्वादीनां लक्षणानि भवन्ति ।

[व. टी.] स्पर्शवानिति । गुणकर्मदावतिव्याप्तिवारणाय स्पर्शवानिति । शरीरेन्द्रियोरतिव्याप्तिवारणाय व्यतिरिक्त इत्यन्तम् । परमाण्वादावतिव्याप्तिभङ्गाय जात इति । उत्पन्न इत्यर्थः । व्यणुकेऽतिव्याप्तिवारणाय कार्यजात इत्युक्तम् । कार्यसमवेत इत्यर्थः । अत्र शरीरादिव्यतिरिक्त एव विषयो लक्ष्यः । गन्धवानिति । जलादिविषयेऽतिव्याप्तिवारणाय गन्धवानिति । पार्थिवशरीरादावतिव्याप्तिवारणाय विषय इति । एवमिति । सामान्यलक्षणं परमाणुत्वादिकम्, पदान्तरं स्नेहवत्त्वादिकम् । तथाच स्नेहवान् परमाणुः जलपरमाणुरित्यादिलक्षणानि हेयानीत्यर्थः ।

- १ तत्र प्रमाणमिति नास्ति ख पुस्तके. २ अणव इत्यारम्य बाधवारणायेत्यन्तं नास्ति च पुस्तके. ३ शेषमिति ज. ट. ४ स्पर्शवदिति ख. ५ व्यतिरिक्तकार्येति ख. ६ स चेति नास्ति क. ख. पुस्तकयोः. ७ दृष्टकादि—प्रत्यक्षेति ख. सु. ८ अनुगमने इति क. ९ पङ्क्तिरियं नास्ति छ. पुस्तके. १० कार्यजात इति च.

-[अ. टी.] आत्मादेः शरीरादिव्यतिरिक्तत्वेऽपि विषयत्वाभावादत उक्तम् स्पर्शवानिति ।
 अणुकव्यवच्छेदार्थं कार्यजात इति । स्पर्शवत्ये सति शरीरेन्द्रियव्यतिरिक्तपरमाणुव्य-
 वच्छेदार्थं जाते इत्युक्तम् । कार्यजातो विषय इत्युक्ते हस्तादिक्रियायां व्यभिचारस्स्यादत
 उक्तम् स्पर्शवानिति । एवमपि शरीरादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् शरीरेत्यादि ।
 गन्धरूपसस्पर्श गुणाः, संख्यादयः क्षितेः परापरगुरुत्वानि द्रववेगौ चतुर्दश १ यदुक्तं
 'गन्धवान् परमाणुः पार्थिवः स' इत्यादि तदन्यत्रापि ज्ञेयमित्यत आह-एवमिति ।
 स्नेहवान् यः परमाणुरुदकपरमाणुरित्यादिप्रकारेण यदानुगमात्तत्त्वज्ञानानि द्रष्टव्यानि ।

-[पा. टी.] स्पर्शवानिति । परमाणुनिवृत्तये जात इति । अणुवनिवृत्त्यर्थं कार्येति । कार्य-
 जातः, कार्यजातः । पटरूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय स्पर्शवानिति । शरीरादावतिव्याप्तिपरिहाराय
 तद्व्यतिरिक्त इति । द्रव्यत्वसिद्धये गुणानाह—सेति । द्रववेगगुरुत्वञ्च रूपावैकादशावधीति
 चतुर्दश गुणाः । यथा गन्धवान् परमाणुः पार्थिवः परमाणुः, तथा स्नेहवान् परमाणुरप्यः, परमा-
 नुरित्याह—एवमिति ।

(जललक्षणम् तद्विभागश्च) ।
 स्नेहवदम्भः । नित्यमनित्यञ्चेति । पूर्वं परमाणुरूपम् । उत्तरं द्वेषा-
 नित्यसमवेतम् अन्यथा चेति । पूर्वं अणुकम् । अस्त्वं नित्यसमवेतवृत्तिः,
 सरित्समुद्रजातित्वात् सत्तावदिति परमाणुअणुकयोस्तिद्धिः । उत्तरं
 शरीरादिभेदेन त्रेधा ।

(जलीयशरीरे प्रमाणम्)

शरीरे प्रमाणम्—आप्याः परमाणवः पारम्पर्येण शरीरारम्भकाः,
 स्पर्शवत्परमाणुत्वात्, पृथिवीपरमाणुवदिति । तच्च शुक्रशोणितसन्निपा-
 तनिरपेक्षम्, आप्यकार्यत्वात् कर्तृकादिवदिति । तत् प्रकृष्टादृष्टजम्, अपो-
 निजशरीरत्वात्, मशकादिशरीरवत् । सुखभूयस्त्वान्नार्थमजम् ।

(जलीयेन्द्रियं तत्र प्रमाणञ्च)

स्नेहवदिन्द्रियं रसनम् । आप्याः परमाणवः पारम्पर्येणेन्द्रियार-
 म्भकाः । स्पर्शवत्परमाणुत्वात्, तेजःपरमाणुवदिति तत्र प्रमाणम् ।
 उत्तरो विषयः सरिदौदिः । रूपादिचतुर्दशगुणवत् ।

१ इत्युक्तमिति ज. ट. २ यद्वयमिदं नास्ति स पुटके ३ स स्नेहेति ज. ट. ४ पार्थिवः परमाणु-
 रिति स. ५ इत्याहेति ज. ट. ६ यद्वयमिदं नास्ति ज. ट. पुटके ७ तदेति नास्ति ज. ट. पुटके ८
 इतीति नास्ति क. ख. पुनरुच्योः ९ स्नेहेति नास्ति क. ख. पुटके १० अन्तर्निहितं नु, अन्त-
 र्निहितं ख. ११ पार्थिवपरमाणुवदिति ख. १२ स्नेहेति नु, स्नेहवदिति स, स्नेहवदिति क. १३ तत्र
 सुखेति क. १४ यद्वयमिदं नास्ति क. ख. पुटके १५ इदं स्नेहवदिति नु. १६ पुनरुच्येति स.
 प्रमाण. ३

। [व. टी.] सरिदिति । सरित्समुद्रत्वयोर्व्यभिचारवारणाय जातीति । जातेस्सरि-
त्समुद्रयोर्वृत्तिर्विवक्षिता । सरित्समुद्रनिष्ठद्वित्वान्यतरत्वादौ व्यभिचारवारणाय जाति-
त्वादिति । साध्यकृत्यं तदर्थश्च पूर्ववत् ।

। आप्या इति । अत्रानुमाने यद्यपि न पार्थिवपरमाणुर्दृष्टान्तः, तस्य पारम्पर्येण
शरीरारम्भकत्वे साध्ये जलपरमाणोर्दृष्टान्तीकृतत्वात्, अन्योन्याश्रयात्, तथापि पृथिवी-
परमाणोः प्रकृष्टधर्मजायोनिजत्वे साध्ये जलपरमाणुर्दृष्टान्तः । अत्रेदं साध्यवत्त्वस्यागम-
सिद्धत्वात् । पृथिवीपरमाणोः पुनः शरीरारम्भकत्वमात्रं प्रकारान्तरेण जलपरमाणुर्दृष्टान्त-
निरपेक्षेणैव सिद्धमिति तदृष्टान्तेन जलपरमाणौ शरीरारम्भकत्वमात्रं साध्यते, पक्ष-
धर्मताबलादयोनिजत्वं सिध्यतीत्यन्यदेतदिति दिक् । पक्षधर्मताबलमभ्यर्थं प्रकारा-
न्तरतया साधयति-तच्चेति । कार्यत्वमात्रं योनिजे व्यभिचारि, अत आप्येति । आप्यत्वम-
स्वाधिकरणत्वं जलपरमाणौ व्यभिचारि । तत्र शुक्रशोणितसन्निपातं विना जायमानत्वा-
भावात्, अत उक्तम्-कार्यत्वादिति । अस्वाधिकरणसमवेतत्वादित्यर्थः । वर्णपलाः
करकाः । प्रकृष्टेति । उद्देश्यसिध्यर्थं प्रकृष्टेति । प्रकृष्टपरमाणुत्वादियजत्वानर्थान्तर-
वारणाय अदृष्टेति । योनिजशरीरे व्यभिचारवारणाय अयोनिजेति । योनिं विना
जायमानघटादौ व्यभिचारवारणाय शरीरत्वादिति । ननु, दृष्टान्त इव प्रकृष्टाधर्मजत्वं
पक्षेऽपि सिध्यत्वित्यत आह-सुखेति । यद्यपि मरणकालीनदुःखजनकाधर्मजन्यत्वमस्ति,
तथापि प्रकृष्टाधर्मजत्वं नास्तीत्यर्थः ।

[अ. टी.] एवं पृथिवीं निरूप्य जलं निरूपयति-स्नेहेति । अनित्यसमवेतसमुद्रादौ प्रवृत्ते-
स्सिद्धत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं नित्यसमवेतस्युक्तम् । अत्रापि सरित्समुद्रत्वजालोः
प्रत्येकं व्यभिचारवारणाय सरित्समुद्रजातित्वादित्युक्तम् ।

। आप्याः परमाणव इति पार्थिवानुमानव्याकर्तव्यम् । पार्थिववदाप्यमपि शरीरं
योनिजायोनिजमिति मन्वानं प्रत्याह-तच्चेति । करको वर्णपलः । ननु प्रकृष्टादृष्टजन्मैस्त्वे-
योनिजत्वं प्रयोजकम्, तदत्र गमकत्वलक्षणं प्रयोजकत्वं व्याख्यमावाज्ञास्तीति तत्राह, अथवा
योनिजत्वेनाभीष्टतरलाम् इत्याह-प्रकृष्टादृष्टजमिति । दृष्टान्ते प्रकृष्टमदृष्टमधर्माख्यम्,
प्रकृते, तु न तथेत्याह-तत्सुखभूयस्त्वादिति ।

। उत्तरः शरीरेन्द्रियव्यतिरिक्तः । गन्धं विहाय स्नेहयुक्ताः, पूर्वोक्ताः, एव चतुर्दश
गुणाः ।

१ द्वित्वेति नाम्नि छ. २ यदिनि नाम्नि च. ३ इति द्विमिति नाम्नि छ. ४ प्रकारतयेति च.
५ पदमिदं नाम्नि च पुल्ले. ६ इहः पदत्रये नाम्नि च पुल्ले. ७ इवाप्रकृष्टेति च. ८ नेति नाम्नि छ
पुल्ले. ९ एवमिति नाम्नि छ. १० अनित्यावयवेति अ. ट. ११ समुद्रादावप्रवृत्तेरिति अ, समुद्रादावव-
वृत्तेरिति ट. १२ अदृष्टजत्वे इति अ. ट. १३ पदमिदं नाम्नि छ. १४ अभीष्टलाम् इति अ, अभीष्ट-
तरलाम् इति ट. १५ संयुक्ता इति च. ट.

। [वा. टी.] गुरुत्वासाधर्म्यादगमो निरूपयति—स्नेहवदिति । सद्गुहासाधारणगुणविशेषः स्नेहः, तदधिकरणमित्यर्थः । न च द्रवत्वेनैव सद्गुहो भविष्यतीति वाच्यम्, द्रवीभूतानामपि कर्कादीनामसद्गुहाहकत्वात् । गुणात्तच्च सातिशयादयमन्तव्यम्, ततो नासम्भवादाशङ्कः । योनिजत्वमपाकरोति—'तच्चेति । 'अत्रात्यादित्येव हेतुः, कार्यपदन्तु व्यर्थम् । न चात्र चेतनानधिष्ठितत्वमुपाधि, मशकादिशरीरेषु साध्याभ्यासे । गन्धहीनाः स्नेहयुताः सलिलस्याप्यमी गुणा मता इति ।

(तेजोलक्षणं तद्विभागश्च)

अगुरुत्वे सति रूपवत्तेजः । तन्नित्यानित्यभेदाद्देहा । आद्यं परमाणुः । उत्तरं द्वेधा—नित्यसमवेतम् अन्यथा चेति । आद्यं अणुकम् । तेजस्त्वं नित्यसमवेतवृत्ति दीपसुवर्णजातित्वात्, सत्तावदिति परमाणुद्व्यणुकयोस्तिद्धिः । नासिद्धं साधनम् । तेजस्त्वं सुवर्णवृत्ति दीपाणुजातित्वात्, सत्तावदिति साधनात् । उत्तरं शरीरादिभेदेन त्रेधा । पूर्वत्र प्रमाणम्—तैजसाः परमाणवः पारम्पर्येण शरीरारम्भकाः, स्पर्शवत्परमाणुत्वात्, पृथिवीपरमाणुवदिति शरीरसिद्धिः । तदयोनिजमेव, तेजःकार्यत्वादीपवदिति ।

[व. टी.] तेजस्त्वमिति । दीपश्चाणुश्च तद्वृत्तिजातित्वादित्यर्थः । अणुत्वे व्यभिचारवारणाय दीपेति । दीपत्वे व्यभिचारवारणाय अपिबति । अणुदीपान्यतरत्वे व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति । यद्वा दीपस्याणुतद्वृत्तिजातित्वादित्यर्थः । न चाप्रयोजको हेतुः, सुवर्णस्य (तेजसश्च ? तेजस्ता) धकयुक्तीनामन्यत्र सुलभत्वात् ।

[अ. टी.] पृथिव्युदकयो रूपवतोर्व्यवच्छेदार्थम् अगुरुत्वे सतीत्युक्तम् । बाष्पादिव्यवच्छेदार्थं रूपवत्पदम् । ननु तेजस्त्वस्य स्वर्णजातित्वासम्प्रतिपत्तिर्विशेषगुणासिद्धोऽयं हेतुरिति तत्राह—नासिद्धं साधनमिति । अणुजातित्वादित्युक्ते पृथिवीत्वादौ व्यभिचारस्सादत उक्तम् दीपाणुजातित्वादिति । दीपारम्भका अणवो दीपाणवः । ननु तेजस्त्वं घटवृत्ति, उक्तहेतुदृष्टान्ताभ्यामित्यतिप्रसङ्गः । मैवम् ; सुवर्णे शोष्यमाने तेजस्सारंत्वस्य प्रत्यक्षत्ववदस्य तदभावेनाप्रयोजकत्वादिति । तैजसमपि शरीरं नानेकविधमाप्यवदित्वाह—तदयोनिजमेवेति । नन्वादितिकश्यपाम्यां तैजसत्वेनाभिमतदित्यादि जन्ममरणविरुद्धमेतत्, मैवम् ; मधुविद्यादौ देवतानां सूर्यमण्डलस्यामृतोपजीविनीनां रुद्राणामैवैको मृत्वेत्यादिना मातृपितृसम्बन्धमन्तरेण जन्मश्रवणात्, श्रुत्यादिविरोधे च पुराणप्रामाण्यानुपपत्तेः ।

। १ तदिति नास्ति सु. २ नित्यानित्यसमवायादिति क. ग. ३ पूर्ववदिति घ. ४ कदाचिच्छरीरेति ग. ५ पदमिदं नास्ति क. ग. पुस्तकयो. ६ बायुत्व इति छ. ७ अयमिति नास्ति ज. ड. पुस्तकयो. ८ नासिद्धसाधनमिति झ. ९ मैवमिति ज. ड. १० तेजसारवत्त्वोक्तिं ड. ११ इतीति नास्ति ज. ड. पुस्तकयो. * छान्दोग्ये मधुविद्या द्रष्टव्या । १२ श्रुत्या विरोधे इति ज. ड. । † चैलेनिना मयनवृत्तीपाधिकरणे धुतिविरुद्धानां स्पृष्टीनां पुराणानाम्नाप्राप्तार्थं साधितम् ।

[वा. टी.] रूपित्वाधर्म्यत्तेजो निरूपयति—अगुरुत्वे सतीति । घटनिवृत्तये अगुरुत्वं इति । आकाशनिवृत्तये रूपवदिति । ननु सुवर्णादेर्नैमित्तिकद्रवत्वेन घृतादिवत्पार्थिवत्वासिद्धिरसिद्धो हेतुरित्याशङ्क्य नैमित्तिकद्रवत्वं तर्ह्येव पार्थिवत्वं नियमयेत्, यदि गन्धवत्तत्सहकृता भवेत् । ये हि यज्जाता यन्नियामका धर्माः ते हि तत्समानाधिकृता दृष्टाः । यथा शीतोष्णादयः । न, चैतद्विकृते प्रादेशिकत्वादस्येति मत्वाह—नासिद्धमिति । न हि प्रतिज्ञामात्रेणार्थसिद्धिरिति तत्र प्रमाणमाह—तेजस्त्वमिति । पृथिवीत्वनिवारणाय दीपेति । दीपत्वनिवारणाय अण्विति । अणुत्वनिवारणार्थं जातीति । क्षणवच्च दीपारम्भका एव ।

(नयनेन्द्रिये प्रमाणम्)

नयनाख्येन्द्रिये प्रमाणम्—आलोकात्यन्ताभावे जायमानो रूपसाक्षात्कारस्तेजःकारणकः, रूपसाक्षात्कारत्वात्, सत्यालोके जायमानरूपसाक्षात्कारवत् । तद्गोलकस्थं नयनोन्मीलने सत्येवोपलब्धेः । आलोकाज्ञानं तम इत्याश्रयासिद्धिरिति चेत्—न; विधिमुखेन स्वातन्त्र्येण कृष्णाकारेण बह्वीरूपवत्तया प्रतीतेः ।

[व. टी.] आलोकात्यन्ताभावेति । प्रदीपादिजन्यत्वेनार्थान्तरवारणाय सप्तम्यन्तम् । आलोकान्योन्याभावस्थले आलोकादिजन्यत्वेनार्थान्तरवारणाय अत्यन्तेति । एवं घटत्वात्यन्ताभावस्थले सौरालोकादिजन्यत्वेनार्थान्तरवारणाय आलोकेति । आलोकसामान्यात्यन्ताभाव इत्यर्थः । आलोकः उद्भूतरूपवत्तेजः, उद्भूतरूपवन्महातेजो वा । तेन स्वमते चक्षुरादितेजस्सत्वेऽपि नाश्रयासिद्धिः । ईश्वरसाक्षात्कारस्य पक्षत्वेनांशतो बाधस्थान्तद्धारणाय जायमान इति । रससाक्षात्कारे, बाधवारणाय रूपेति । रूपानुमितौ बाधवारणाय साक्षात्कार इति । न च ज्ञानोपनीतरूपविषयकमानससाक्षात्कारमादाय बाधः, तदतिरिक्तत्वेन पक्षस्य विशेषणात् । उद्देश्यसिद्धये तेज इति । रसादिसाक्षात्कारे व्यभिचारवारणाय रूपेति । रूपानुमितौ व्यभिचारवारणाय साक्षात्कारत्वमुक्तम् । ज्ञानादिप्रत्यासत्त्यजन्यरूपसाक्षात्कारत्वं हेतुः । न्यायमतमवष्टम्भ्यालोकाधिकरणे जायमानो रूपसाक्षात्कारः पक्ष इति केचित् । तेषां मते जायमानत्वादि-विशेषणमुद्देश्यसिद्धये । तच्चेजः कुत्रेत्यत आह—तद्गोलकस्थमिति । हेतुमाह—नयनेति । नयनपदं गोलकाभिधायि । एतावता नयनविस्फारणमपि गोलकस्थतेजसः सहकारीति भावः । नयनगतिप्रतिबन्धकाभावतया तदुपयोगितया वा तदुपयोगः । आलोकाज्ञानमिति । तथाच तमसो द्रव्यत्वाभावेन किं गतरूपसाक्षात्कारः पक्ष इत्यर्थः । भट्टमताश्रयणेन प्राभाकरमतमुपमर्दयति—विधीति । भावेतया प्रतीयमानत्वादित्येको हेतुः ।

१ उपलब्धयत इति मु. २ अत्यन्ताभावेति छ. ३ उद्भूतानभिभूतरूपेति छ. ४ इति वादिनो मत इति छ. ५ प्रत्यक्षत्वेनेति छ. ६ आलोकाभावेति च. ७ गोलकपरमिति च. ८ उपदर्शयतीति छ. ९ भावरूपवदयेति च.

भावत्वभ्रमगोचरेऽभावे व्यभिचारी, भावत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वमन्यतरासिद्धम्, भावत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वे विरुद्धमत आह—स्वातन्त्र्येणेति । ननु स्वातन्त्र्यं किम् ? प्रतियोग्यनपेक्षनिरूपणत्वञ्चेतर्हसिद्धिः । विशेषणत्वेनाप्रतीयमानत्वं यदि, तदाप्यसिद्धिः । अन्धकारवद्भूतलमिति प्रतीतौ तस्य विशेषणत्वात् । भूतले घटाभाव इति प्रतीतिविषयेऽभावे व्यभिचारश्च । एवं स्वातन्त्र्यं विशेष्यत्वमित्यपि परास्तम् । न च स्वातन्त्र्यमन्याविषयकप्रतीतिविषयकत्वम्, अन्यविषयकप्रतीत्यविषयकत्वं वा, असिद्धेः । अन्धकारादीनामप्यन्धकारत्वगोचरप्रतीतिविषयत्वात् । न चासमवेतत्वं विशेष्यत्वम्, भावत्ववादिनो नपेक्षसिद्धेरित्यत आह—कृष्णाकारेणेति । नीलत्वेन प्रतीयमानत्वादित्यर्थः । तथाच तमो नीमारः, भारो वा द्रव्यं वा, नीलत्वात् नीलर्धटवदिति प्रयोगार्थः । आलोकज्ञानाभावश्चान्तरः, बाह्यपदार्थरूपतया प्रतीतिर्न स्यात् । अस्ति च तत्प्रतीतिरित्याह—यहीरूपंयत्तेति ।

[अ. टी.] नयनाख्यं तैजसमिन्द्रियम् । तत्र प्रमाणम् आलोकेत्यादि । सौराधालोकाभावेऽपि दीपाधालोकजन्यो रूपसाक्षात्कारस्सिद्धोऽस्तीत्यत उक्तम्—अत्यन्ताभावेति । स्पर्शदिसाक्षात्कारे व्यभिचारवारणाय रूपपदम् । कुत्रत्यं रूपपदं साक्षाद्भवतीति तत्राह—तद्गोलकस्थमिति । अतिसामीप्यान्नयनरूपोपलब्धिर्न युक्ता । अथ नीलं रूपं तमोगतमुपलभ्यते । मैवम् ; तस्य भावत्वासम्प्रतिपत्तेः । तदाह—आलोकाज्ञानमिति । अथवा तस्य नेत्रेन्द्रियसालोकवद्गोलकादन्यत्र वृत्तिर्न प्रतिपेक्षति—तद्गोलकस्थमिति । अनुमानाक्षिपति—आलोकाज्ञानमिति । पक्षीकृतरूपसाक्षात्कारस्यासिद्धत्वादाश्रयासिद्धिः । तमःप्रतीतिरभावप्रतीतिर्वैलक्षण्यान्नाभावत्वं तमस इत्याह—न विधिमुखेनेति । तमो ध्वान्तमित्यत्र नञ्जुल्लेखामावाद्घटाभाव इत्यादिवत्प्रतियोगिपारतय्याभावाच्च । नीलं तम इति कृष्णाकारप्रतीतिर्नीलर्धटादिप्रतीतिवत्तस्योपलब्धिमुखत्वाच्च ।

[वा. टी.] आलोकेति । अपवरकान्तवैर्यालोकाभावे रूपग्रहणस्य सौराधालोकाकारणत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय अत्यन्तेति । सर्वालोकाभाव इत्यर्थः । आलोकात्यन्ताभाव इति विषयसामग्री स्पर्शदिसाक्षात्कारनिराकरणाय रूपेति । युक्तयोगिपरमाणुसाक्षात्कारनिराकरणाय अत्यन्तपदं द्रष्टव्यम् । किं निष्ठं तर्हि तत्तेज इत्यत आह—तद्विति । नयनोन्मीलनेति । नयनसम्बन्धिपक्षोक्षेप इति यावत् । उपलब्धेः रूपादिप्रकाशादित्यर्थः । अत्र कश्चिदाक्षिपति—आलोकाज्ञानमिति । आलोकज्ञानाभाव इत्यर्थः । आश्रयासिद्धिरिति । पक्षीकृतरूपसाक्षात्कारस्य तत्रा-

१ प्रकारकमेति च. २ इत् आरम्य विरुद्धमित्यन्तं नास्ति ॥ ३ इह भूतल इति च. ४ त्वसिरेति छ. ५ न च समवेतत्वे सतीति च. ६ अभावत्वेति च. ७ इत्यर्थ इत्यधिकं च. ८ पटवदिति च. ९ पदार्थतयेति च. १० घटातीतिरिति च. ११ वत्र चेति ज. ट. १२ अपीति नास्ति ॥ १३ निवेद्यतीति ज. ट. १४ पक्षीकृतमेति ज, पक्षीयवत्येति ट. १५ इति चेत्तेलधिकं ट. १६ प्रतीतिवैलक्षण्यादिति ज, पदमिदं नास्ति ट १७ कृष्णाकारेति नास्ति ॥ १८ पटादीति ज. ट. १९ तस्य बहिरिति ॥

भावादिति भावः । दूषयति-नेति । तमो यदि ज्ञानाभावः स्यात्तर्हि भावत्वेन प्रतियोगिज्ञाननिरपेक्षेण नीलरूपत्वेन ज्ञानाभावस्य चान्तरत्वाद्विद्येन च या प्रतीतिस्सा न भवेत् । अस्ति च तत्त्वेन प्रतीतिरित्यर्थः ।

तमो न द्रव्यमिति ।

(तमसोऽद्रव्यत्वनिरूपणम्)-

अत एव नालोकाभावस्तमः । आलोकाभावस्तम इति वदतोऽपि मते आरोपितनीलरूपप्रतीतेस्सत्त्वान्नाश्रयासिद्धिः । न द्रव्यं तमः, असत्येवालोके चक्षुषा प्रतीयमानत्वात्, आलोकाभाववदिति प्रमाणोपपत्तेः । कृष्णरूपं तमो द्रव्यमिति वदतो मते रूपप्रतीतेः सत्त्वान्नाश्रयासिद्धिः । तदतिरिक्तो भौमादिः विषयः । रूपाद्येकादशगुणवत् ।

[अ. टी.] अत एवेति । भावत्वादिसाधकयुक्तेरेवेत्यर्थः । अभावत्ववादिमतेऽप्याश्रयासिद्धिं परिहरति-आलोकाभावस्तम इति । नन्वेवं भट्टमताङ्गीकारेण कणभ्रूवात्तबलम्बिनोऽप्यपसिद्धान्त इत्यत आह-तमो न द्रव्यमिति । घटादौ व्यभिचारधारणाय असत्येवालोके इति । पुनरप्यालोकनिरपेक्षत्वग्न्यग्रहविषये घटादौ व्यभिचारधारणाय चक्षुषेति । अस्मादिचक्षुषेत्यर्थः । तेनालोकनिरपेक्षमार्जारादिचक्षुर्ग्राह्यत्वेऽपि न व्यभिचारः । यद्वा मार्जादिगोलकसम्बद्धसामर्थ्यवशात् तदेकचक्षुर्मात्रसहकारि तेजोऽस्त्येवेति बोध्यम् । यत्राप्यौषधादिलेपं कृत्वा तस्मिन् वस्तु पश्यन्ति, तत्राप्यौषधलेपेन तेजोऽन्तराकर्षणमेवेति पर्यालोचनीयम् । द्रव्यत्ववादिमते सुतरां नाश्रयासिद्धिरित्युक्तमेवेत्याह-इति वदत इति ।

[अ. टी.] बहूलोऽन्धकारो विरलोऽन्धकार इति तारतम्यप्रतीतिश्चाभावप्रतीतिश्च तद्वैलक्षण्यं प्रसिद्धम् । ततो नालोकग्रहणाभावस्तमः, किन्तु घटादिवद्भावस्वरूपमेव, तर्ह्यपसिद्धान्त इत्यत आह-आलोकाभाव इति । आलोकाभावस्तम इति मते न तावदालोकाज्ञानं तम इति विशेषः^{१०} । तर्हि कथं रूपसाक्षात्कारलक्षणधर्मिलाम् इत्यत आह-आरोपितेति । आलोकाभावे स्मर्यमाणं नीलरूपारोपस्वीकाराद्रपप्रतीतिधर्मिलामो विधिमुखप्रतीत्याद्युपपत्तिश्च । सिद्धे ह्यभावत्वे तमस आलोकाभावत्वं वाच्यम् । तदेव कुत इत्यत आह-असत्येवेति । तमो न भावरूपमालोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वात्, यथालोकाभाव इत्यनुमानम् । तमो न द्रव्यमिति पाठे स्पष्टमद्रव्यत्वेनाभावत्वम् । ततो न स्वमत आश्रयासिद्धिः । परमते तु तदभाव उक्त एवेत्याह-कृष्णरूपमिति । भौमं तेजो बन्धिः । आदिशब्दादाकरजादि । पूर्वोक्तचतुर्दशगुणमध्ये सेहरसंगुस्त्ववर्जमेकादश गुणाः ।

१ आलोकाभावस्तमः । आलोकाभावस्तमो न द्रव्यमिति वदत इति मु. २ नीलेति नास्ति क. ख. ग. घ. पुस्तकेषु. ३ न तमो द्रव्यमिति मु. ४ भावत्वसाधक इति च. ५ तमसो भावरूपताङ्गीकारेणेति क. ६ अपीति नास्ति च पुस्तके. ७ बहूल इति ट. ८ पदमिदं नास्ति ट. पुस्तके. ९ मतेऽपीति ख. ट. १० इति शेष इति ख. ट. ११ तदेवदिति ट. १२ द्रव्यत्वेति ख.

[वा. टी.] ननु भवत्पक्षेऽपि नाङ्गं धारयतीत्याह—अत एवेति । अत एवोक्तद्रूपणसाम्यादेव । तथा चाभावे रूपं भवति । तत्राश्रयासिद्धिः, तावत्परिहरति—आलोकेति । अपिरेवार्थो नञ्चिन्तः । आलोकाभावस्तम् इति वदतो मते नैवाश्रयासिद्धिरित्यन्वयः । हेतुमाह—आरोपितेति । विशेषादर्शन-संप्रीवीनं सामान्यदर्शनमारोपे निमित्तम् । तत्प्रकृतेऽप्यस्तीति न किञ्चिदनुपपन्नम् । अनेन स्वमते कृष्णाकारप्रतीतेरप्युपपत्तिरसूचिता । प्रतिवादिनस्तु आरोपाभावात्कृष्णप्रतीतिर्न भवत्येवेति भावः । विधिसुखमप्यसिद्धम् । न हि तत्राप्रयोग इत्येवंविधः, अन्तर्णातनवर्थेनापि पदेन प्रयोगसम्भवात् । प्रलयादिशब्दवत्सातन्त्र्यमप्यसिद्धम्, आलोकग्रहणे सत्येव तमोग्रहणात्, अन्यथा जात्यन्यस्य तमोबुद्धिमसङ्गादिति । स्वमतदाकार्यं परमतं प्रतिक्षिपति—न द्रव्यमिति । असत्येवालोका इति । सत्यालोकाभाव इति यावत् । मतान्तरेणाश्रयासिद्धिः परिहरति—कृष्णरूपमिति । अस्मिन् मते आलोकात्यन्ताभाव इति भावसत्तमी । रसगन्धगुरुत्वहीनास्त एव गुणाः ।

*

(वायुलक्षणं तद्विभागश्च)

रूपासहचरितस्पर्शवान् वायुः । स नित्यानित्यभेदेन द्वेधा । पूर्वः परमाणुः । उत्तरो द्वेधा—नित्यसमवेतोऽन्यथा चेति । आद्यो द्व्यणुकम् । वायुत्वं नित्यसमवेतवृत्तिः, स्पर्शवद्भूतद्रव्यत्वावान्तरजातित्वात् पृथिवीत्ववदिति परमाणुद्व्यणुकयोस्सिद्धिः । उत्तरश्शरीरादिभेदेन त्रिधा भिद्यते । वायु-वीयाः परमाणवः पारम्पर्येण शरीरारम्भकाः स्पर्शवत्परमाणुत्वात् पृथिवीपरमाणुवदिति शरीरसिद्धिः । तदयोनिजं वायुकार्यत्वात् त्वगिन्द्रियवत् इति । वायुवीयाः परमाणवः पारम्पर्येणेन्द्रियारम्भकाः स्पर्शवत्परमाणुत्वात् तेजःपरमाणुवदिति त्वगिन्द्रियसिद्धिः । तदन्यो विषयः ।

[वा. टी.] रूपासहचरेरिति । घटादावतिव्याप्तिवारणाय रूपासहचरितेति । आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय स्पर्शवानिति । रूपात्यन्ताभावाधिकरणत्वे तति स्पर्श-त्यन्ताभावानधिकरणं वायुरित्यर्थः । स्पर्शवदिति । घटसंनिदन्यतरत्वे व्यभिचार-वारणाय, जातित्वादिति । घटत्वे व्यभिचारवारणाय द्रव्यत्वावान्तरेति । द्रव्य-त्वसाक्षाद्याप्येत्यर्थः । पृथिवीत्वसाक्षाद्याप्यं घटत्वं भवत्येवेत्यत आह—द्रव्यत्वमेति । आत्मत्वे व्यभिचारवारणाय स्पर्शवदिति । घटजलद्वित्वे व्यभिचारवारणाय जातिप-दार्थान्तर्गतनित्यत्वमागः । विशेषत्वादिना रूपेण द्रव्यत्वसाक्षाद्याप्यविशेषादौ व्यभिचार-

१ नित्यानित्यभेदमिह इति क. २ यत्त्वे सतीति सु. ३ उत्तरत्वेणा शरीरादिभेदेनेति सु. ४ वायु-परमाणव इति क, ख, ग, घ. ५ कदाचिच्छरीरेति ग. ६ तेजःपरमाणुवदिति सु. ७ वायुशरीरेति ग. ८ वायुत्वादिति ख, घ, सु. ९ कदाचिदिति ग. १० रूपादाविति च. ११ परेति च. १२ घटस्थूलजलेति घ.

वारणाय जातिपदार्थान्तर्गतानेकत्वभागः । प्रतिज्ञातार्थविचारः पूर्ववत् । वायुकार्यत्वादिति । अयोनिजत्वं योनिं विना जायमानत्वम् । तेन वायुपरमाणौ व्यभिचारवारणाय कार्यत्वादिति ।

[अ. टी.] पृथिव्यादिव्यवच्छेदार्थं रूपासहचरितेति पदम् । जातित्वमवान्तरजातित्वञ्च घटत्वादौ व्यभिचरतीति द्रव्यत्वपदम् । मनस्त्वात्मत्वयोर्व्यभिचारवारणाय स्पर्शवद्भवेति । स्पर्शवद्भूतत्वादित्युक्ते परमाणुगुणादौ व्यभिचारस्सादत उक्तं स्पर्शवद्भूतजातित्वादिति । एतद्व्युत्पत्तेः घटत्वादौ व्यभिचारस्सादत उक्तम्-द्रव्यत्वेति । त्वगिन्द्रियमेव कुतस्सिद्धम् ? तत्राह-चायवीया इति । इन्द्रियस्य मध्यमपरिमाणत्वेन चक्षुषाधारममपूर्वकत्वात् पारम्पर्येणेत्युक्तम् । तदन्यः शरीरेन्द्रियव्यतिरिक्तो वायवीयो विषयः ।

[वा. टी.] स्पर्शवत्त्वादिसाधर्म्याद्वायुं लक्षयति-रूपेति । घटनिवृत्तये रूपेति । आकाशनिवृत्तये स्पर्शेति । घटत्वादिनिवृत्तये द्रव्येति । मनस्त्वादिपरिहाराय स्पर्शवद्भवेति ।

(वायोः प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वविचारः)

त्वगिन्द्रियम् अरूपिद्रव्यग्राहकम्, अरूपित्वे सति द्रव्यग्राहकेन्द्रियत्वात् मनोयदिति वायोः प्रत्यक्षत्वसिद्धिरिति चेत्-न; मूर्तत्वे सति संघदास्पृशवत्त्वस्योपाधित्वात् । विप्रतिपन्नो वायुरप्रत्यक्षः वायुत्वात् त्वगिन्द्रियवत् । स्पर्शादि नवगुणवान् ।

[व. टी.] त्वगिन्द्रियमिति । मनसा सिद्धसाधनवारणाय चक्षुषा साधवारणाय च त्वगिति । शरीरसहजावरणभूतायां त्वचि अर्थान्तरत्वभङ्गाय इन्द्रियमिति । अरूपिद्रव्यग्राहकत्वं न रूपिद्रव्यग्राहकत्वविरहः, त्वचो घटग्राहकत्वेन पाधात्, वायुग्राहकत्वासिद्धेः । किन्तु अरूपि यद्रव्यं तद्ग्राहकत्वमित्यर्थः । आकाशादौ त्वक्पुरस्कृत्यगुणभावेनाग्राहकत्वं सिद्धौ यक्षधर्मतावलेन वायुग्राहकत्वसिद्धिः । घटादिग्राहकत्वेनार्थान्तरवारणाय अरूपीति । रूपात्यन्ताभाववदित्यर्थः । स्पर्शग्राहकत्वेनार्थान्तरवारणाय द्रव्येति । अरूपिद्रव्यानुमापकत्वेनार्थान्तरवारणाय ग्राहकत्वं विषयजन्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षजनकत्वं साध्यम् । चक्षुषि व्यभिचारवारणाय अरूपित्वेति । श्रोत्रे व्यभिचारवारणाय द्रव्यग्राहकेति । अनुमानविषया रूपित्वे सति द्रव्यग्राहकं श्रोत्रं भवेति । न

१ गतापारगतानेकेति च. २ व्यपोहायमिति ट. ३ चरितपदमिति ज. ट. ४ द्रव्यपदमिति ट. ५ उक्तेऽपीति अ. ट. - ६ वायुप्रत्यक्षत्वेति ख, ग, घ. - ७ स्पर्शद्रव्यत्वत्वेति ग, मु. ८ अर्थान्तरभङ्गायेति च. ९ घटादिति च. १० भावेन ग्राहकत्वासिद्धमिति च. ११ रूपिद्रव्यप्रमाणभावात् रूपिद्रव्यप्रकारणं भवतीत्यधिकं च पुस्तके.

चोक्तरूपं साध्यं तत्र, अत आह-इन्द्रियत्वादिति । द्रव्यप्रत्यक्षजनकत्वादित्यर्थः । इन्द्रियत्वपुरस्कारो विवक्षित इति वा । तेन न कालादावुक्तासाधारण्यघटितसाध्याभावेऽपि व्यभिचारः । मूर्तत्वं इति । मनसि साध्यमस्ति, मूर्तत्वे सति सर्वदा स्पर्शशून्यत्वमुपाधिश्चास्ति । पक्षे च साधनवति नास्तीति साधनाध्यापकः । पक्षेऽपि प्रथमक्षणे स्पर्शशून्यत्वमस्तीति साधनव्यापकतानिराकरणाय सर्वदेत्युक्तम् । सर्वदा स्पर्शशून्यत्वं गुणादौ, न च साध्यमिति समव्याप्तिमङ्गभङ्गाय सत्यन्तम् । कालादौ परिमाणवत्त्वे सति सर्वदा स्पर्शशून्यत्वमस्ति, न च साध्यमिति दीयतादवस्थ्यदुस्थितायै मूर्तत्वमवच्छिन्नपरिमाणत्वरूपयुक्तम् । स्वमतमाह-विप्रतिपन्न इति । अत्रानुकूलतैर्को बहिर्द्रव्यप्रत्यक्षताप्रयोजकोद्भूतरूपत्वादुत्थाप्यो बोध्यः । ननु शरीराधारम्भकत्वानुमानेषु पृथिवीपरमाण्वादिपक्षकेष्वंशतो बाधः, घटारम्भकपरमाणूनां शरीराद्यनारम्भकत्वादिति चेत्-न; तेषामपि शरीराधारम्भणयोग्यताया अनुद्भूतरूपाद्युत्पत्तिदशायां घ्राणारम्भेणोपपत्तेः । न चोद्भूतरूपादिजलपरमाण्वादिना कथमनुद्भूतरूपादिरसनाधारम्भ इति वाच्यम् । तप्तकटाहतैर्लतेज इव निमिचभेदवशेन विजातीयारम्भकत्वस्यापि स्वीकारात् । यद्वा सर्वेऽपि परमाणवोऽनुद्भूतरूपा एव निमिचभेदवशेन विजातीयारम्भकाः, यद्वा पृथिवीत्वं शरीरारम्भकवृत्ति स्पर्शवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्याप्यजातित्वादित्यनुमाने तात्पर्यमिति दिक् ।

[अ. टी.] स केन गृह्यत इत्यपेक्षायां पूर्वपक्षं तावदाह-त्वग्निन्द्रियमिति । घटादिग्राहकत्वेन सिद्धसाधनताव्यवच्छेदार्थम् अरूपिपदम् । स्पर्शग्राहकत्वेनोक्तदोषव्युदासार्थं द्रव्यपदम् । घ्राणादौ व्यभिचारवारणाय द्रव्यग्राहकेति पदम् । चक्षुषा व्यभिचारवारणार्थम् अरूपित्वे सतीत्युक्तम् । अरूपित्वादित्युक्ते रूपादौ व्यभिचारः, तत इन्द्रियत्वादित्युक्तम् । अरूपीन्द्रियत्वादित्युक्ते श्रोत्रे व्यभिचारस्स्यात्ततो द्रव्यग्राहकेत्युक्तम् । अरूपित्वे सति द्रव्यग्राहकत्वादित्युक्ते चक्षुराद्यनुमाने व्यभिचारस्स्यात्तत इन्द्रियपदम् । सोपार्थिकोऽयं हेतुरन्यथासिद्ध इति परिहरति-नेति । गुणादेरस्पर्शवत्त्वेऽप्यरूपिद्रव्यग्राहकत्वाभावात्साध्याध्यापकत्वं मा भूदिति मूर्तत्वे सतीत्युक्तम् । मूर्तत्वादित्युक्ते पक्षेऽपि तद्भावेन साधनव्यापकता स्यात्तेनास्पर्शवत्त्वग्रहणम् । अथवा मूर्तत्वेऽपि चक्षुरादावुक्तसाध्याभावादित्युक्तम् । ननु शब्दसारूपिद्रव्यग्राहकत्वेऽपि मूर्तत्वे सत्यस्पर्शवत्त्वाभावेन साध्याध्यापकत्वं स्यात् । साधनाध्यापकत्वे सति साध्यसमव्यापकश्चोपाधिः । मैवम्; ग्राहकशब्देन साक्षात्कारजनकत्वस्य विवक्षितत्वात् । मूर्तत्वे सति स्पर्शशून्यत्वं पाकावसायां

१ नेति नास्ति च पुस्तके. २ असाधारण्यघटितेति च. ३ अनुकूलतैर् इति च. ४ घटादीनि च.

५ अरम्भोपपत्तेरिति च. ६ तैलव्येति च. ७ अनुद्भूता एवेति च. ८ स्पर्शवद्वृत्तीति नास्ति च पुस्तके.

९ साधनवतेति च, ट. १० निरासार्थमिति च, ट. ११ श्रोत्रेणेति च, ट. १२ अत इति च, ट. १३ सोपाधिहेतुरिति ट.

१४ असाध्यव्यापकत्वमिति च, ट.

पार्थिवाणुषु विद्यते, न च साध्यम् । ततो न समव्याप्तिरिति उक्तम्-सदेति । परपक्षं प्रतिक्षिप्य स्वपक्षे प्रमाणमाह-विप्रतिपन्न इति । विप्रतिपन्नो विपर्ययः । स्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्ववेगाख्या नव गुणाः ।

[वा. टी.] घटादिना सिद्धसाधनवारणाय अरूपीति । स्पर्शे सिद्धसाधनवारणाय द्रव्येति । श्रोत्रेऽतिव्याप्तिपरिहाराय द्रव्यग्राहकेति । चक्षुष्यतिव्याप्तिपरिहाराय अरूपिग्राहकेति । स्निग्धेऽतिव्याप्तिपरिहाराय इन्द्रियेति । साधनव्याप्तिपरिहाराय स्पर्शेति । आकाशादीं साव्याव्याप्तिपरिहाराय मूर्तत्व इति । पाकावस्वपरमाणुनिवृत्तये सदेति । यत्राव्ययहितद्रव्यप्रत्यक्षत्वं तत्र तद्रतसंख्यादीनामपि प्रत्यक्षत्वमिति व्याप्तेर्निवृत्तत्वात्प्रकृते च तदभावान्न प्रत्यक्षत्वमिति बाधकस्त-
कोंऽप्यनुसन्धेयः । स्पर्शादिसंस्कारान्ता नव गुणाः ।

*

(आकाशनिरूपणम्)

शब्दचदाकाशम् । तत्र प्रमाणम्-शब्दोऽष्टद्रव्यातिरिक्तसमवेतः, सत्त्वे सति श्रोत्रग्राह्यत्वात्, शब्दत्वेवदिति । विप्रतिपन्नाः शब्दाः श्रूय-
माणशब्दाश्रयाश्रयाः शब्दत्वात्, श्रूयमाणशब्दवत् ईत्येकत्वसिद्धिः ।

[व. टी.] शब्द इति । पृथिव्यादिसमवेतत्वेनार्थान्तरवारणाय अतिरिक्तान्तम् । पृथिव्याद्यप्येतिरिक्तं भवत्येवेत्यत उक्तम् द्रव्येति । बाधवारणाय अष्टेति । गुणादि-
सम्यन्धत्वेनार्थान्तरवारणाय समवेत इति । प्रतियोगिनिविष्टत्वाद्द्रव्येति न व्यर्थम् । रूपे
व्यभिचारवारणाय श्रोत्रग्राह्यत्वादिति । शब्दध्वंसादौ व्यभिचारवारणाय सत्त्व
इति । भावत्व इत्यर्थः । अत्र पक्षधर्मतावलादष्टद्र (व्यत्वा? व्या) तिरिक्ते द्रव्यत्वं सिध्यति ।
दृष्टान्ते शब्दत्वेऽष्टद्रव्यातिरिक्तशब्दवृत्तित्वम् । अत्र पृथिवीत्वादिरूपेणाष्टौ द्रव्याण्युभय-
वादिसिद्धानि ग्राह्याणि । तेनाष्टघटादतिरिक्तपटादिबृत्तित्वेन नार्थान्तरम् । न वा
गगनस्य यत्किञ्चिदष्टद्रव्यनिवेशितंतया बाधः । ननु यथा नानारूपाणां नानाधिकरणानि,
तथा शब्दानामपि नानाधिकरणता स्यादित्यत आह-विप्रतिपन्न इति । ननु सर्वशब्द-
स्यैकाधिकरणत्वेऽग्रहप्रसङ्ग इति चेत्-न; कर्णशङ्कुल्यवच्छिन्नमसौ तद्ग्रहस्वीकारात् ।
यद्वा नमोमात्रं श्रोत्रं सर्वेपामेकमेव । न चातिप्रसङ्गः, शब्दकारणीभूतवायुसंयोगस्य
कर्णशङ्कुलीनिष्ठस्य शब्दसाक्षात्कारजनने श्रोत्रसहकारित्वात् । ग्रथमपक्षे पक्षोऽपि एतत्क-
कारमिन्नो बोध्यः, तेन स शब्दः केनचिच्छ्रूयत एव, निष्प्राणिकस्य प्रदेशस्य वक्तुमश-
क्यत्वात् । एवमेकेनापि कयाचित्प्रत्यासत्या सर्वशब्दः श्रूयत इत्याश्रयासिद्धिर्वारिता ।

१ पदमिदं नास्ति इ पुनरुक्ते. २ भावनावेगेति झ. ३ शब्दवदिति सु. ४ इति शब्दत्वं सिद्धमिति
सु, इत्येकत्वं तस्य सिद्धमिति क. ५ पृथिव्याद्यष्टानिरिक्तमिति च. ६ सम्यन्धेनेति च. ७ द्रव्येति न
व्यर्थमिति नास्ति च पुनरुक्ते. ८ घटातिरिक्तेति च. ९ निवेशितयेति च. १० एकयेति च. ११ वादिकृता
न प्रथमपक्षे इति च पुनरुक्ते.

मेरीशब्दो मया श्रुत इति धीस्तु मेरीजन्यशब्दप्रयोज्यशब्दविषयकत्वविषया । वधि-
रस्य तु शब्दग्रहो न भवति, तदुपग्राहकादृष्टाभावात् । श्रूयमाणशब्दातिरिक्ता इति
पक्षार्थः । श्रूयमाणशब्देनांशतः सिद्धसाधनवारणाय श्रूयमाणातिरिक्ता इत्युक्तम् । रूपा-
दिना शब्दत्वेन च बाधभङ्गाय शब्दा इति । श्रूयमाणशब्दस्य य आश्रयस्य आश्रयो
येषां त इत्यर्थः । अर्थान्तरवारणाय श्रूयमाणेति । मया श्रूयमाणोऽयं ककारः तदधिकर-
णवृत्तय इत्यर्थः । न च ते ते शब्दाः तत्तदाकाशवृत्तयस्सन्त एतत्ककाराश्रयाभिन्नाकाशे
वर्तन्तामिति वाच्यम्, गौरवात्, तेषां ग्रहापत्तेश्च । (?) स्वस्वाश्रयत्वे आश्रयाश्रयत्वे
शब्दाश्रयाश्रयत्वे चार्थान्तरवारणाय श्रूयमाणेति ।

[अ.टी.] शब्दस्य समवेतत्वसाधनेऽष्टद्रव्यान्यतमद्रव्याश्रयत्वेन सिद्धसाधनता बाधो वा
स्यादत उक्तम् अष्टद्रव्यातिरिक्तेति । अष्टद्रव्यव्यतिरिक्तत्वमात्रसाधने स्फुटा सिद्धसाध-
नता, ततः समवेतपदम् । सत्वादित्युक्ते रूपादौ व्यभिचारस्सादतः श्रोत्रप्राज्ञत्वादि-
त्युक्तम् । श्रोत्रप्राज्ञत्वादित्युक्ते शब्दान्योन्याभावे व्यभिचारस्सादतः सत्त्वे सतीति ।
सत्त्वशब्देन भावत्वं विवक्षितम् । ननु शब्दानामनेकत्वेन रूपाद्याश्रयघटादिवदाकाशनेकत्वं
प्राप्तम्, तत्राह—विप्रतिपन्ना इति । एकशब्दश्रवणकालेऽश्रूयमाणाश्शब्दाः विप्रतिपन्नाः ।
शब्दाश्रया इत्युक्ते शब्दानां शब्दाश्रयत्वाभावेन बाधस्सादत उक्तम् शब्दाश्रयाश्रयां
इति । तथापि तेषां यो भिन्न आश्रयस्तदाश्रयत्वे सिद्धसाधनता, तत्परिहारार्थं श्रूयमा-
णेति । अतस्सर्वशब्दानामेकाश्रयाश्रितत्वादाकाशैकत्वं सिद्धम् ।

[वा.टी.] परिशिष्टं भूतं स्पष्टयति—शब्दवदिति । भावत्वे सति शब्दाख्यन्ताभावाधिकरणमि-
त्यर्थः । सिद्धसाधननिवृत्तये अष्टद्रव्यातिरिक्तेति । एतच्चानुमानं सामान्यरूपत्वेन सोपाधिकमिति
पदान्तरप्रक्षेपोक्तोपेक्षायां व्याख्येयम् । तद्यथा—शब्दोऽष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यसमवेतः, गुणत्वे सति
श्रोत्रप्राज्ञत्वात्, व्यतिरेके शब्दत्ववति न चाप्रसिद्धविशेषणत्वम् (?) शब्दस्य तावत्कर्मत्वात्सह-
चरितसामान्यैकसमवायित्वेन गुणत्वं प्रसिद्धम्, गुणत्वेनाश्रयस्यावश्यम्भावात्पार्थिवानुगुणानां यावद्र-
व्यभावित्वेन वा श्रोत्रप्राज्ञत्वेन वा स्पर्शवदनाश्रयत्वाद्विशेषगुणत्वेन कालावसमवेतत्वाभियतत्वाद्येन्द्रि-
यप्राज्ञत्वेनात्माश्रयत्वानुपपत्तेरतिरिक्तस्य सामान्यतः प्रसिद्धत्वादिति । विशेषगुणत्वञ्च सामान्याश्रयत्वे
सति नियतबाधैकेन्द्रियप्राज्ञत्वान्मन्तव्यम् । शब्दाभावनिवृत्तये गुणत्वेति । रूपनिवृत्तये
श्रोत्रेति । भूतत्वात्प्राप्तमनेकत्वं वारयति—विप्रतिपन्ना इति । विप्रतिपन्नाः श्रूयमाणेतराः ।
भिन्नाश्रयत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय श्रूयमाणेति । बाधनिवारणार्थम् आश्रयेति ।

*

१ इत्यर्थे इति घ. २ इत आरभ्य श्रूयमाणेतीति पर्यन्तं व्यतिक्रमः पद्धीनां समुपलभ्यते घ पुस्तके.
३ भाश्रयत्वेति ट. ४ पदमिदं नास्ति श पुस्तके. ५ नत उक्तमिति ज, ट. ६ रूपाश्रयेति ट.
७ तेषां शब्दानामिति ज, ट. ८ न सिद्धसाधनता इत्यत उक्तमिति ज, ट.

(आकाशस्य नित्यत्वम्)

आकाशं नित्यम्, असमवेतभावत्वात्, समवायवदिति नित्यत्वं सिद्धम् । तदेवेन्द्रियं श्रोत्रं नाम, शब्दोपलब्धिर्मृतेन्द्रियकरणिका रूपशब्दयोरन्यतरसाक्षात्कारत्वाद्वृषसाक्षात्कारवत् इति पारिशेष्यात्सिद्धम् । परिशेषस्तु-विप्रतिपन्नाः शरीरावयवा नयनादयश्च तद्ग्राहका न भवन्ति, कार्यत्वाद्धटवदिति । न कालादयस्तद्ग्राहकाः, अजसंयोगनिराकरणात् । शब्दादिपञ्चकम् ।

[य. टी.] अस्मादिवाद्येन्द्रियग्राह्यगुणाधारत्वेन प्रसक्तमनित्यत्वं वारयितुं नित्यत्वं साधयति-आकाशमिति । घटादौ व्यभिचारवारणाय असमवेतेति । प्रागभावे व्यभिचारवारणाय भावत्वादिति । न चाकाशत्वमिन्द्रियारम्भकवृत्ति भूतलावृत्तिव्यविभोजकत्वादित्यत आह-तदेवेति । लाघवादेकमेवाकाशं कर्णशृणुल्यवच्छेदेनेन्द्रियमनुमानत्वप्रयोजकमित्यर्थः । तत्रानुमानं प्रमाणयति-शब्दोपलब्धिरिति । रूपाद्युपलब्धौ सिद्धसाधनवारणाय शब्देति । जन्यशब्दसाक्षात्कार इत्यर्थः । मनसार्थान्तरवारणाय भूतेति । शरीरादिनार्थान्तरवारणाय इन्द्रियेति । असाधारणकारणत्वेनोद्देश्यसिद्धये कारणेति । रूपसाक्षात्कारत्वादित्येतावन्मात्रोक्तावसिद्धिः । शब्दसाक्षात्कारत्वादित्युक्तौ च साधनवैकल्यम् । साक्षात्कारतामात्रोक्तौ सुखादिसाक्षात्कारे व्यभिचारः । अतो विशिष्टो हेतुः । रूपाद्यनुमितौ व्यभिचारवारणाय साक्षात्कारत्वमुक्तम् । साक्षात्कारस्य पक्षे हेतौ दृष्टान्ते च लौकिकत्वमपि विशेषणम् । ननु शब्दसाक्षात्कारत्वमेव हेतुरस्तु केवलव्यतिरेकीति चेत्-न; केवलव्यतिरेकमनङ्गीकुर्वाणं प्रत्येतस्योक्तत्वादिति । न चासिद्धिवारकं विशेषणमिदम्, अखण्डाभावत्वात् । ननु तावता तदिन्द्रियमाकाशमेव कथमित्यत आह-पारिशेष्यादिति । परिशेषमाह-विप्रतिपन्ना इति । तद्ग्राहका न भवन्ति शब्दग्राहका न भवन्तीत्यर्थः । रूपादिग्राहकत्वेन बाधवारणाय तदिति । लौकिकप्रत्यासत्या तद्ग्राहकेन्द्रियाणि न भवन्तीत्यर्थः । अजेनि । संयुक्तसमवायेन हि कालादिना सद्भावाः, न चात्राशेन तस्य संयोगोऽस्तीत्यर्थः ।

[अ. टी.] अस्मादिवाद्येन्द्रियग्राह्यगुणाधारत्वेन घटादिवदाकाशस्यैवानित्यतामाशङ्क्यापवदति-आकाशमिति । घटादौ व्यभिचारवारणार्थम् असमवेतपदम् । प्रागभावे तस्य व्यवच्छेदार्थं भावत्वोक्तिः । प्रत्यनुमानाधितमनुमानमनित्यत्वं न साधयतीत्यर्थः । पृथिव्यादिभूतत्वादाकाशस्येन्द्रियारम्भकत्वं प्राप्तं तद्व्यावर्तयति-तदेवेति । तत् आकाशमेव

१ तस्य नित्यत्वमिति क; इत्येवं तस्य नित्यत्वमिति ग, घ. २ परिशेषादिति गु. ३ चेति नास्ति मु. ४ न चिति घ. ५ विमाजकोपाधिमत्वादेति घ. ६ अपीति नास्ति घ पुच्छे. ७ वायदिन्द्रियमिति घ. ८ परिशेषादिति छ. ९ चेति छ. १० आकाशस्यापीति ट. ११ प्रागभावेति ज. १२ तदिति नास्ति ज, ट. पुस्तकयोः.

श्रोत्राख्यमिन्द्रियं परिशेष्यात्सिद्धमित्यन्वयः । परिशेषानुग्राह्यमनुमानमाह—शब्दोपलब्धिरिति । शब्दोपलब्धिर्भनस्करणिका सा भवतीति सिद्धसाधनता, तत उक्तम् भूतेति । साक्षात्कारत्वादित्युक्ते आत्मसुखादिसाक्षात्कारे व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् । रूपशब्दयोरन्यतरेति । अनयोरन्यतरत्वञ्चासिद्धमिति साक्षात्कारग्रहणम् । शब्दसाक्षात्कारत्वादित्युक्ते न तावदन्वयः । सुखादिसाक्षात्कारे यद्यपि व्यतिरेकोऽस्ति, तथापि केवलव्यतिरेकेऽसन्तुष्टं प्रतीदं द्रष्टव्यम् । इदानीं परिशेषमाह—परिशेषस्त्विति । विप्रतिपन्नाः श्रोत्रव्यतिरिक्ताः । सन्तु तर्हि कालादयस्संयुक्तसमवायेन शब्दोपलब्धिहेतवस्तद्वाह—न कालादय इति । शरीरकालदीनां ग्राहकत्वमारोप्यायं परिशेषो द्रष्टव्यः । अजानां कालादीनां मिथः संयोगस्य निराकरिष्यमाणत्वात् संयुक्तसमवायोऽत्र न युक्तः । रहस्यन्तु चक्षुरादिद्वयापारे सत्यपि यधिरस्य शब्दसाक्षात्काराभावादिन्द्रियान्तरसिद्धौ श्रोत्रसिद्धिरिति । पञ्च संख्यादयः शब्दश्चेति पङ्गुणाः ।

[वा. टी.] नन्याकाशस्यैकत्वे सजातीयाकाशाभावात्तस्मिन्ने पुनरुत्पत्त्यभावाच्च शब्दस्यानुत्पत्तिरेव स्यात् । उत्पत्तौ दान्यधर्मतेत्यत आह—आकाशमिति । घटेऽभावे चातिव्याप्तिपरिहाराय विशेषणद्वयम् । भूतत्वे चेन्द्रियारम्भकत्वे प्राप्ते आह—तदेवेन्द्रियं सिद्धमित्यन्तेन । नभसस्समवायिकारणस्यैकत्वादेवेन्द्रियलक्षणकार्यद्रव्यस्वारम्भसम्भवादन्वयस्य चाभावात्तत्तद्भोगनियतादृष्टविशेषोपनिबद्धकर्णशङ्कुव्यवच्छिन्नं नभ एव श्रोत्रदेशमिन्द्रियव्यपदेशं लभत इति परिशेषात्सिद्धमित्यन्वयः । ननु भूतत्वेऽपि शरीरानपेक्षावदिन्द्रियस्यापेक्षाभावादनारम्भस्य सुषुप्तत्वात्किमिति परिशेषापेक्षा इत्यत आह—इतीति । इति प्रमाणेनेन्द्रियस्यापेक्षणीयत्वादित्यर्थः । तदेवाह—शब्दोपलब्धिरिति । मनसा सिद्धसाधनपरिहाराय भूतेति । सुखसाक्षात्कारेऽतिव्याप्तिपरिहाराय रूपेति । असिद्धिपरिहाराय शब्देति । पुनरपि तां परिहर्तुम् अन्यतरेति । कालादय एव शब्दग्राहका भविष्यन्तीत्याशङ्क्य कालादय आकाशसमवेतं शब्दं गृह्यन्तः संयुक्तसमवायेन गृहीयुर्धटरूपमिव चक्षुः । न चैतदुपपद्यते, यतः कालाकाशयोरमूर्तत्वेन मूर्तमात्रसमवेतकर्मणोऽसम्भवेन तज्जन्यसंयोगासम्भवानित्यसंयोगस्य च निराकृतत्वात् । तथा च प्रयोगः—कालादयो न तद्ग्राहकाः, तदसम्बद्धत्वात्, रूपवदिति मत्वाह—न कालादय इति । शब्दोपलब्धेर्भूतेन्द्रियजन्यत्वसाधनानन्तरं शरीराजन्यत्वनिराकरणं मन्दशङ्कानिरासार्थमिति सन्तोष्यम् । शब्दः संख्यादिपञ्चकश्च ।

*

(काललक्षणं, तत्र प्रमाणञ्च)

विवक्षितपरत्वासमवाद्याश्रयत्वे सति सर्वगतः कालः । विप्रतिपन्नं मनो विवाक्षितपरत्वासमवाद्याश्रयसंयुक्तं द्रव्यत्वात्, आत्मवदिति तत्र प्रमाणम् ।

॥ [अ. टी.] विवक्षितेति । विवक्षितं दिक्कृतमिदं यत्परत्वं तदसमवायिकारणाश्रयत्वे सति सर्वगतो व्यापकः काल इत्यर्थः । आकाशादावतिव्याप्तिं भञ्जयितुं सत्यन्तम् । पिण्डेऽतिव्याप्तिभङ्गाय सर्वगतत्वं विशेषणम् । दिश्यतिव्याप्तिभङ्गाय विवक्षितेति । शब्दासमवायिकारणाश्रये गगनेऽतिव्याप्तिभङ्गाय परत्वेति । परत्वनिमित्तकारणादष्टाद्याश्रये आत्मन्यतिव्याप्तिं भञ्जयितुम् असमवायीति । विप्रतिपन्नमिति । शरीरादिमूर्तासंयुक्तमित्यर्थः । विप्रतिपन्नत्वरूपपक्षतावच्छेदकधर्मावच्छेदेन साध्यं सिध्यत् कालमादायैव सिध्यति, अन्यथा पिण्डसंयुक्तत्वेनार्थान्तरत्वात् । रूपादौ बाधवारणाय मन इति । आकाशसंयुक्तत्वेनार्थान्तरं वारयितुम् आश्रयान्तम् । दिशार्थान्तरवारणाय विवक्षितेति । शब्दासमवायिकारणसंयोगाश्रयगगनादिनार्थान्तरवारणाय परत्वेति । परत्वनिमित्तादष्टादिवदात्मनार्थान्तरवारणाय असमवायीति । तादृशपिण्डसंयुक्तत्वेनात्मनि साध्यसिद्धिः ।

अग्रेदं बोध्यम्-परत्वापरत्वे न यावद्भ्रव्यभाविनी, किन्त्वपेक्षाद्युद्विग्विशेषजन्ये । तन्नाशादिनाशये चोत्पन्नेन परत्वेन ज्येष्ठादिव्यवहारः । यद्वा-बहुतरतपनपरिस्पन्दान्तरितजन्मत्वादिनायं व्यवहारः । न च तेनैव परत्वादिष्ववहारोपपत्तौ किं परत्वादिनेति धान्यम् । एतस्य विचारस्य विस्तरभयेनात्रानवसरः, दुस्स्थानत्वात् ।

[अ. टी.] क्रमप्राप्तं कालं निरूपयति-विवक्षितेति । विवक्षितं परत्वं स्वज्येष्ठत्वमपरस्यापि कनिष्ठत्वस्योपलक्षणम्, तस्य यदसमवायिकारणम् । आदित्यपरिस्पन्दा अहोरात्रलक्षणा आदित्यसमवेतास्त्वावत्तन्मूल्याधिष्ठयकृते विवक्षिते परत्वापरत्वे । तत्र देवदत्तादिपिण्डसंयुक्तं सत् यदादित्यसंयोगि पिण्डानामादित्यगतक्रियोपनायकं तस्य यः पिण्डसंयोगः, सोऽयमसमवायिकारणत्वेन विवक्षितः, तदाश्रयस्य काल इत्युक्ते संयोगस्यानेकाश्रयत्वात्पिण्डानामपि कालत्वं स्यात् । अत उक्तम् सर्वगत इति । सर्वगतत्वेनाकाशात्मेश्वरेषु विद्यत इति तद्व्यवच्छेदार्थम् असमवाय्याश्रयत्वे सतीत्युक्तम् । एवमपि संयोगासमवाय्याश्रयत्वेन तेष्वेव व्यभिचारस्सादृतं उक्तम् परत्वेति । दिशि व्यभिचारवारणाय विवक्षितपदम् । विप्रतिपन्नं शरीरादि । मूर्तासंयुक्तमाश्रयसंयुक्तमसमवाय्याश्रयसंयुक्तञ्चेत्युक्ते सुखाद्यसमवायिमनस्संयोगाश्रयात्मसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनत्वं स्यादत उक्तम् परत्वेति । परत्वासमवाय्याश्रयसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं विवक्षितपदम् । आत्मा विवक्षितपरत्वासमवाय्याश्रयपिण्डसंयुक्तः । मनसोऽपि पिण्डसंयोगेन सिद्धसाधनत्वं नार्थोक्तनीयम्, विप्रतिपन्नपदेन व्युदासात् ।

१ वारयितुमिति च. २ सर्वगतेति च. ३, ४ वारणायेति च. ५ अतिव्याप्तिवारणायेति च. ६ मर्यान्तरं स्यादिति च. ७ इतः पङ्क्तिद्वयं च पुस्तके नास्ति. ८ अष्टादशेति छ. ९ दुस्स्थिरवादिति च. १० खेति मास्ति ज, ट. पुस्तकयोः. ११ गतेति नास्ति ट पुस्तके. १२ असमवायित्वेनेति ज, ट. १३ विवक्षितस्त पस्तदेति ज. १४ जात्याकाशेति ज, ट. १५ व्यवच्छेदायेति ज, ट. १६ संयोगाश्रयत्वेनेति ज, ट. १७ अतः परत्वग्रहणमिति ज, ट. १८ वारणायेमिति ज, ट. १९ समवाय्याश्रयेति झ. २० साधनतेति ज, ट. २१ व्युदासायेति ज, ट. २२ नाशक्यमिति ज, ट.

[वा. टी.] अचेतनत्वा(दृणादि? द्विगादि) भेदमिन्नत्वाच्च कालमाकलयते—विवक्षितेति । विवक्षितं नियतं यत्परत्वं तदसमवायिकारणमादित्यपरिस्पन्दोपनायकवियुद्ध्यपिण्डसंयोगस्तदाश्रयस्तदधिकरणम् । पिण्डेऽतिव्याप्तिपरिहाराय सर्वेति । सर्वगतत्वञ्च युगपत्सर्वमूर्तसंयोगित्वम् । आकाशनिराकरणाय असमवायीति । तथाप्यसमवायिशब्दवत्त्वेन तत्रैवातिव्याप्तिपरिहाराय परत्वेति । दिश्यतिव्याप्तिपरिहाराय विवक्षितेति । विप्रतिपन्नं शरीरसंयुक्तमित्यर्थः । न चाप्रसिद्धविशेषणत्वम् । तथाहं—अस्ति तद्बहुतरतरतपनपरिस्पन्दान्तरिते स्वयिरादिपिण्डे परत्वादिव्यवहारः । तत्परत्वञ्च तपनपरिस्पन्दप्रकर्षजम्, तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्, सन्तुपटवत् । तेपाञ्च तपनवर्तित्वेन स्वतःपिण्डासम्बन्धत्वादाश्रयस्यापि प्रादेशिकत्वेन पृथिव्यादिवत्तत्सम्बन्धाजनकत्वादात्ममनसोश्च विशेषगुणाधारात्तदनुपपत्तौर्दिशोऽप्यादित्यादिसंयोगोपनायकत्वेनैवावगमात्पिण्डादित्यपरिस्पन्दसम्बन्धापादकस्य कस्यचिद्विमुनो द्रव्यस्यान्यतस्सिद्धत्वादिति । तथाच मानम्—तपनपरिस्पन्दा द्रव्यद्वारेण स्वाविरादिपिण्डसम्बन्धाः; स्वतोऽसम्बद्धत्वे सति तत्सम्बद्धत्वात्, पटगतमहारजतरागवदिति । पिण्डादित्यपरिस्पन्दानां संयुक्तसमवायलक्षणप्रत्यासत्तिरवघेया । संख्यादिपञ्चकमेव ।

*

(दिग्लक्षणम् तत्र प्रमाणञ्च)

अनियतपरत्वासमवाय्याश्रयत्वे संति सर्वगता दिक् । विप्रतिपन्नं मनोऽनियतपरत्वासमवाय्याश्रयसंयुक्तम्, द्रव्यत्वादात्मवदिति तत्र प्रमाणम् ।

[व. टी.] अनियतेति । आश्रयत्वमसमवाय्याश्रयत्वञ्च गगनादौ गतमतः परत्वेति । आत्मन्यगतये असमवायीति । कालत्वेऽनतिप्रसक्तये अनियतेति । अनियतत्वञ्च कालकृतपरत्वादिन्याश्रयत्वादिकृतपरत्वादिनिष्ठो जातिविशेषः । यद्वा बहुतरतपनपरिस्पन्दान्तरितजन्यत्वादि यत् तद्बुद्धिजन्यत्वं संयुक्तसंयोगभूयस्त्वादि तद्बुद्धिजन्यत्वं वा । पिण्डेऽतिव्याप्तिमङ्गाय सर्वगतेति । विप्रतिपन्नमिति । दिक्साधकानुमानेऽनियतपदं कालसंयुक्तत्वेनार्थान्तरवारणाय । साध्ये विवक्षितपदञ्चेत्, तदानियतत्वमेव तदर्थः । क्वचिदविवक्षितमपि पाठः । तदविवक्षितं परत्वं कालकृतं तद्विभक्तमित्यर्थः । शेषं पूर्ववत् ।

[अ. टी.] अनियतं न ज्यैष्ठ्यादिवद्यावद्द्रव्यमावि । अनियतपदं कालव्यवच्छेदोऽयम् । इतरत्पूर्ववलक्षणेऽनुमानेऽपि । कालसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनताव्यादासार्थमनियतपदम् ।

[वा. टी.] विशेषगुणशून्यत्वाद्यापकत्वाच्च दिशं विशदयति—अनियतेति । कालनिराकरणाय अनियतेति । अस्त्येकं मूर्तमवधि कृत्वा मूर्तान्तरे परत्वादिव्यवहारः । तत्परत्वादेरन्यनिमित्तासम्भवात् प्रमात्रपेक्षया तत्तेदेशादिसंयोगो निमित्तम् । तस्य चानुपसङ्कान्तस्य तन्नेति तदुपसङ्कान्तस्य

१ सतीति नास्ति एव पुस्तके. २, ३ आश्रयत्वे इति च. ४ काले इति च. ५ यदिनि नास्ति च पुस्तके.
६ तद्द्रव्यजन्यत्वमिति च. ७ वारणयेति च ८ यदमिदं नास्ति च. पुस्तके. ९ चेदमनियतेति च.
१० अविवक्षितेति च. ११ कालकृतमिवत्वमिति च. १२ ज्यैष्ठ्यादिति ट. १३ व्यवच्छेदार्थमिति च, ट.

चात्रेति (१) तदुपसङ्गामकं विद्युद्रव्यं वाच्यम् । सैव दिक् । न च कालेनार्यान्तरम्, तस्य क्रिया-
निवन्धन एव व्यवहारे सामर्थ्यावगमादिति ।

*

(दिक्कालयोस्समुच्चित्य प्रमाणम्)

मनसा असंयुक्तं मनः सर्वदा विशेषगुणरहितद्रव्यद्वयसंयुक्तम्,
द्रव्यत्वादात्मवेदिति दिक्कालयोः प्रमाणम् । अत्र द्रव्यद्वये कल्पितेऽन्यत्र
तेनैव व्यवहारसिद्धेः, अनेककल्पनायां प्रमाणाभावं । दिक्कालौ द्रव्य-
त्वावान्तरजातिरहितौ बुद्ध्यनाधारत्वे सति सर्वगतत्वादाकाशवदित्येकत्वं
सिद्धम् ।

[व. टी.] उभयत्र प्रमाणमाह—मनसेति । मनसि मनोद्वयसंयुक्तत्वेनार्यान्तरभङ्गाय
मनसा असंयुक्तमिति । आकाशादिसंयुक्तत्वेनाथयासिद्धिवारणाय मनसेति ।
साक्षान्मनसा यत्र संयुक्तमित्यर्थः । तेन परम्परया मनसि मनस्संयुक्तत्वेनापि नाथया-
सिद्धिः । रूपादौ बाधवारणाय मन इति । संयुक्तत्वे द्वयसंयुक्तत्वे द्रव्यद्वयसंयुक्तत्वे च
साध्येऽर्यान्तरम्, गुणरहितेत्याद्युक्तौ बाधः, अतो विशेषेति । प्रथमक्षणे घटपटा-
दिरपि गुणरहितः । एवमुक्तौ खण्डप्रलये च जीवव्योमनी विशेषगुणरहिते, अतः सर्व-
देति । औपाधिक एव दिक्कालयोर्भेदः, न साहजिक इत्याह—अत्रेति । एकत्वे
प्रमाणमाह—दिक्कालाविति । जातिरहितत्वं द्रव्यान्तरजातिरहितत्वं द्रव्यत्वावान्तर-
धर्मरहितत्वञ्च बाधितम्, अतो विशिष्टसाध्यकीर्तनम् । आत्मनि व्यभिचारभङ्गाय
सत्यन्तम् । घटादौ व्यभिचारभङ्गाय विशेष्यभागः ।

[अ. टी.] एकैकत्र प्रमाणमुक्तत्वोभयत्राप्याह—मनसेति । सर्वदा विशेषगुणरहितमनोऽ-
न्तरसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थम् मनसाऽसंयुक्तं मनः पक्षः । गुणरहितद्रव्य-
संयुक्तमित्युक्ते बाधस्यादतो विशेषपदम् । प्रलये तादृशजीवव्योमसंयुक्तत्वेन सिद्धसाध-
नताव्युदासार्थं सर्वदेति पदम् । नन्वत्र कल्पेऽन्यौ दिक्कालौ, अन्यत्र कल्पेऽन्यौ, ततो-
ऽन्यत्रान्यावित्यान्तर्यं प्राप्तम्, कल्पभेदेन वा व्यवहारभेदेन वा व्यवहारानन्त्येन वा तद्धे-
त्वोस्तयोस्तत्सादत आह—अत्रेति । एकत्वे तर्हि किं प्रमाणम्, तदाह—दिक्कालाविति ।
जातिरहितौ द्रव्यत्वजातिरहितौ चेत्युक्ते बाधस्यादतोऽवान्तरजातिरहितपदम् । घटत्वाधवान्तरजा-
तिरहितत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं द्रव्यत्वविशेषणम् । आत्मनि व्यभिचारवारणाय
बुद्ध्यनाधारत्वे सतीत्युक्तम् । घटादौ तैर्व्यभिचारवारणाय सर्वगतत्वादित्युक्तम् ।

१ आकाशावदित्यधिकं ग, घ. २ द्वितय इति क. ३ अनन्तेति क, ख, ग, घ. ४ प्रमाणाभावादिति क.
५ वारणायेति च. ६ सिद्धिस्तद्वारणायेति च. ७ परम्परायामिति च. ८ पदमिदं नास्ति च पुस्तके.
९ प्रथमे इति च. १० घटादिरपीति च. ११ साहित्यं द्रव्यत्वजातिराहित्यञ्च बाधितमिति च. १२ वारणायेति
च. १३ भाव इति च. १४ प्रमाणमाहेति झ. १५ यदेति झ. १६ द्रव्यद्वयसंयुक्तत्वे इति झ, द्रव्यमित्युक्ते
इति ट. १७ वारणार्थमिति ज, ट. १८ इत्युक्तमिति ज, ट. १९ ततोऽपीति ट. २० इतः पदचतुष्टयं
नास्ति ज, ट. पुस्तकयोः. २१ जातीति नास्ति ज, ट. पुस्तकयोः. २२ निवारणायेति ज, ट.

[वा. टी.] मनोऽन्तरसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय मनसाऽसंयुक्तमिति । सिद्धसाधनतापरिहाराय गुणरहितेति । बाधनिवारणाय विशेषेति । प्रख्यावस्थात्माकाशसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय सर्वदेति । एकैव परत्वाद्व्यवहारोपपत्तौ बहुत्वकल्पनं गौरवग्रस्तमसदेवेत्याह—अत्रेति । ननु किमिति प्रमाणाभावः, दिगादि द्रव्यत्वव्याप्यजातिसजातीयप्रतियोगिकभेदवत्, अशब्दद्रव्यत्वात्, घटवत् । तथाच पृथिवीत्वादीनामसम्भवादिकत्वादिसिद्धावनेकत्वसिद्धिः । न च गौरवपराहतिः, प्रामाणिकेऽर्थे गौरवस्यादोषत्वात् । तथा चाहुः—

प्रमाणयन्त्यदृष्टानि कल्प्यानि सुवह्वन्पि ।

बालाग्रशतभागोऽपि न कल्प्यो निष्प्रमाणकः ॥ इति ।

तत्र संस्कारवस्त्वेन सोपाधिकत्वात् । ननु मा भूदनेकत्वम्, एकत्वे किं मानमत आह—दिक्कालाविति । द्रव्यत्वेति । द्रव्यत्वव्याप्यत्वावच्छिन्ना यावती जातिव्यक्तिसदस्यन्ताभाववन्ताविध्यर्थः । एतेन सिद्धसाधनता परिहृता भवति । दिगाद्यनन्तत्वादिना दिक्त्वादेशेपि द्रव्यत्वव्याप्यत्वाङ्गीकारात् । बाधनिवारणाय अवाप्तरेति । घटत्वादिरहितत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय द्रव्यत्वेति । आत्मनिवारणाय बुद्धीति । घटनिवारणाय सर्वेति । ननु भवत्कजातिरहितत्वम्, एकत्वस्य कुनोऽसिद्धिः । न हि तदेवैक्यम्, नापि तदनुपपत्त्या तदविनाभावेन वा तत्सिद्धिः, गुणादिषु व्यभिचारादिस्थाशङ्क्याह—इतीति । अस्मादेव प्रमाणादित्यर्थः । अपमाशयः—इह हि द्रव्यप्रकरणाद्भवेति पदं लभ्यते । तथा च द्रव्यस्य सतो दिगादेरुक्तजातिरहितत्वं तर्ह्येव स्यात् यदि व्यक्त्यैक्यं भवेत् । अन्यथा तुल्यत्वादीनां जातिबाधकानामसम्भवादुक्तजातिसत्त्वमेव स्यात्, न तद्रहितत्वमिति । यद्वा द्रव्यत्वे सत्युक्तजातिरहितत्वमेकत्वेनाविनाभूतमाकाशे दृष्टमित्यनयोरप्येकत्वमापादयतीत्याह—इतीति । एतन्मानसाधितादस्मादेव धर्मादित्यर्थः । तथाच दिगावेकत्वाधिकरणम्, द्रव्यत्वे सत्युक्तजातिरहितत्वादाकाशवदित्येकत्वसिद्धिरित्यर्थः । न च विशेषगुणत्वमुपाधिः, विशेषपदस्य पक्षमात्रव्यावर्तकत्वेन पक्षेतरत्वादिति ।

*

(दिक्कालयोस्सर्वकार्यनिमित्तत्वं सर्वगतत्वञ्च)

विप्रतिपन्नं सर्वं कार्यं दिक्कालकार्यम्, कार्यत्वात्, सम्प्रतिपन्नवदिति तयोस्सर्वकार्यनिमित्तत्वम् । आकाशकालदिशः सर्वगताः, मनोव्यतिरिक्तत्वे सत्यस्पर्शद्रव्यत्वात्, आत्मवदिति सर्वगतत्वम् । संख्यादिपञ्चगुणवत्त्वं कालदिशोः ।

[व. टी.] दिक्कालयोस्सर्वनिमित्तत्वं साधयति—विप्रतिपन्नमिति । दिक्कालसमवेतातिरिक्तं कार्यमित्यर्थः । इदन्तु विशेषणं यन्मते पक्षातिरिक्तस्यैव दृष्टान्तता, तन्मते दृष्टान्तासिद्धिवारणाय । सर्वोत्पत्तिर्भन्निमित्ततासिद्धये सर्वमिति । व्योमादां बाधवारणाय

१ सम्प्रतिपन्नकार्यवदिति क. २ असंस्पृशति मुद्रितपुस्तकपाठान्तरम्. ३ सिद्धमित्यधिकं ग.

४ भवेति नास्ति च पुस्तके.

प्रमाण ० ५

कार्यमिति । पूर्वमाकाशे सर्वशब्दाश्रयत्वेन व्यापकत्वं सूचितम् । दिक्कालयोश्च सर्वगतत्वं लक्षणया सूचितम् । तत्साधयति-आकाशेति । मनसि व्यभिचारमङ्गाय सत्यन्तम् । घटादौ व्यभिचारवारणाय अस्पर्शवदिति । गुणादौ व्यभिचारवारणाय द्रव्यत्वादिति । सर्वदा स्पर्शरहितत्वं बोध्यम् ।

[अ. टी.] दिक्कालयोस्समानधर्मत्वनिरूपणप्रसङ्गात्समानधर्मान्तरमाह-विप्रतिपन्नमिति । परत्वापरत्वंव्यतिरिक्तं सर्वगतत्वं दिक्काललक्षणे प्रक्षिप्तम् । तत्र प्रमाणमसम्भवपरिहारार्थमाह-आकाशेति । आकाशस्यापि सर्वशब्दाश्रयत्वेन सर्वगतत्वस्य सूचितत्वात्साधनं युक्तम् । द्रव्यत्वं पृथिव्यादौ व्यभिचरति, अतः अस्पर्शपदम् । मनस्यस्पर्शद्रव्यत्वेऽपि न सर्वगतत्वमित्यत आह-मनोऽप्यतिरिक्तत्वे सतीति । मनोव्यतिरिक्ते स्पर्शशून्ये क्रियादौ व्यभिचारनिरासार्थं द्रव्यग्रहणम् ।

[वा. टी.] इह जात इदानीं जात इति व्यपदेशात्तयोः सर्वकार्यनिमित्ताद्यमाह-विप्रतिपन्नमिति । स्वसमवेतसंयोगादिकार्यातिरिक्तत्वं विप्रतिपन्नशब्दार्थः । सिद्धसाधनतापरिहाराय दिक्कालेति । मूर्तत्वात्संयोगाद्यनुपसङ्गाम्प्रथमत आह-आकाशेति । समानन्यायत्वादाकाशस्यापि ग्रहणम् । मनस्यतिव्याप्तिपरिहाराय मन इति । घटनिवारणाय अस्पर्शवदिति । रूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय द्रव्येति । संख्यादिपञ्चकमेव ।

*

(आत्मनिरूपणम् तद्विभागश्च)

बुद्ध्याश्रय आत्मा । स द्वेधा-ईशानीशभेदात् । पूर्वत्र प्रमाणम्-आत्मत्वं नित्यविशेषगुणवद्बुद्धिः, आत्मजातित्वात्, सत्तावदिति । ईशज्ञानं नित्यम्, अनन्तकार्यहेतुत्वात्, कालवदिति तज्ज्ञानं नित्यम् । विप्रतिपन्नं सर्वकार्यं विवक्षितज्ञानजम्, कार्यत्वात्, सम्प्रतिपन्नवदित्यनन्तहेतुत्वं सिद्धम् ।

[व. टी.] आत्मत्वमिति । वृत्तिमत्त्वे गुणवद्बुद्धिमत्त्वे विशेषगुणवद्बुद्धिमत्त्वे वार्थान्तरे व्यभिचारवारणाय नित्येति । नित्यपरिमाणवद्बुद्धित्वेनार्थान्तरमङ्गाय विशेषेति । नित्यो यो विशेषपदार्थः तद्बुद्धित्वेनार्थान्तरवारणाय गुणेति । पृथिवीत्यादौ व्यभिचारवारणाय आत्मेति । आत्मघट्टवृत्तिद्वित्वान्यतरत्वादौ व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति । न च संसर्पात्मत्वे व्यभिचारः, तस्याजातित्वात् । जातित्वेऽपि वा तद्विभक्तत्वेन हेतुविशेषणात् । अपर्यवसानवृत्त्या ईश्वरज्ञानस्य नित्यत्वं प्राप्तम् । अधुना विशेषतःसाधयति-ईश्वरज्ञानमिति । जीवज्ञाने बाधवारणाय ईशेति । ईशसंयोगे बाधवारणाय ज्ञानमिति । अदृष्टे व्यभिचारवारणाय अनन्तेति । न चादृष्टस्य सर्वोत्पत्तिमन्नि-

१ सर्वेति नास्ति च पुच्छके. २ चेति नास्ति च पुच्छके. ३ लक्षणयोरिति छ. ४ स्वाद्यतिरिक्तमिति ज, ट. ५ कालादीति ज, ट. ६ इतीति ज, ट. ७ उक्तमिति ज, झ. ८ भेदेनेति ग. ९ नित्यसमवेतेति घ. १० सर्वकार्यमिति सु. ११ अन्यमिति ग. १२ वार्थान्तरवारणयेति च. १३ वृत्तिमत्त्वे चेति च. १४ वृत्तिवान्यतरिति च.

मित्तत्वात्तदवस्थो दोष इति वाच्यम् । एकैकादृष्टस्य सर्वकार्यहेतुत्वादिति । प्रत्येकावृत्तिश्च धर्मो न समुदायवृत्तिरिति न्यायात्, साधनवैकल्यपरिहाराय कार्येति । न हि कालोऽनन्तपदार्थपतितनित्यवर्जनकः । यत्किञ्चित्कार्यजनके घटादौ व्यभिचारवारणाय अनन्तेति । कालवदिति । कालो द्रव्यं दृष्टान्तः, न तु कालोपाधिः एकैककालोपाधिः, समस्तकार्यजनकत्वात् । विप्रतिपन्नमिति । अस्मदादिकर्तृकमित्यर्थः । नित्ये बाधवारणाय कार्यमिति । उद्देश्यसिद्धये ईश्वर इति । तथैव ज्ञानेति । सम्प्रतिपन्नवदिति । क्षित्यादिवदित्यर्थः । न च दृष्टान्तासिद्धिः, क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवदित्याद्यनुमानेनेश्वरज्ञानजन्यत्वस्य सिद्धिः । एवञ्चानन्तकार्यहेतुत्वादिति पूर्वोक्तो हेतुर्नोसिद्धः । अन्ये तु विप्रतिपन्नं कार्यम् अङ्कुरादि विवक्षितज्ञानजं, स्वोपादानगोचरापरोक्षज्ञानजं सम्प्रतिपन्नं कार्यं घटादीत्याहुः । तेषां मते घटादिकार्ये ईश्वरज्ञानजन्यत्वं मानान्तरेण सेत्स्यतीति निष्कर्षः ।

[अ. टी.] आत्मत्वस्यानित्यविशेषगुणवद्भूतित्वं सिद्धमित्यत उक्तम् नित्येति । नित्यवृत्ति नित्यविशेषवद्भूतीति चोक्तौ तथेति गुणग्रहणम् । पृथिव्यादिजातौ व्यभिचारवारणाय आत्मग्रहणम् । “यथाकारी यथाचारी” इत्याद्यागमादात्मवद्भूतत्वं सिद्धमित्येतामत्वधर्मसिद्धिः । अपर्यवसानवृत्त्येवज्ञानस्य नित्यत्वं सिद्धम्, साक्षादपि तत्साधयति—ईशज्ञानमिति । कर्मव्यक्तीनां कार्यहेतुत्वेऽप्येकैकज्ञानन्तकार्यहेतुत्वाभावादनन्तपदेन तत्र व्यभिचारनिरास इति प्रयोगात्तत्त्वज्ञानस्य नित्यत्वं सिद्धमित्याह—इति तज्ज्ञानमिति । हेतोरसिद्धिनिरासार्थं साधनमाह—विप्रतिपन्नमिति । विप्रतिपन्नं कार्यमङ्कुरादि विवक्षितम् । स्वोपादानसाक्षात्काररूपज्ञानं तज्जन्यं, सम्प्रतिपन्नं कार्यं घटादि, तत्कुलालादेस्तदुपादानमुदादिसाक्षात्कारजन्यम् । जीवानामङ्कुरादिनिमित्तकारणानुपेयधर्मादिज्ञानेन परम्परयाङ्कुरादेर्जन्यत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थम् विवक्षितेति^१ ।

[बा. टी.] विमुखसाधर्म्यादात्मानं चिन्तयति—बुद्धीति । बुद्ध्याश्रयत्वं बुद्ध्याश्रयत्वात्मानाभावावधिकरणत्वम् । तेन मुक्तात्मनि नातिव्याप्तिः । घटनिवारणाय बुद्धीति । असम्भवनिवृत्त्ये आश्रय इति । सिद्धसाधनतापरिहाराय नित्येति । विशेषगुणश्चात्र ज्ञानादिः । ईशज्ञानस्य ज्ञानत्वादेयनित्यत्वे आहो नित्यत्वं साधयति—ईशेति । घटादिरतिव्यतिरिक्तस्य अनन्तेति । अनन्तशब्दश्च सर्वशब्दार्थः । ननु तर्हि हेत्वसिद्धिः, अस्मदादिज्ञानजन्यस्य घटादेस्तदजनकत्वादत आह—विप्रतिपन्नमिति । अस्मदादिज्ञानजन्यघटादिप्रतिपन्नशब्दार्थः । विवक्षितज्ञानमीशज्ञानम्, सम्प्रतिपन्नत्वात्, द्यणुकादिवत् । यथा द्यणुकस्योपादानकारणसाक्षात्कृतत्वेनेशज्ञानस्य द्यणुकादिनिमित्तत्वम्, तथा घटादेरपीति नासिद्धिः । *

१ कार्यहेतुत्वाभावादिति च. २ प्रत्येकावृत्तिरिति च. ३ इत्यर्थे इति नास्ति च पुस्तके. ४ तज्जन्यत्वसिद्धेरिति च. ५ हेतुसिद्ध इति श. ६ चोक्ते इति ज, ट. ७ अपनोदनार्थमिति ज, ट. ८ धर्ममिति ज, ट. ९ वृत्तिव्याप्यज्ञानस्येति श. १० एकत्वेन नास्ति श पुस्तके. ११ तत्र ज्ञानमिति श. १२ कार्यमिति नास्ति श, ट. पुस्तकयोः. १३ पदमित्यधिकं ज, ट.

(ईश्वरज्ञानादेस्सर्वाश्रयव्यापित्वे प्रमाणम्)

तज्ज्ञानमाश्रयव्यापि, नित्यगुणत्वात् परमाणुरूपवदिति तज्ज्ञान-
स्याश्रयव्यापित्वं सिद्धम् । अत एव तदिच्छाप्रयत्नावाश्रयव्यापिनौ ।
उत्तरत्र प्रमाणम्-भोगः कचिदाश्रितः, गुणत्वात्, रूपवदिति । न कार्याणि
तद्वन्ति, कार्यत्वाददवदिति । न ओत्रादि तद्वत्, कारणत्वाद्दण्डवत् ।
भोगो गुणः, अनित्यत्वे सत्यचाक्षुषप्रत्यक्षत्वाद्गन्धवदिति हेतुसिद्धिः ।

[ब. टी.] तज्ज्ञानमिति । ईश्वरज्ञानमित्यर्थः । आश्रयनिष्ठत्वमात्रे साध्ये सिद्धसा-
धनमतो व्यापीति । समवायसम्बन्धेन घटाद्यव्यापित्वात् बाधवारणाय आश्रयेति ।
सर्वस्मिन् काले स्वसमवायीत्यर्थः । एतावता व्यापकस्य व्यापकत्वं सकलकार्योपादानाव-
गाहकत्वमिति दूषणमपास्तम् । नित्येति । नित्यश्चासौ गुणश्चेति कर्मधारयः । संयोगादौ
व्यभिचारवारणाय गुणत्वादिति । विशेषपदं नास्त्येवेति न व्यर्थता । अन्ये तु जीवा-
काशेतरनित्यनिष्ठमाकाशप्रयोज्यविशेषगुणत्वादिति हेतुं वर्णयन्ति । पृथिवीपरमाणुरूपं न
दृष्टान्तः, सर्वकाले स्वाश्रयव्यापकत्वाभावात् । यद्यपीश्वरज्ञानस्य नित्यत्वं पूर्वमेव सिद्धम्,
तथापि सर्वकाले स्वाश्रयव्यापकत्वमिहोद्देश्यमिति कृत्वा तादृशसाध्यवृत्तम् । केचित्तु
स्वाश्रयव्यापकत्वमात्रमत्र साध्यमित्याहुः । अत एव नित्यगुणत्वादेवं । उत्तरत्र अनी-
शात्मनि । कार्याणि शरीरतदवयवाः, अन्यत्र विवादाभावात् । कारणोद्भूतत्वादित्यर्थः ।
तेन स्वमते नात्मनि व्यभिचारः । मनो न तद्वत्, इन्द्रियत्वात् चक्षुर्वदित्युपरि बोध्यम् ।
पूर्वहेतोरसिद्धिं वारयितुं भोगस्य गुणत्वं साधयति-भोग इति । रसत्वादौ व्यभिचारं
वारयितुं सत्यन्तम् । घटादौ व्यभिचारभङ्गाय त्वादन्तम् । अतीन्द्रिये गुणभिन्ने व्यभि-
चारभङ्गाय प्रत्यक्षत्वे सतीति देयम् ।

[अ. टी.] तस्य परिच्छिन्नस्थानन्तकार्योपादानावगाहकत्वं प्रेदीपप्रभावत्र सम्भवतीति तत्राह-
तज्ज्ञानमिति । अनित्ये संयोगादौ व्यभिचारवारणाय नित्यपदम् । ईश्वरेच्छाप्रयत्नाव-
प्याश्रयव्यापिनौ, नित्यगुणत्वात् जलपरमाणुरूपवदित्यपि प्रयोक्तव्यमित्याह-अतएवेति ।
अनीशात्मनि प्रमाणमाह-उत्तरत्रेति । भोगः पूर्वोक्तभोगः । शरीरधर्म इत्येके लोका-
यताः । इन्द्रियाश्रय इत्यन्ये । तदुभयं क्रमेण निरस्यति न कार्याणीति । करणान्तरस्वी-
कारेऽनवस्थानाच्छ्रोत्रादेरेव करणत्वेन नासिद्धो हेतुर्गुणत्वादिति पूर्व हेतोरसिद्धिं परिहरति-
भोग इति । चाक्षुषप्रत्यक्षगम्ये घटादौ व्यभिचारवारणाय अचाक्षुषपदम् । आत्मनि

१ जलपरमाण्विति घ. २ प्रयत्नावपीति मु. ३ तत्र नेति ग. ४ ओत्रादीनि तद्वन्तीति क.
५ निष्ठमात्रे इति च. ६ सम्बन्धिन इति छ. ७ स्वसमवायिव्यापीति च. ८ तस्य व्यापकत्वमिति च.
९ एवेति नास्ति घ पुस्तके. १० व्यभिचारं वारयितुमिति घ. ११ प्रेति नास्ति ज, ट पुस्तकयोः. १२ पर-
माणुवदिति झ, १३ करणत्वे चेति ज, करणत्वेन चेति ट. १४ हेतोरसिद्धिं ट. १५ वारणार्थमिति ज, ट.

व्यभिचारवारणार्थम् अनित्यत्वे सतीत्युक्तम् । अनित्यत्वे सत्यचाक्षुर्नक्षत्रादिगतिकर्मणि व्यभिचारवारणार्थम् प्रत्यक्षपदम् ।

[वा. टी.] ननु परिच्छिन्नवाचस्य तदनन्तकार्योपादानसाक्षात्कृतत्वं न सम्भवतीत्यत आह—
तज्ज्ञानमिति । संयोगनिवारणाय नित्येति । अत एव नित्यगुणत्वादेवेत्यर्थः । नन्वाविद्यको जीवपरमात्मभेदो न तु पारमार्थिकः । परमात्मनश्च सिद्धत्वाद्यर्था प्रमाणोक्तिरित्याशङ्क्य शुद्धचैतन्य-
रूपे ब्रह्मण्यविद्यायोगाज्जीवाश्रयत्वे चेतरेतराश्रयापाताचात्त्विक एव भेद इत्याशयवान् तत्र प्रमाणमाह—
उत्तरत्रेति । अत्र भोगपदेन मुख्यत इति भोग इति व्युत्पत्त्या सुखं दुःखं वा विवक्षितम् ।
नोक्तलक्षणो भोगः, तदुक्तावितरेतराश्रयापत्तेः । तथा हि—सिद्धेऽनीशज्ञाने तन्निष्ठसुखादिसाक्षा-
त्काररूपभोगसिद्धिः । तत्सिद्धौ च तदाश्रयत्वेनानीशज्ञानसिद्धिरिति । कृशोऽहम्, स्थूलोऽहमिति
प्रत्ययाच्छरीरादेरात्मत्वमाशङ्क्य निराचष्टे—न कार्याणीति । कार्याणीति शरीरतदवयवाः । विपक्षे च
शरीरादेराश्रयस्य नष्टत्वेन जन्मान्तरानुभूतसंस्काराभावेन तज्जन्यस्पृतेरयोगादुत्पन्नस्य शिशोः स्तन्ये
प्रवृत्तिरेव न स्यात् इति वाचकस्तर्कः । सामानाधिकरण्यप्रत्ययस्तु 'ममेदं' शरीरमिति भेदमाहिणा
प्रमाणभूतेन प्रत्ययेन बाधित इत्यप्रमाणम् । काणोऽहं बधिरोऽहमित्यादिप्रत्ययात्कार्यत्वहेतोः प्रयो-
जकत्वमाशङ्कमान इन्द्रियाण्येवास्मेति मन्यते । तं प्रत्याह—न श्रोत्रादीति । तस्यैवा य एवाहं
रूपमद्राक्षम्, स एवाहं गन्धं जिघ्रामि इत्येक्यावलम्बः प्रत्ययो न भवेत् । रूपगन्धमाहकयोर्भिन्न-
त्वादित्यर्थः । वदेऽतिव्याप्तिपरिहाराय अचाक्षुर्येति । आत्मनिवारणाय अनित्येति ।

*

(जीवैकत्वनिरासः, जीवस्य सर्वगतत्वञ्च)

अस्मदाद्यात्मा द्रव्यत्वावान्तरजातिमान्, चतुर्दशगुणवत्त्वात्,
उदकवत्; आत्मशब्दोऽनेकवाचकः, आत्मवाचकत्वात्, तच्छब्दवदिति
नानात्वं सिद्धम् । मच्छरीरेतरमूर्तानि मर्दात्मयुज्जि, मूर्तत्वात्मच्छरीर-
वदिति सर्वगतत्वं तस्य । ईशोऽपि सर्वगतः, आत्मत्वाद्देहिघत्वं । स नित्यः,
सर्वगतत्वात् कालवत् । स बुद्ध्यादिचतुर्दशगुणवान् ।

[व. टी.] जीवैकत्वादिनं प्रत्याह—अस्मदादीति । ईश्वरे भागासीद्धिं वारयितुम्
अस्मदादीति । तावता जीवपक्षः । द्रव्यत्वादिनार्थान्तरवारणाय द्रव्यत्वावान्तरेति ।
ज्ञानवत्त्वेनार्थान्तरभङ्गाय जातीति । आकाशे व्यभिचारभङ्गाय चतुर्दशेति । चतु-
र्दशगुणविभाजकोपाध्याधाराधारात्वादित्यर्थः । तेन चतुर्दशसंयोगवत्याकाशे न व्यभि-
चारः । चतुर्दशत्वं दशत्वाघटितसंख्या, तेन न चतुर्भागवैयर्थ्यम् । यद्यपि य एव चतु-

१ निरासार्थमिति ज, ट. २ अचाक्षुरपीति ज, अचाक्षुष इति ट. ३ जमावायेति ज, ट. ४ जमादा-
दीत्याशङ्क्य उदकवदित्यन्ता पञ्चिर्भासि घ पुस्तके. ५ वदिति नास्ति घ पुस्तके. ६ सिद्धमिति नास्ति
ख, ग, घ, मु. पुस्तकेषु. ७ इतराणीनि ख, ग. ८ सदात्मेति ख, मु. ९ संयुज्जिनि क, ख.
१० वदिति इति क, ख. ११, १२ वारणयेति घ.

देश गुणा आत्मनि न एव न पयसीति शब्दसाम्येऽपि न पक्षदृष्टान्तयोरेकहेतुता, तथापि चतुर्देशशब्दवाच्यत्वानुगतीकृतगुणविभाजकोपाध्याधाराधातृत्वं हेतुः । यद्यपि संस्कार-
शून्यस्य पयसो न दृष्टान्तता चतुर्देशगुणवच्चाभावात्, तथापि हेतुमत्स्य आपो दृष्टान्तः । केचि-
च्चारम्भकतापत्रे जले वेगनियमात् तदारम्भकेऽपि वेगनियम इत्याहुः । घटाकाशादिशब्दे
बाधसिद्धसाधनवारणाय आत्मेति । एकमात्रवाचकत्वेनार्थान्तरवारणाय अनेकेति ।
लक्षणया शरीराद्यनेकप्रतिपादकत्वेऽपि न तत्रात्मशब्दस्य शक्तिः । एवमाकाशशब्दस्य
शक्तिर्भूताकाश एव । चिदाकाशादौ लक्षणया प्रयोगः । यद्वा एकप्रवृत्तिनिमित्तपुरस्कारे-
णानेकधावाचकत्वं साध्यम् । आकाशादिशब्दे व्यभिचारवारणाय आत्मेति । लक्षण-
यात्सर्मप्रतिपादके गगनशब्दे व्यभिचारवारणाय वाचकत्वादिति । न चात्मवाचके एत-
दादिशब्दे व्यभिचारः, तस्याप्यनेकवाचकत्वात् । शुद्धित्वस्य प्रयोगोपाधित्वादेकमात्र-
प्रयोगः । न चैतदात्मत्वपुरस्कारेणैतदात्मशब्दे हेतुर्व्यभिचारीति वाच्यम् । एतस्य वाक्य-
त्वेनावचकत्वात् । देवदादिशब्दः शरीरवाचको नात्मवाचक इति न व्यभिचारः । पूर्वानु-
माने तात्पर्याद्वा । आत्मनो वाचकत्वं साधयति-मदिति । दृष्टान्तासिद्धिवारणाय शरी-
रेतरेति पक्षविशेषणम् । आश्रयासिद्धिभङ्गाय मदिति । मदतिरिक्तं ममापि शरीरं
भवतीति व्यर्थविशेषणतावारणाय मच्छरीरेतराणीति निजगदे । गुणादौ बाधवारणाय
मूर्तानीति । कालादौ बाधवारणाय मूर्तत्वशरीरनिवेशितेपरिच्छिन्नत्वभागः । परि-
माणयोगित्वं कालादौ व्यभिचारि तदर्थमविच्छिन्नपरिमाणयोगित्वलक्षणं मूर्तत्वं हेतुः ।
सजीव इत्यर्थः । एवञ्चेदं क्वचित्कत्वाभिप्रायम् । यद्वा चतुर्देशगुणवद्वृत्तिद्रव्यविभाजको-
पाधिमानित्यर्थः ।

[अ. टी.] अनीशात्मन्येकत्वं मन्यमानं प्रत्याह-अस्मदाद्यात्मेति । सत्तावान्तरद्रव्य-
त्वजातिमत्त्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं द्रव्यत्वावान्तरपदम् । आकाशादौ व्यभिचार-
वारणार्थं चतुर्देशपदम् । प्रयोगान्तरमाह-आत्मशब्द इति । अत्र जीवविषय आत्म-
शब्दो विवक्षितः । साधारणश्वेज्जीवेश्वरवाचकत्वेन सिद्धसाधनता स्यात् । कालादिवाचकेश-
ब्दैर्व्यभिचारवारणार्थम् आत्मवाचकत्वादित्युक्तम् । देहादिद्रव्यतिरिक्तोऽप्यात्मा
अणुरिति केचित् । केचिच्च मध्यमपरिमाण इति वदन्ति । तद्युदासार्थमाह-मच्छरीरेति ।
मच्छरीरं मदात्मसंयोगि सिद्धमिति इतरग्रहणम् । आत्मान्तरैस्सह संयोगभौञ्जि सिद्धानीति
मदात्मग्रहणम् । ईशात्मापि न परिच्छिन्न इत्याह-स नित्य इति । एवं देशतः कालतश्च

१ यद्यपीति नाम्नि ॥ पुस्तके. २ शुद्धयेति छ. ३ पद्धिरियं च पुस्तके नास्ति. ४ अनेकवा-
चकत्वमिति च. ५ भादीति नास्ति च पुस्तके. ६ आमेति नाम्नि च पुस्तके. ७ भद्रायेति च.
८ मच्छरीरेति च. ९ निविष्टेति च. १० अविच्छिद्येति छ. ११ हेतुः पुनरिति छ. १२ व्युदासायेति
ज, ट. १३ वारणायेति ज, ट. १४ वाचयति नास्ति ज पुस्तके. १५ व्युदासाधयति ज, ट. १६ सहेति
नास्ति ज पुस्तके. १७ भाजीति नाम्नि ट पुस्तके. *रामानुजीयाः, जेनाः.

परिच्छेदशून्य आत्मेति यत्र कुत्रचिदेशे काले च कर्मकृतो भोगस्सङ्गच्छत इति भोगस्य तदाश्रितत्वं निशङ्कम् । संख्यादयः पञ्चसामान्यगुणाः, बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्मा- धर्मभावनाश्च नव विशेषगुणा इति चतुर्दश ।

[वा. टी.] परमात्मवर्जीवस्याप्येक्ये सुखादिव्यवस्थानुपपत्तिमाशङ्क्य भेदं साधयति—अस्मदा- दीति । आत्ममात्रपक्षीकारे सिद्धसाधनता । ईशानीशभेदेनावान्तरजातिसम्भवादीशे चतुर्दश- गुणासम्भवेन भागासिद्धता च । तन्निरासार्थं प्रतिज्ञायाम् अस्मदादिपदम् । सिद्धसाधनपरिहाराय अवान्तरेति । द्रव्यत्वेन तां परिहृतुं द्रव्येति । आकाशनिवारणाय चतुर्दशेति । जातिद्वारा भेदं संसाध्य साक्षाद्भेदं साधयति—आत्मशब्द इति । बहुशब्दवाचक इत्यर्थः । अन्येषेशानीश- वाचकत्वेन सिद्धसाधनता स्यादिति । कालादिशब्दनिवृत्त्ये आत्मेति । अनुकूलप्रतिकूलवातव्या- घ्रादिचलनानामदृष्टजन्यत्वात्तस्य चात्मसम्भवेत्वेन स्वतोऽसम्बन्धाश्रयव्यापिपरिच्छिन्नात्वे तदनु- पपत्तिरित्याशङ्क्याश्रयद्वारा सम्बन्धं घटयितुं व्यापकत्वं साधयति—मच्छरीरेतराणीति । तत्त- दात्मसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय मदिति । क्रमेण संयोगे, सिद्धसाधनतापरिहाराय युग- पदिति द्रष्टव्यम् । ईशस्य परिच्छिन्नात्वे सर्वेनेमिष्ठानुपपत्तिमाशङ्क्याह—ईशोऽपीति । आत्मनो नित्यत्वे आमुष्मिकफलभोगासम्भवेन कृतहानिरकृताभ्यागमक्षेत्याशङ्क्याह—स नित्य इति । संख्या- दिपञ्चगुणसहिता बुद्ध्यादयो नव गुणाः ।

*

(मनोलक्षणम्, तत्र प्रमाणञ्च)

मूर्तत्वे सति सर्वदा स्पर्शशून्यं मनः । सुखादिज्ञानमिन्द्रियजम्, अनित्यज्ञानत्वात् रूपज्ञानवदिति तत्र प्रमाणम् । मनोऽणु, आत्मसंयो- गित्वे सति निरवयवत्वात्, परमाणुवदिति मूर्तत्वं तस्य सिद्धम् । अजसं- योगनिराकरणात् न सर्वगतेन व्यभिचारः । तत्संख्यायष्टगुणैकम् ।

इति प्रमाणमञ्जरीयां द्रव्यपदार्थः ।

[व. टी.] मूर्तत्वे सतीति । कालादावतिव्याप्तिं वारयितुं सत्यन्तम् । घटादावति- व्याप्तिवारणाय विशेष्यभागः । प्रथमध्वने घटादावेवातिव्याप्तिवारणाय सर्वदेति । सुखेति । लौकिकसुखसाक्षात्कार इत्यर्थः । अनुमितौ बाधवारणाय साक्षात्कार इति । अलौकिकसुखसाक्षात्कारे चक्षुरादिजन्ये बाधवारणाय लौकिकेति । रूपादिसाक्षात्का- रेऽर्थान्तरवारणाय सुखेति । इन्द्रियत्वेनेन्द्रियजन्यत्वमुद्देश्यसिद्धये साध्यम् । अनित्य- साक्षात्कारत्वादित्यर्थः । ईश्वरज्ञाने व्यभिचारवारणाय अनित्येति । कालादां व्यभि- चारवारणाय सत्यन्तम् । घटादां व्यभिचारवारणाय विशेष्यभागः ।

इति प्रमाणमञ्जरीव्याख्याने द्रव्यपदार्थस्समाप्तः ।

१ तत्र देशे इति च, ट. २ पदमिदं नास्ति ट पुनरे. ३ मनोद्रव्यमित्यधिकं च पुनरे. ४ पदार्थ उक्त इति मु. ५ प्रथमे इति च. ६ पदमिदं नास्ति च पुनरे. ७ इति द्रव्यपदार्थ इति ट.

[अ. टी.] सर्वदा स्पर्शशून्ये कालादौ व्यभिचारवारणाय भूतत्वे सतीत्युक्तम् । घटादिव्यवच्छेदार्थं स्पर्शशून्यपदम् । पाकादौ क्षणं स्पर्शशून्यपार्थिवपरमाणुव्यवच्छेदाय सदेत्युक्तम् । ईशज्ञाने व्यभिचारव्युदासाय अनित्येति । भूतत्वे सतीति विशेषणं साधयति-मन इति । निरवयवक्रियादौ व्यभिचारनिरासार्थम् संयोगिपदम् । एवमपि घटादिसंयोगिनि व्योमादौ व्यभिचारस्यादत्त उक्तम् आत्मेति । आत्मसंयोगिघटादिव्युदासाय निरवयवपदम् । अजसंयोगपक्षे आत्मसंयोगित्वे सति निरवयवत्वं व्योमादौ व्यभिचरतीत्यत आह-अजेति । सर्वगतेन व्योमादिना । संख्यादयः पञ्च परत्वापरत्व-वेगा अप्थौ ।

इति प्रमाणमञ्जरीदिप्पणेऽङ्गवारण्ययोगि-
विरचिते द्रव्यपदार्थस्समाप्तः ।

[वा. टी.] परिशिष्टे द्रव्यं निरूपयति-भूतत्वं इति । आकाशेऽतिव्याप्तिपरिहाराय भूतंति । घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय स्पर्शेति । पाकावस्थपरमाणुनिवारणाय सदेति । नन्विदमसम्भवि लक्षणम्, मनस एवासिद्धेः । न चेन्द्रियार्थसान्निव्येऽपि कदाचिदेव ज्ञापमानं ज्ञानं कारणं सम्पादयिष्यति, तच्च मन इति वाच्यम् । अदृष्टेनार्थान्तरत्वात् । अत आह-सुखज्ञानमिति । इन्द्रिय-जम् इन्द्रियकारणम् । ईशज्ञानेऽतिव्याप्तिपरिहाराय अनित्येति । ज्ञानश्चात्र साक्षात्कारः । तेन न लिङ्गजन्ये व्यभिचारः । ततश्चादृष्टस्य सामान्यसम्पादकत्वात् पृथक्कारणतेत्यर्थः । ये त्विन्द्रियजमितीन्द्रियकारणमिति व्याचक्षते, तन्मते रूपादिज्ञानस्य पक्षीकारेऽपि साध्यसिद्धेः सुखज्ञान-पक्षत्वानुपपत्तिः । न च तत्र चक्षुरादिनार्थान्तरता, तत्रास्य कारणत्वेनोपजीव्यत्वादिति । ननु मनसो विमुखे आत्मन इव तत्तदिन्द्रियसम्बद्धार्यानां युगपत्संयोगात्सर्वज्ञानोत्पत्तिः । मध्यमत्वे चानित्यत्वं मानमित्याशयवान् अणुत्वं साधयति-मन इति । दिशि घटे चातिव्याप्तिपरिहाराय विशेषणद्वयम् । संख्यादयोऽप्यौ गुणाः ।

इति प्रमाणमञ्जरीव्याख्यायां भावदीपिकाख्यायां द्रव्यपदार्थः ।

*

(गुणलक्षणं तद्विभागश्च)

कर्मान्यत्वे सति सामान्यैकाश्रयो गुणः । स रूपादिभेदेन चतुर्विंशतिधा ।

[व. टी.] कर्मान्यत्वे सतीति । कर्मण्यतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तम् । सामान्यादावतिव्याप्तिवारणाय आश्रय इत्युक्तम् । समवायीत्यर्थः । विशेषेऽतिव्याप्तिवारणाय सामान्येति । सामान्यसमवायीत्यर्थः । सामान्यसमवायः सामान्येऽप्यस्ति, अतः सामान्यनिरूपितस्समवायो ग्राह्यः । स च द्रव्येऽप्यस्ति, तदर्थम् एकपदम् ।

१ वारणार्थमिति ज, ट. २ व्यवच्छेदायेति ज, ट. ३ व्युदासायमिति ज, निरासायमिति ट.
४ निरासायेति ज, ट. ५ पदमिदं नास्ति ज पुस्तके. ६ इति प्रमाणमञ्जरीदिप्पणे द्रव्यपदार्थ इति ज, ट.
७ स इति नास्ति ख, सु. पुस्तकयोः.

[अ. टी.] एवं नवप्रकारं द्रव्यं निरूप्य गुणं निरूपयति—कर्मन्यत्वे सतीति । सामान्यादिव्यवच्छेदायः सामान्याश्रय इत्युक्तम् । आश्रयः समवायी । द्रव्यव्युदासाय एकेति । द्रव्यस्य विशेषं प्रत्ययाश्रयत्वात् सामान्यैकाश्रयत्वम् । तादृक्कर्मव्यवच्छेदाय कर्मन्यत्वपदम् । सामान्येन सहैक आश्रयो यस्य स सामान्यैकाश्रय इति, कुतो न व्युत्पाद्यते ? उच्यते—तथा सति व्युत्पादादिद्रव्ये व्यभिचारदेवं व्याख्या । रूपरसगन्ध-स्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नगुरुत्वद्रवत्व-स्नेहसंस्कारधर्माधर्मशब्दाश्चतुर्विंशतिर्गुणाः ।

[वा. टी.] सर्वद्रव्यवृत्तिवात्सामान्याधारत्वाच्च गुणं निरूपयति—कर्मन्यत्वे सतीति । प्रमेय-त्वादिधर्माश्रये सामान्याश्रये व्यभिचारपरिहाराय सामान्येति । कर्मणि व्यभिचारपरिहाराय कर्मेति । कर्मन्यत्वञ्च कर्मन्यत्वधिकरणत्वम् । तेनोच्छेषणादन्यस्मिन् अपक्षेपणे नातिव्याप्तिः । द्रव्येऽति-व्याप्तिपरिहाराय एकेति । न च प्रमेयत्वाच्चाश्रयत्वेनासम्भवं आश्रयत्वेन समवायित्वस्य वि-क्षितत्वात् । उत्पन्नमात्रे द्रव्येऽतिव्याप्तिपरिहाराय सवेति द्रव्यम् ।

(रूपरसगन्धस्पर्शः)

नयनैकग्राह्यजातिमद्रूपम् । रसनैकग्राह्यजातिमान् रसः । घ्राणैक-ग्राह्यजातिमान् गन्धः । स्पर्शनैकग्राह्यजातिमान् स्पर्शः ।

[ब. टी.] नयनेति । सामान्यादावतिव्याप्तिभङ्गाय जातिमदिति । स्पर्शेऽतिव्याप्तिवारणाय नयनेति । घटादावतिव्याप्तिवारणाय एकेति । नयनैकेन्द्रियग्राह्यत्वमात्र-ग्रहे रूपस्वरूपार्थसादावतिव्याप्तिः, प्रभायां द्रव्ये वातिव्याप्तिः, नयनैकग्राह्यविनष्टघटादाव-तिव्याप्तिश्च, अतीन्द्रियरूपेऽव्याप्तिश्चेति दूषणनिरासाय जातीति । प्रभात्वस्य जातित्वपक्षे प्रमान्यत्वे सतीति विशेषणीयम् । यद्वा प्रभा न चाक्षुषीति, चोध्यम् । रूपप्रमान्यतर-त्वमादाय प्रभायामतिव्याप्तिवारणाय जातीति । रसनेति । अतीन्द्रियरसेऽव्याप्ति-वारणाय जातिमानिति । रसनग्राह्यरसवति द्रव्येऽतिव्याप्तिवारणाय जातीत्युक्तम् । धर्मपदपरिहारेण चक्षुर्ग्राह्यरूपत्वादिमत्यतिव्याप्तिवारणाय रसनेति । रसनग्राह्यगुणत्वा-दिमत्यतिव्याप्तिवारणाय एकेति । जातिर्पदार्थस्य यावान् भागो न व्यर्थस्तावान् ग्राह्यः ।

[अ. टी.] जातिमतां रसादीनां व्यवच्छेदाय नयनग्राह्येत्युक्तम् । घटादिव्यवच्छेदाय एकपदम् । नयनैकग्राह्यं रूपमित्युक्ते परमाण्वादिरूपेऽव्याप्तिस्स्यादत उक्तम् नयनैकग्रा-ह्यजातिमदिति । एवं रसादिलक्षणेऽपि । रसनग्राह्यसत्ताजातिमद्रव्यादिच्युदासाय एक-पदम् । गुणत्वजातिमद्रूपादिच्युदासार्थस्य तत् ।

१ सप्तप्रकारमिति ज, ड. २ व्यवच्छेदार्थमिति ज, ड. ३ समवायेनेति श, ड. ४ तादृकेति श. ५ इन्द्रियग्राहेति सु. ६ नयनैकग्राहेति च. ७ रसनग्राहे इति च. ८ जातिवदार्थताभावात् भागो न व्यर्थस्ताभावात् ग्राह्य इत्युक्तं पाठो ॥ पुलके. ९ व्युदासायेति ज, ड. १० व्यापृत्यर्थमिति ज, ड. ११ रूपेति ज, ड. १२ रसनग्राहेति ज, ड. १३ व्युदासायेति ज, ड.

[वा. टी.] नयनेति । स्वेतिव्याप्तिपरिहाराय नयनेति । नयनप्राज्ञसत्ताजातिमति । घटादा-
वतिव्याप्तिपरिहाराय एकेति । रूपत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय जातीति । एवमन्यत्रापि ।

(रूपादीनामवान्तरविभागः, तेषां यावद्द्रव्यभावित्वञ्च)

एते यावद्द्रव्यभाव्ययावद्द्रव्यभाविभेदाद्विधा । पार्थिवपरमाणोरन्यत्र
यावद्द्रव्यभाविनः, प्रत्यक्षद्रव्ये प्रत्यक्षतस्तथा सिद्धिः । द्युणुकादिषु रूपा-
दयो यावद्द्रव्यभाविनः, कार्यरूपादित्वात् घटरूपादिवदिति । सलिलादि-
परमाणुरूपादयो यावद्द्रव्यभाविनः, सलिलादिरूपादित्वात् सम्प्रति-
पन्नवदिति ।

[व. टी.] एते रूपादयः । पीलुंपाकवादिमते घटरूपादेरपाकजत्वाद्यावद्द्रव्यभावित्वात् ।
प्रत्यक्षतः तर्कोपबृंहितादित्यर्थः । द्युणुकादिष्वित्यादिपदेन घ्राणादिपरिग्रहः ।
यावदिति । स्वाश्रयसमानकालीनध्वंसाप्रतियोगिन इत्यर्थः । पृथिवीपरमाणुनिष्ठरूपादौ
व्यभिचारवारणाय कार्यनिष्ठेति । "संयोगादौ व्यभिचारवारणाय रूपादित्वादिति ।
रूपत्वात् रसत्वादित्यादि पृथगेव हेतुः । यत्पटादिरूपं वादिद्वयमते यावद्द्रव्यभावि, तद्-
ष्टान्तपति-पैटरूपादिवदिति । सलिलादीत्यनुमाने आदिपदेन तेजःप्रभृतिपरिग्रहः ।
परमाणुपदमुद्देश्यसिद्धये । रूपादय इत्यादिपदेन रसादेः परिग्रहः, न तु संयोगादेः ।
अत्र यत्परमाणौ यो विशेषगुणः स तत्र पक्षः । यद्वा सलिलादिपरमाणुविशेषगुणवत्त्वेन
पक्षता । तेन तेजःपरमाणौ रसाद्यभावे वायुपरमाणुषु स्पर्शमात्रसत्त्वे त्वाश्रयासिद्धिः
परास्ता । तेन न वा बाधः । पृथिवीपरमाणुरूपादौ व्यभिचारवारणाय सलिलादीति ।
संयोगादौ व्यभिचारवारणाय रूपादित्वादिति । सम्प्रतिपन्नं जलरूपम् ।

[अ. टी.] रूपादीनामवान्तरविभागमाह-एत इति । परमाणुपाकौदिक्रियायां घटादिगत-
रूपादयो यावद्द्रव्यभाविनः । के^१ तर्कयावद्द्रव्यभाविनः पार्थिवपरमाणूनामिति विभागं
विशदयति-पार्थिवेति । उभयत्र प्रमाणमाह-प्रत्यक्षद्रव्य इत्यादिना । पार्थिवगुणादौ
व्यभिचारव्युदासीय कार्यरूपादित्वादित्युक्तम् ।

१ भेदेनेति ग, घ. २ परमाणु इति क. ३ पार्थिवपरमाणूनां रूपादयो यावद्द्रव्यभाविन इति
ग. ४ पदमिदं नास्ति सु. ५ सिद्ध इति ख, ग; सिद्धा इति क. ६ पदमिदं नास्ति क, ग, घ पुस्तकेषु.
७ कार्यनिष्ठरूपादित्वादिति बलमद्रोक्तः पाठः ८ घटादिति ग, पटादिति घ, पटेति ख. ९ आदिपदं
नास्ति घ पुस्तके. १० परमाणवेव रूपादेः पाक इति ये ध्वन्ति ते पीलुंपाकवादिनो वैशिष्टिकाः, तेषां मत
इत्यर्थः । ते हि-अवयविनावच्छेदेष्ववयवेषु पाको न सम्भवति, किन्तु तेजस्संयोगेनावयवेषु विनष्टेषु स्वतन्त्रेषु
परमाणुष्वेव पाकः । अनन्तरं पक्षपरमाणुसंयोगाद्द्युणुकादिक्रमेण महावयवविपर्ययोत्पत्तिः, यद्विसृज्यमावयवानां
विजातीयवेगापीनक्रियापक्षार्पण्यहनाशः व्युद्वाहोत्पत्तिश्चेत्यभिप्रेयन्ति । ११ ध्वंससंयोगाद्भाविति घ.
१२ पदमिदं नास्ति घ पुस्तके. १३ परमाणुणेति छ. १४ स्पष्टजलरूपमिति घ. १५ पारप्रक्रियाया-
मिति ज, ड. १६ तर्हि तु इति ड. १७ पार्थिवानूनामिति ज, ड. १८ पार्थिवानुरूपादिविति ज, ड.
१९ वारणयेति ज, ड. २० रूपादित्युक्तमिति ड.

[वा. टी.] द्यणुकादिष्विति । कार्येण्यत्र पद्यसमाप्तः । तेन न पार्थिवपरमाणुरूपादौ व्यभि-
चारः । कर्मण्यतिव्याप्तिपरिहारार्थं रूपेति । सलिलेति । सिद्धसाधनपरिहाराय प्रतिज्ञायां परमाणु-
पदम् । पार्थिवपरमाणुरूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय सलिलादीति । असिद्धिपरिहारार्थं रूपादीति ।

(अयावद्द्रव्यभाविनो गुणाः)

पार्थिवपरमाणुष्वयावद्द्रव्यभाविनः । तत्र प्रमाणम्-पार्थिवपरमाणौ
सति रूपादयो निवर्तन्ते, अनित्यत्वात्, सम्प्रतिपन्नवत् इति । पार्थिवं
द्यणुकम् अनित्यविशेषगुणवत्समवेतं, पार्थिवकार्यत्वात्, घटवदिति ना-
सिद्धं साधनम् । हुतवह्निर्वेहावलीढे मंहीखण्डे पूर्वरूपेतिलक्षणरूपादि-
दर्शनात्तत्रैवं तथैव कल्पने सति नातिप्रसङ्ग इति तर्कः । तत्र पार्थिव-
परमाणुरभिप्रसङ्गोपासमवाधिकारणविशेषगुणवत्त्वं, अनित्यविशेषगुणवत्त्वे
सन्ति नित्यभूतत्वात्, आकाशावदिति पाकजत्वं तेषां सिद्धम् ।

[व. टी.] सतीति । उद्देश्यसिद्धये सत्यन्तम् । अनित्यत्वात् ध्वंसप्रतियोगित्वादित्यर्थः । न चेत्थं घटादिरूपादीनामप्ययावद्द्रव्यभावित्वसिद्धिः, पक्षधर्मतावलेन प्रकृते
स्वाश्रयसमानकालीनध्वंसप्रतियोगित्वसिद्धिः, अयावद्द्रव्यभावित्वसिद्धिरूपत्वात् । ननु
परमाणुरूपत्वादिना नित्यत्वमेव तस्येत्यत आह-पार्थिवं द्यणुकमिति । घटादौ सिद्ध-
साधनवारणाय पृथिवीपरमाणौ च बाधवारणाय पार्थिवेति । अणुकशब्देन परमाणु-
रप्युच्यत इत्यतौ द्वीत्युक्तम् । यद्वा द्यणुकशब्दो रूढः । अनित्यपदं विशेषपदञ्च
सिद्धसाधनवारणाय । अनित्यविशेषः प्रागभावादि । तद्वत्समवेतत्वेनार्थान्तरवारणाय
गुणेति । अनित्यविशेषगुणयद्वटादिसम्बन्धत्वेनार्थान्तरवारणाय समवेतत्वमुक्तम् ।
बाधवारणाय(?)वस्तुनित्यत्वसाधकमनुमानं वा (वा ? चा) पाकजत्वाद्युपा(प्याभि-
हित ? ध्युपहत) मिति भावः । न त्वीदृशानुमानेन जलादिपरमाणुरूपादीनामप्य-
नित्यत्वप्रसङ्ग इत्यत आह-हुतवहेति । कार्यगतविजातीयरूपादिदर्शनमेव कारणगत-
विजातीयरूपादौ तत्रमिति भावः । एतेमर्थमनुमानेन साधयति-पार्थिवपरमाणु-
रिति । अणुकादौ बाधवारणाय अणुरिति । द्यणुके बाधवारणाय परमेति । जलादि-
परमाणौ बाधवारणाय पार्थिवेति । आश्रयत्वे गुणाश्रयत्वे विशेषगुणाश्रयत्वे चार्था-
न्तरमतः अभिसंयोगासमवाधिकारणकेत्युक्तम् । अभिघावरूपाभिप्रसङ्गोपासमवा-
धिकारणकश्रयाश्रयत्वेनार्थान्तरवारणाय गुणेति । अभिसंयोगासमवाधिकारणको यो

१ निवर्तेति नास्ति ख पुनरे. २ हेमेति सु. ३ रूपादीनि क. ४ तत्रैवेति घ, ग, घ, गु.
५ तस्यावत्ये सतीति सु, तथेति नास्ति क पुनरे. ६ तर्क इति नास्ति ख मुद्रितपुनरे. ७ तथेति
नास्ति क पुनरे. ८ गुणाधय इति ग, घ. ९ नपीति सु. १० नित्यप्याभिनि घ. ११ न चेदिति घ.
१२ चास्तिवेति घ. १३ गुणयद्वटादिसिद्धिः घ. १४ हुतवह्निमिति घ. १५ प्यणुकेन घ. १६ विदोतेति
नास्ति घ पुनरे. १७ असिद्धिज्ञानेति घ. १८ य इति नास्ति घ पुनरे.

विभागः तदाश्रयत्वेनार्थान्तरवारणाय विशेषेति । यद्वा अग्निसंयुक्तवायुपरमाण्वादिना सह पार्थिवपरमाणोरग्निसंयोगासमवायिकारणकसंयोगवत्त्वेनार्थान्तरवारणाय विशेषपदम् । अदृष्टवदात्मसंयोगादिजनितरूपादिमत्त्वेन सिद्धसाधनतावारणाय अग्नीति । अग्निसंयोगासमवायिकारणकविशेषः विभागादिरेव स्यादतो गुणेति । जलादिपरमाणौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । अनित्यसंयोगादिरस्त्येवेति व्यभिचारातादवस्थ्यवारणाय सत्यन्तान्तर्गतो विशेषभागः । अनित्यविशेषसंयोगादिरस्त्येवेत्यत आह—सत्यन्ते गुणवत्त्वम् घटादौ व्यभिचारवारणाय नित्येति । आत्मनि व्यभिचारवारणाय भूतत्वादिति । आकाशचदिति । यो वंशादौ अग्निसंयोगे चटपटाशब्दो जायते समादाय साध्यसत्त्वम् ।

[अ. टी.] पार्थिवं गुणा रूपादयो नित्यत्वमसिद्धमित्यत आह—पार्थिवं ताव्युदासाय अनित्यपदम् । अपाकजत्वोपाध्युपहतं पूर्वमाभासानुमानमिति भावं । नन्वाप्यग्न्युकादेरप्येवं साधनसम्भवाज्जलादिपरमाणूनामनित्यरूपादिप्रसङ्ग इत्यत आह—हुतवहेति । आप्यादिकार्ये विलक्षणरूपादिदशनस्यानुकूलस्याभावात् नातिप्रसङ्गः । यथा शुक्रः पटः शुक्रतन्त्रवारण्यः एवं लोहितो महीषिण्डस्तोदकारणारण्य इति परम्परया परमाणूनां पाकजं लौहित्यमुक्तम् । तदनुमानारूढं करोति—पार्थिवेति । अग्निसंयोगोऽसमवायि-

पार्थिवाणोरनङ्गीकारेण धार्मः स्यादतः अग्निपदम् । भूतत्वादित्युक्ते आप्यग्न्युकादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तं नित्येति । जलादिपरमाणुषु व्यभिचारवारणाय अनित्यविशेषगुणवत्त्वे सतीत्युक्तम् । तेषां लोहितरूपादीनाम् ।

[वा. टी.] पार्थिवमिति । सिद्धसाधनपरिहारार्थम् अनित्येति । अनित्यगुणसंयोगादिमत्परमाणुद्वयसमवेतत्वेन सिद्धसाधनपरिहारार्थे विशेषेति । आप्यग्न्युकेऽतिव्याप्तिपरिहाराय पार्थिवेति । सिद्धे हेतौ पाकजत्वं साध्यति—हुतवहेत्यादिना सिद्धमित्यन्तेन । तत्र तथा सति

१ इत आरभ्य अयान्तरवारणायेत्यन्तो, भागोऽस्ति च पुस्तके. २ जनितत्वे इति छ. ३ एतद्वन्तरम् असमवायिसिद्धये असमवायीति । अग्निनिष्ठस्य संयोगानिष्ठस्यासमवायिवत्सिद्धिवारणाय असमवायीति पाठ उपलभ्यते च पुस्तके. ४ इत आरभ्य नित्येति इत्यन्तो भागो नास्ति छ पुस्तके. ५ संयोगाश्चटपटेति च. ६ पार्थिवाण्येति ज, ट. ७ जलाण्येति ज, ट. ८ पदमिदं नास्ति ट पुस्तके. ९ गुणसमवेतेति श. १० ध्युदासार्थमिति ज, ट. ११ न्याय इति ट. १२ अभावादय च भावाधेति ज, अभावादय धेदभावाधेति ट. १३ तादृशेयसत्त्व इति ट. १४ पार्थिवपरमाणुरिति ज, ट. १५ व्युदासायेत्यारभ्य स्यादित्यन्तो भागो नास्ति छ पुस्तके. १६ निरासाय अग्नीति ज, ट. १७ वाचव्युदासायेति ज, ट.

साधितेऽनित्यत्वे, एवं कल्पने कल्पतेऽनेनेति कल्पनमनुमानम्, तस्मिन् क्रियमाणे नातिप्रसङ्ग इत्यन्वयः । तदाह-पार्थिवेति । सिद्धसाधनतापरिहाराय अग्निसंयोगेति । आप्यद्युकेऽति-
व्याप्तिपरिहाराय नित्येति । आप्याणौ व्यभिचारपरिहाराय अनित्येति । घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय
नित्येति । आत्मनि व्यभिचारवारणाय भूतेति । तर्ह्यतिप्रसङ्ग एव, आप्याणूनामपि तथा साधयितुं
शक्यत्वादत आह-हुतवहेति । अयमाशयः-अनलसमाकुलपृथिव्यवयवपूर्वरूपपरावृत्त्या रूपान्तर-
दर्शनात्कार्ष्वैलक्षण्येन कारणवैलक्षण्यानुमानस्य रक्तपटदर्शनेन रक्ततन्तुवत्सप्रसत्त्वात्परम्परया
परमाणूनामपि तथा साधनान्नातिप्रसङ्ग इति । नन्वन्यावयवविन्येवाग्निसंयोगात् पूर्वरूपनाशे संयो-
गान्तरेण पुनरन्योत्पत्तौ नेयं कल्पनेति चेन्न; तदा नष्टेऽवयवविन्यवयरूपे रूपान्तरदर्शने न स्यात्,
तच्चास्तीत्याह-खण्ड इति ।

(संख्यालक्षणम् तद्विभागश्च)

गुणत्वावान्तरजात्या द्व्यणुकपरिमाणासमवायिकारणसजातीयया
संख्या । सा द्वेधा-अयावद्द्रव्यभाविवावद्द्रव्यभाविभेदेन ।

[ब. टी.] गुणत्वावान्तरेति । द्व्यणुकपरिमाणस्यासमवायिकारणं परमाणुद्वित्वम्, तस्य
गुणत्वावान्तरजातिपुरस्कारेण सजातीयया संख्येत्यर्थः । सत्तया द्वित्वसजातीयरूपादाय-
तिव्याप्तिभङ्गाय अयान्तरेति । गुणत्वेन द्वित्वसजातीयरूपादावतिव्याप्तिवारणाय
गुणत्वेति । रूपद्वित्वान्यतरत्वादिना रूपादावतिव्याप्तिभङ्गाय जाल्येति । जातिपदेन
संभवेतो धर्म इह गृहीतस्तेन न नित्यपदच्यर्थता । गुणत्वावान्तरजाती रूपत्वादिरत उक्तं
द्व्यणुकेत्यादि । घटपरिमाणासमवायिकारणसजातीये परिमाणेऽतिव्याप्त्यभावाय द्व्यणु-
केति । द्व्यणुकासमवायिकारणसंयोगसजातीयसंयोगेऽतिव्याप्तिभङ्गाय परिमाणेदि ।
द्व्यणुकपरिमाणे निमित्तकारणज्ञानादिसजातीयेऽतिव्याप्तिवारणाय असमवययीति ।
सां द्वेधा-अयावद्द्रव्यभाविवावद्द्रव्यभाविभेदादिति पाठः । यावद्द्रव्यभावावद्द्र-
व्यभाविभेदादिति पाठेऽपि अयावद्द्रव्यभाविन एव पूर्वनिर्देशो बोध्यः । अल्पस्वर-
त्वात्तु यावद्द्रव्यभाविनः पूर्वः पाठः ।

[अ. टी.] सजातीयया संख्येत्युक्ते ईश्वरज्ञानादिना निमित्तकारणेन सजातीयसंयोगादिना व्य-
संयोगाद्यसमवायिकारणसजातीयकयाविश-

तूलादिपरिमाणविशेषासमवायिकारणप्रतिष्ठिता-
वयवसंयोगादौ व्यभिचारवारणाय द्व्यणुकपदम् । तथापि गुणत्वसत्त्वार्थ्यौ द्व्यणुकपरिमाणा-
समवायिकारणसजातीयरूपादौ व्यभिचारवारणाय गुणत्वावान्तरजात्येत्युक्तम् । अनेक-
द्रव्यमार्थयो यस्य तदनेकद्रव्यम्, तादृशमसमवायिकारणं यस्य तदनेकद्रव्यासमवायिकारणम् ।

१ भेदादिति क, ग, घ. २ वारणायेति घ. ३ निरामयेति घ. ४ द्वित्वार्थेति घ.
५ नियमेति घ. ६ निरामयेति घ. ७ अयावदेति घ. ८ अपीति कति च पुनरे. ९ स्वरवर्यादिति घ.
१० तस्य इयवापेदार्थमिति ज, ट. ११ निरामयेति ज, ट. १२ वारणायेति ज, ट. १३ सजा-
म्यामिति ज, ट. १४ व्यभिचारस्यादत्त उक्तमिति ज, ट. १५ आग्रहभूतमिति ज, ट.

[वा. टी.] गुणत्वेति । कालादिनिवृत्तये असमवायीति । रूपनिवृत्तये परिमाणेति । परिमाणनिवृत्तये व्यणुकेति । घटादिसंख्यायामव्याप्तिनिवृत्तये सजातीयेति । सत्तया सजातीये घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय अवान्तरेति । अवान्तरजात्या गुणत्वेन सजातीये गन्धेऽतिव्याप्तिपरिहाराय गुणत्वेति । तथाच संख्यात्ववती संख्येत्युक्तं भवति । एवं परिमाणादिलक्षणेऽप्यवगन्तव्यम् ।

*

(द्वित्वसंख्यासिद्धिः, तस्या अयावद्द्रव्यभावित्वञ्च)

पूर्वत्र प्रमाणम्-परिमाणत्वं, संयोगातिरिक्तानेकद्रव्यासमवायिकारणवृत्तिः, परिमाणजातित्वात्, सत्तावदिति । परमाणुपरिमाणम्, असमवायिकारणं न भवति, नित्यपरिमाणत्वात्, आकाशपरिमाणवदिति परपक्षव्युदासः । द्वित्वम्, अयावद्द्रव्यभावि, अनेकगुणत्वात्, संयोगवदिति । द्वित्वसामान्यं, बुद्धिजवृत्तिः, द्वित्वजातित्वात्, सत्तावदिति बुद्धिजत्वम् ।

[व. टी.] परिमाणत्वमिति । अनेकं द्रव्यं समवायि यस्य तदसमवायिकारणं यस्य तत्र वर्तत इत्यर्थः । एतावता व्यणुकपरिमाणस्यासमवायिकारणं परिमाणं न भवति, किन्तु द्वित्वसंख्येति सिद्धम् । संयोगातिरिक्तवृत्तित्वे सिद्धसाधनता, संयोगातिरिक्तासमवायिकारणकवृत्तित्वेऽपि सिद्धसाधनता, अनेकद्रव्येन्तु पिण्डावयवसंयोगः, तदसमवायिकारणकवृत्तित्वेऽपि सिद्धसाधनता, संयोगातिरिक्तानेकद्रव्यवृत्तित्वे बाधः, अतो विशिष्टसाध्यनिर्देशः । कालत्वे व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति । दिक्कालवृत्तित्वे व्यभिचारवारणाय जातिनिवेशित्वभागः । विशेषे व्यभिचारवारणाय अनेकसमवेतत्वभागः । यद्वत्त्वे व्यभिचारवारणाय परिमाणेति । सत्तायां विभागजविभागवृत्तित्वेन साध्यसिद्धिः । ननु परमाणुपरिमाणमेव च व्यणुकपरिमाणासमवायिकारणमित्यत आह-परमाण्विति । कपालादिपरिमाणे बाधवारणाय परमाण्विति । उद्देश्यसिद्धये परमेति । व्यणुकपरिमाणस्याप्यसमवायिकारणत्वाभावात् परमाणुर्नासमवायिकारणमित्युक्ते सिद्धसाधनम् । परमाणुनिष्ठं नासमवायिकारणमित्युक्ते तद्रूपादौ बाधः, विशेषादौ सिद्धसाधनञ्च । न कारणमित्युक्ते बाधः, तस्य योगिज्ञानादिजनकत्वात्, अखण्डाभावे धैर्याभावाच्च । उद्देश्यसिद्ध्यर्थत्वाच्च न समवायिकारणमित्युक्ते सिद्धसाधनम् । परमपरिमाणस्य पक्षीकरणे गगनपरिमाणादौ सिद्धसाधनमतः अपि च । उद्देश्यसिद्धये च तत् । अनित्य-

१ वृत्तिजातिवदिति मु. २ द्रव्यगुणत्वादिति मु. ३ पदमिदं नास्ति मुद्रितपुस्तके. ४ एताव-
तेत्याम्य द्वित्वसंख्येत्यन्तो भागः नास्ति ॥ पुस्तके. ५ द्रव्यस्थलेति च. ६ कारणेति नास्ति च पुस्तके.
७ एतद्वन्तरं च पुस्तके पाठ एवमुपलभ्यते-अनेकद्रव्यं व्यणुकादि, तत्समवायिकारणकवृत्तित्वेऽपि सिद्ध-
साधनता इति । ८ पक्षिरिषं नास्ति छ पुस्तके. ९ चेति नास्ति च पुस्तके. १० यत्वेति छ. ११ पक्षीकारे
इति छ.

परिमाणे व्यभिचारवारणाय नित्येति । नित्यरूपादौ व्यभिचारवारणाय परिमाणत्वादिति । परमाणुपरिमाणस्य कारणत्वे व्युत्पत्त्युत्तरत्वप्रसङ्गः, कपालापेक्षया घटे महत्तरत्ववत् । द्वित्वमिति । द्रव्यभावित्वे सिद्धसाधनत्वमतः अयावदिति । अयावद्भावीत्युक्ते यत्किञ्चिदावद्भावित्वसत्त्वाद्वाधः । यत्किञ्चिदावद्भाविसत्त्वात् सिद्धसाधनञ्च । तदर्थं द्रव्यपदं स्वाश्रयपरम् । अनेकगुणत्वात् अनेकाश्रयगुणत्वादित्यर्थः । परिमाणादौ व्यभिचारवारणाय अनेकेति । जातौ व्यभिचारवारणाय गुणत्वादिति । यद्यपि सर्वं द्वित्वं नायावद्द्रव्यभावि, ईश्वरापेक्षाबुद्धिर्जैद्वित्वादेर्यदादिनाशेनापि नाशसम्भवात्, तथापि अयावद्द्रव्यभाविजातीयत्वं तत्राप्यस्त्येवेति भावः । न च घटेरूपेऽपीत्यमयावद्द्रव्यभाविष्यत्वं स्यात् । अयावद्द्रव्यभाविष्यत्वं परिमाणरूपसजातीयत्वादिति वाच्यम् । अवयवविषययावद्द्रव्यभाविष्यत्वं सजातीयत्वस्य गुणत्वव्याप्यत्वात् विवक्षितत्वात् । शब्दे सुखादौ चातादृशमेवायावद्द्रव्यभावित्वमित्यवगन्तव्यम् । न चैकत्वेऽतिप्रसङ्गः, गुणत्वव्याप्यव्याप्यजातेरुक्तत्वात् । यद्वा व्यासज्यवृत्तीनां व्यासज्यवृत्तित्वमेवायावद्द्रव्यभावित्वमित्यर्थः । अयावद्द्रव्यता विजातीयत्वे सति व्यासज्यवृत्तित्वमेव वा । न च जातीः यत्वाद्द्वैधर्म्यम्, अयावद्द्रव्यभाविपदार्थस्य यावद्द्रव्यभावित्वघटिततया वक्तव्यत्वात्, प्रवृत्तिनिमित्ते वैयर्थ्याभावात् । शब्दसुखपृथिवीपरमाणुरूपादीनान्तु स्वाश्रयसमानकालीनध्वंसप्रतियोगित्वमेवायावद्द्रव्यभावित्वम् । न च घटादिरूपेऽतिप्रसक्तिः, तस्य स्वाश्रयसमानकालीनप्रागभावप्रतियोगित्वेऽपि तत्समानकालीनध्वंसप्रतियोगित्वाभावात् । यद्वा यद्वित्वमाश्रयनाशजन्यध्वंसप्रतियोगि तद्विभक्तः पक्षः । हेतुरपि तद्विभक्तत्वेन बोध्यः । एवं तादृशसंयोगादिभिन्नत्वेनापि विशेष्यः । तेन न बाधव्यभिचारः । उपहितानुपहितमेवेन हेतुसाध्ययोर्भेद इति साध्यवैशिष्ट्यम् । यद्वा एकत्रात्यन्ताभावोऽन्यत्रान्योन्याभावो निवेशनीय इति भेदः । तावता प्रथमो हेतुः यावद्द्रव्यभाविद्वित्वादिपृथक्त्वादिसंयोगविभागभिन्नानेकवृत्तिगुणत्वादित्येवंरूपः । द्वितीयस्तु यावद्द्रव्यभाविभिन्नत्वादित्येवं हेतुः । यदि च साध्यं यावद्द्रव्यभावित्वराहित्यं, यदि वा साध्यं यावद्द्रव्यभाविभिन्नत्वं, तदा द्वितीयो हेतुः यावद्द्रव्यभावित्वराहित्यम् । अनित्यमनेकवृत्तिगुणत्वं न देयमेव । द्वित्वसामान्यमिति । द्वित्वमात्रवृत्तिसामान्यमित्यर्थः । असाधारणबुद्धिजन्यवृत्तित्वं साध्यम् । तेन नेश्वरबुद्धिजन्यवृत्तित्वेनार्थान्तरम् । ओत्मादौ बाधवारणाय पक्षे द्वित्वेति । उद्देश्यसिद्धये पक्षे धर्मपदं विहाय सामान्यपदम् । पक्षातिरिक्ते नमोद्वित्वान्यतरत्वादौ सन्दिग्धव्यभिचारवारणाय जातित्वादिति । यद्वा बुद्धिजन्यसमवेतत्वं साध्यम् । तेनेदृशान्यतरत्वादौ निश्चितव्यभिचारवारणाय जातित्वादिति ।।

१ साध्यमेति छ. २ भावित्वादिति च. ३ अन्येति च. ४ व्याप्याप्याप्येति च. ५ इत्यर्थं इति नास्ति च पुच्छके. ६ मिश्रत्वेनावाच्य इति छ. ७ न साध्यावैशिष्ट्यमिति च. ८ अपरत्रेति च. ९ वृत्तित्वेति च. १० स्वादीयेवमिति छ. ११ मिश्रत्वं तदा द्वितीयो हेतुः, यावद्द्रव्यभावित्वराहित्यम्, अनेकगुणत्वं न देयमेवेति च पुच्छकपाठः. १२ आत्मादाविति च. १३ स्वीयबुद्धिजन्यसमवेतत्वमिति च.

पक्षेऽपि सामान्यपदमेतद्वित्वादौ बाधवारणाय । आत्मादौ व्यभिचारवारणाय द्वित्वेति ।
 बुद्धिजेच्छावृत्तित्वेन सत्ताया दृष्टान्तता । अन्ये त्वपेक्षाबुद्धिजवृत्तित्वं साध्यम् ।
 न च व्याप्यत्वासिद्धिः, परत्वादेरपेक्षाबुद्धिजन्यत्वसिद्धित्वाभिप्रायेण दृष्टान्तसिद्धिः ।
 न चेश्वरपेक्षाबुद्धिजन्यवृत्तित्वेनार्थान्तरम्, अपेक्षाबुद्धित्वेन तद्वुद्धिजन्यवृत्तित्वस्याप्यु-
 द्देश्यत्वात् । न चानुगमः, अपेक्षाबुद्धिप्रतिपाद्यत्वेनानुगमादित्याहुः । न च संख्या-
 त्वेव्यभिचारः, तस्य पक्षसमत्वात् ।

[अ. टी.] परिमाणत्वं तद्वृत्तीत्युक्ते, तादृशतुलपरिमाणवृत्तित्वेन सिद्धसाधनता स्यात्-
 बुदासाय संयोगातिरिक्तेति । संयोगातिरिक्तवृत्तीत्युक्ते परिमाणवृत्तित्वेन सिद्धसाधनता
 स्यादत उक्तम् अनेकद्रव्येति । संयोगातिरिक्तानेकद्रव्यवृत्तीत्युक्तेऽपि बाधस्स्यात्,
 परिमाणस्य नियतैकद्रव्यवृत्तित्वादत आह-असमवायिकारणेति । संयोगातिरिक्तसम-
 वायिकारणवृत्तीत्युक्तेऽपि स्थूलतन्तुपरिमाणासमवायिकारणकपटपरिमाणवृत्तित्वेन सिद्ध-
 साधनता स्यादत उक्तम् अनेकद्रव्येति । परिमाणत्वं तावत्परिमाणमात्रवृत्ति । तत्रै-
 संयोगपरिमाणाभ्यामन्यदसमवायिकारणं, परिमाणस्यानेकद्रव्यद्वित्वादिसंख्यैव सङ्गच्छत
 इति परिमाणत्वेन तदारब्धपरिमाणवृत्तित्वेन संख्यासिद्धिः । सत्तायाः संयोगातिरिक्तानेक-
 द्रव्यविभागासमवायिकारणकविभागवृत्तेर्दृष्टान्तसिद्धिः । ननु अणुकपरिमाणासमवायिकारण-
 परमाणुर्गतद्वित्वसंख्येत्युक्तम् । तत्र परमाणुपरिमाणस्येव तद्रूपादिवत्कारणत्वसम्भवादत
 आह-परमाणुपरिमाणमिति । समवायिकारणं न भवतीति सिद्धसाधनता, व्यवहारे
 निमित्तकारणं भवतीति बाधस्स्यात्, तदुभयबुदासाय असमवायिकारणग्रहणम् । तन्त्वादि-
 परिमाणे व्यभिचारवारणाय नित्यपरिमाणत्वादित्युक्तम् । तुलपरिमाणस्य विजातीया-
 त्प्रशिक्षिलावयवसंयोगादुत्पत्तिदर्शनात्संख्यातोऽपि, समानपरिमाणतन्त्वोरन्ध्रे पटे परिमाण-
 विशेषोदयावलोकनाच्च । परमाणुद्वित्वस्य अणुकपरिमाणकारणत्वे सम्भवति, न नित्यपरि-
 माणकारणकत्वकल्पना युक्तेति भावः । एवं द्वित्वं प्रसाध्य तस्याबाधद्रव्यमौचित्वं साध-
 यति-द्वित्वमिति । रूपादौ व्यभिचारवारणाय अनेकपदम् । द्वित्वबाधेक्षाबुद्धिजन्य-
 मिति तस्य साधनमाह-द्वित्वसामान्यमिति । संयोगत्वादौ व्यभिचारवारणाय द्वित्व-
 जातित्वादित्युक्तम् । सत्ताया बुद्धिजन्य इच्छादौ वृत्तिरिति दृष्टान्तसिद्धिः ।

[वा. टी.] परिमाणत्वमिति । परिमाणासमवायिकारणकपरिमाणवृत्तित्वेन सिद्धसाधनताप-
 रिहाराय अनेकद्रव्येति । अनेक द्रव्यमाश्रयत्वेन यस्य तत्तथा तदसमवायिकारणं यस्येति विग्रहः ।
 प्रशिक्षिलावयवसंयोगासमवायिकारणकतुल्यपिण्डपरिमाणवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय संयोगा-
 तिरिक्तेति । रूपत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय परिमाणेति । संयोगातिरिक्तानेकद्रव्यपदाम्यां संयोग-

१ भावत्वादायिति अ. २ बुद्धिजत्वावृत्तीति छ. ३ तस्या बुदासायेति ज, ट. ४ मात्रेति
 नास्ति ज. ५ तत्रेति नास्ति झ पुस्तके. ६ वृत्तित्व इति ज, ट. ७ गता इति ज. ८ परमाण्विति
 नास्ति ट पुस्तके. ९ स्वादिति नास्ति ज, ट पुस्तकयो. १० कारणं न भवतीत्युक्तमिति ज, ट. ११ भार-
 वधपटे इति ज, ट. १२ परिमाणे कारणत्वमिति ट. १३ वृत्तित्वमिति झ. १४ बुदासायेति ट. -

परिमाणनिरासे परिशेषात् द्वित्वसमवायिकारणमिति द्वित्वसंख्यासिद्धिः । दृष्टान्ते च विभागज-
भागवृत्तित्वेन सिद्धिः । अनित्यपरिमाणेऽतिव्याप्तिपरिहाराय नित्येति । रूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय
अनेकेति । रूपत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय द्वित्वेति । दृष्टान्ते च सुखादिवृत्तित्वेन सिद्धिः ।
द्वित्वबुद्धिजत्वञ्चैवम् — आदाविन्द्रियसम्बन्धादेकमिति सामान्यतो बुद्धिर्भवति । तत्र एकमिदमिदमेक-
मित्येकत्वयुगलविषयपेक्षाबुद्धिर्भवति, ततो द्वित्वोत्पत्तिः । तत्र द्वे द्रव्ये समवायिकारणम्,
तदेकत्वेऽसमवायिकारणम्, अपेक्षाबुद्धिर्निमित्तकारणमिति । तदाहुः—

‘आदाविन्द्रियसन्निकर्षघटनादेकत्वसामान्यधी-

रेकत्वोभयगोचरा मतिरतो द्वित्वं ततो जायते ।

द्वित्वस्य प्रमितस्ततोऽपि परतो द्वित्वप्रमानन्तरं

द्वे द्रव्ये इति धीरियं निगदिता द्वित्वोदयप्रक्रिया’ ॥ इति ।

*

(संख्याया यावद्द्रव्यभावित्वे प्रमाणम्)

उत्तरत्र प्रमाणम्—संख्यात्वं यावद्द्रव्यभाविवृत्ति, द्वित्वत्रित्वजा-
तित्वात्, सत्तावदिति, तदेवैकत्वम् । संख्या गुणः, सामान्यैकाग्र्यत्वे
सति अकर्मत्वात्, रूपवदिति परपक्षव्युदासः । एवंभूतायास्संख्यायाः
पदार्थान्तरत्वे स्वीकृते रूपमपि पदार्थान्तरं भवेत् ।

[ब. टी.] संख्यात्वमिति । उद्देश्यसिद्धये यावदिति । यावद्वाश्रयभाविवृत्ती-
त्यर्थः । तेनाकाशादिसमानकालीनध्वंसप्रतियोगित्वेऽपि घटाद्येकत्वस्य न क्षतिः । संयो-
गत्वादौ व्यभिचारभङ्गाय द्वित्वत्रित्वेति । संयोगादि द्रव्यनाशाक्षयति । तस्याप्य-
यावद्द्रव्यभावित्वं यथा तथोक्तमधस्तात् । द्वित्वत्वे त्रित्वत्वे व्यभिचारवारणायैतदुभय-
वृत्तित्वमुक्तम् । एतदुभयान्यतरत्वादौ व्यभिचारवारणाय (जातिपदम् ?) । जातिपदार्थस्य
व्यर्थत्वमङ्गार्यं (?) । गुणत्वं साधयति—संख्येति । सामान्यादौ व्यभिचारवारणाय
सामान्येति । घटे व्यभिचारवारणाय एकेति । कर्मणि व्यभिचारवारणाय कर्मान्य-
त्वादिति । जातिमात्रसमवायित्वे सति कर्मभिन्नत्वादिति समुदायार्थः । धर्ममात्रस्य
समवायित्वं द्रव्येऽप्यस्ति । धर्ममात्रसम्बन्धित्वन्तवसिद्धमतो विशिष्टो हेतुः । विपक्षे
बाधकमाह—एवमिति ।

[अ. टी.] उत्तरत्र यावद्द्रव्यभावि संख्यायाम् । संयोगत्वादौ व्यभिचारव्युदासाय
द्वित्वत्रित्वजातित्वादित्युक्तम् । यावद्द्रव्यभाविनी च संख्या एकत्वं संज्ञेसाह—तदे-
वेति । संख्याया गुणत्वे सिद्धे सर्वमेतद्युक्तं स्यात्तदेव कुत इत्यत आह—संख्या गुण

१ वृत्तिरिति नास्ति घ पुस्तके. २ कर्मान्यावादिति धलदेवोद्धृतः पाठः. ३ संख्या गुण इत्यधिकं ग, घ.
पुस्तकयोः. ४ घाणायति च. ५ नाशायति च. ६ जातिपदार्थसामर्थ्यमात्रा इति घ. ७
मात्रसमवायित्वमिति च. ८ निरासायेति अ, ट. ९ संख्येति ट.

इति । अकर्मत्वादित्युक्ते सामान्यादौ द्रव्ये च व्यभिचारस्सादत उक्तम् सामान्यैका-
श्रयत्वे सतीति । एवं गुणत्वान्न संख्यायाः पदार्थान्तरत्वम्, अन्यथातिप्रसङ्गादि-
त्याह-एवंभूताया इति ।

[या. टी.] द्वित्वे त्रित्वे व्यभिचारनिरासाय द्वित्वत्रित्वे इति । संख्यायाः पदार्थान्तरत्वं
निषेधति-संख्या गुण इति । सामान्येऽतिव्याप्तिपरिहाराय सामान्याश्रय इति । द्रव्येऽति-
व्याप्तिपरिहाराय एकेति । कर्मण्यतिव्याप्तिपरिहाराय अकर्मत्वादिति । कर्मत्वानधिकरणत्वादि-
त्यर्थः । यस्तु गुणादिषु संख्याव्यवहारस्त एकाश्रयसमग्रायिनिमित्त इति ।

*

(परिमाणलक्षणं तद्विभागश्च)

गुणत्वावान्तरजात्या पृथक्त्वान्याप्रत्यक्षात्मगतयावद्द्रव्यभाविस्-
जातीयं परिमाणम् । आत्मा पृथक्त्वान्याप्रत्यक्षयावद्द्रव्यभाविगुण-
वान्, सर्वगतत्वात्, दिग्वत् । सर्वं द्रव्यं, परिमाणाधिकरणं, द्रव्यत्वा-
दात्मवदिति । तच्चतुर्विधम्-अणुमहद्दीर्घह्रस्वमेदात् । द्वाणुकेऽणुत्वमङ्गी-
कृत्य ह्रस्वत्वं निराकुर्वाणं प्रति इदमनुमानम्-द्वाणुकम्, अणुपरिमाणाति-
रिक्तपरिमाणाधिकरणं, कार्यद्रव्यत्वात्, पटवदिति । दीर्घत्वमनङ्गीकुर्वाणं
प्रति इदमनुमानम्-पटो महत्त्वव्यतिरिक्तपरिमाणाधिकरणं, कार्यद्रव्य-
त्वात्, द्वाणुकवदिति ।

[व. टी.] गुणत्वावान्तरेति । सजातीयत्वमात्रं घटादावतिप्रसङ्गि, अत उक्तं गुण-
त्वेति । गुणत्वजात्या गुणत्वावान्तरजात्या सजातीयं गुणमात्रं भवति, अत उक्तम् आत्म-
गतेति । सुखादौ गतमत आह-अप्रत्यक्षेति । पृथक्त्वे गतमत आह-पृथक्त्वान्येति ।
संयोगादौ गतमत आह-यावद्द्रव्यभावीति । आत्मैकत्वं तु प्रत्यक्षमेव । आत्मपदेनैव
शुक्त्वादिवारणम् । आत्मनि तादृशं गुणं साधयति-आत्मेति । पृथक्त्वेनार्थान्तरवारणाय
पृथक्त्वान्येति । एकत्वेनार्थान्तरवारणाय अप्रत्यक्षेति । संयोगादिनार्थान्तरवारणाय
यावद्द्रव्यभावीति । विशेषेणार्थान्तरमङ्गार्यं गुणेति । दिशि तादृशो गुण एकत्वम् ।
आत्मैकत्वाप्रत्यक्षत्वपक्षे आत्मैकत्वान्येति विशेषणीयम् । आत्मनि प्रसाध्यान्यत्र तं गुणं
साधयति-सर्वमिति । आत्मातिरिक्तं सर्वमित्यर्थः । गुणे बाधवारणाय द्रव्यमिति ।
आत्मनि सिद्धसाधनवारणाय आत्मान्यत्वम् । उद्देश्यसिद्धये सर्वमिति । यन्मतेनां-
शतः सिद्धसाधनं दोषस्तन्मते आत्मातिरिक्तं न देयम् । अधिकरणत्वं सिद्धमेवातः
परिमाणेति । द्वाणुकमिति । परमाणानर्थान्तरमङ्गाय द्वीति । अणुत्वेनार्थान्तर-

१ माधये इति ट. २ एकपृथक्त्वेति सु. ३ घट इति ख. ४ उक्तमिति नास्ति ॥ पुस्तके.
५ गुणत्वसजातीयरूपाद्वागतिप्रसङ्गमङ्गाय भवान्तरेति । गुणमात्रमिति घ. ६ पक्षिरियं शुद्धता च पुस्तके.
७ वारणयेति घ. ८ प्रत्यक्षाधयक इति छ. ९ आत्मैकान्वेति घ. १० रिक्तत्वं वेति घ.

वारणाय अतिरिक्तान्तम् । बाधवारणाय अपि वति । अणुद्रव्येऽतिरिक्तमणुपरिमाणं भवत्येवेत्यत उक्तम् अतिरिक्तविशेषणम् परिमाणेति । रूपादिनार्थान्तरमङ्गापातिरिक्तत्वविशेष्यं परिमाणेति । यन्मते परमाणोर्न ह्रस्वं तन्मते व्यभिचारमङ्गाप्यकार्येति । द्रव्येतरसिन् व्यभिचारमङ्गाप्यद्रव्यत्वादिति । घट इति । कुतश्चिदतिरिक्तं परिमाणं महच्चमप्यत उक्तम् महत्त्वेति । महत्त्वेनार्थान्तरवारणाय व्यतिरिक्तान्तम् । रूपादिनार्थान्तरवारणाय परिमाणेति । यन्मते आकाशे महत्त्वातिरिक्तं परिमाणं नास्ति तन्मते कार्येति । सन्दिग्धव्यभिचारवारणाय वा तत् । रूपादौ व्यभिचारवारणाय त्वादन्तम् ।

[अ. टी.] सजातीयपरिमाणमित्युक्ते द्रव्यादौ व्यभिचारस्सादतो गुणत्वावान्तरजात्येत्युक्तम् । एवमपि संयोगादौ व्यभिचारोऽर्त उक्तम् यावद्द्रव्यभावीति । घटरूपादिसजातीयरूपान्तरव्यवच्छेदार्थम् आत्मगतेति पदम् । तथाप्यात्मगतैकत्वे व्यभिचारोऽर्तः अप्रत्यक्षपदम् । तर्हि तद्वत्पृथक्त्वेऽतिव्याप्तिः स्यादतः पृथक्त्वान्येत्युक्तम् । पृथक्त्वान्याप्रत्यक्षात्मगतयावद्द्रव्यभावि सजातीयं परिमाणमित्युक्तेऽपि गुणत्वेनाभिमततात्मगतपरिमाणेन सह सत्तया सजातीयद्रव्यादौ व्यभिचारस्सादतो गुणत्वजात्येत्युक्तम् । गुणत्वजात्या सजातीयव्यवच्छेदार्थम् अवान्तरपदम् । आत्मनि तादृगुणसिद्धौ तत्सजातीयं परिमाणं सिध्येत् । तत्सिद्धिरेव कुत इत्यत आह—आत्मेति । आत्मनो बुद्ध्यादिगुणवत्त्वस्य सिद्धत्वात् यावद्द्रव्यभाविपदम् । एकत्वैकपृथक्त्वान्यां सिद्धसाधनताव्युदासाय पृथक्त्वान्याप्रत्यक्षेत्युक्तम् । दिशि यथोक्तो गुण एकत्वम् । आत्मनि पृथक्त्वान्योऽप्रत्यक्षो यावद्द्रव्यभावी गुणः परिमाणमेव । इदानीं गुणत्वावान्तरजात्या तत्सजातीयमन्यत्रापि साधयति—सर्वमिति । आत्मातिरिक्तं सर्वमित्यर्थः । एकदेशिमतमपाकरोति—द्व्यणुक इत्यादिना । परमाणुषु मनसि च व्यभिचारवारणाय कार्यस्त्वविशेषणम् । औकाशदिषु महत्त्वातिरिक्तपरिमाणाभावात् कार्येति पदम् । कर्मादौ व्यभिचारवारणाय द्रव्यपदम् ।

[बा. टी.] गुणत्वेति । रूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय आत्मेति । आत्मैकत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय अप्रत्यक्षेति । आत्मैकपृथक्त्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय पृथक्त्वान्येति । संयोगेऽतिव्याप्तिपरिहाराय यावद्द्रव्येति । घटादिपरिमाणेऽव्याप्तिनिरासय सजातीयेति । सजातीयासजातीये घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय अवान्तरेति । रूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय गुणत्वेति । ननु घटादिस्वरूपस्यैव परिमाणत्वादसम्भविदं लक्षणमिति चेन्न; स्वरूपोपलब्ध्यापि हस्तवितस्त्यादिविशेषानुपलम्भात् । अतोऽतिरिक्तं बाध्यम् । अस्ति च तत्त्वे प्रमाणमित्याह—आत्मेति । संयोगेन सिद्धसाधनतापरि-

१ वारणयेति च. २ द्रव्यत्वमिति छ. ३, ४ वारणयेति च. ५ घट इति नास्ति च पुस्तके. ६ कुतश्चिदानीति च. ७ मङ्गायेति च. ८ स्यादन्त इति छ. ९ गतपदमिति अ, ट. १० आत्मैकत्व इति अ. ११ स्यादतोऽप्रत्यक्षेत्युक्तमिति अ, ट. १२ अतिव्याप्तिः, तय इति अ, अतिव्याप्तिः तद्वित्तोपापं पठतेति ट. १३ हृदयत्वेनेति अ, ट. १४ रूपादिव्येति अ, ट. १५ वारणाचमिति अ, ट. १६ कार्य-द्रव्यत्वादित्युक्तमिति अ, कार्येत्युक्तमिति ट. १७ पक्षिरिव नास्ति ह, ट पुस्तकयोः.

हाराय यावद्द्रव्येति । संख्यया सिद्धसाधनतापरिहाराय अप्रत्यक्षेति । पृथक्त्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय पृथक्त्वान्येति । दृष्टान्ते च संख्यया सिद्धिः । पक्षे च तस्या अप्रत्यक्षपदेन निरासादनुपपत्त्या परिमाणसिद्धिः । ध्येणुकमिति । सिद्धसाधनतापरिहाराय अणुपरिमाणेति । परमाणौ व्यभिचारपरिहाराय कार्येति ।

(पृथक्त्वलक्षणं तद्विभागश्च)

संख्यातिरिक्तदिकालगतात्यन्तसजातीयं पृथक्त्वम् । तद्वेधा-अयावद्द्रव्यभावितावद्द्रव्यभाविभेदात् । तत्र प्रमाणम्-कालः संख्यातिरिक्तदिग्गतगुणवान्, द्रव्यत्वात्, पटवदिति अयावद्द्रव्यभाविपृथक्त्वसिद्धिः । पृथक्त्वसामान्यम्, अस्मदादिबुद्धिजवृत्ति, पृथक्त्वजातित्वात्, सत्तावदिति बुद्धिजत्वं सिद्धम् । तत्सामान्यं कारणगुणपूर्ववृत्ति, पृथक्त्वजातित्वात्, सत्तावदिति । तत्सामान्यं यावद्द्रव्यभाविवृत्ति, द्विपृथक्त्वत्रिपृथक्त्वजातित्वात्, सत्तावदित्येकपृथक्त्वसिद्धिः ।

[व. टी.] संख्यातिरिक्तेति । घटादावतिव्याप्तिवारणाय अत्यन्तेति । गुणत्वान्तरजात्येत्यर्थः । संख्यायामतिव्याप्तिवारणाय संख्यातिरिक्तेति । रूपादावतिव्याप्तिं वारयितुं दिकालगतेति । दिकालमात्रगतत्वं तदर्थः । तेन न संयोगादावतिव्याप्तिः । दिक्पक्षेणैकं लक्षणम्, कालपक्षेणैकं लक्षणम् । परिमाणातिरिक्तत्वंमपि विशेषणं देयम् । यद्वा दिकालयोरुभयोर्गतत्वं विवक्षितम्, तेन परिमाणव्यवच्छेदः । दिकालगतद्वित्वसजातीयसंख्यायामतिव्याप्तिवारणाय अतिरिक्तान्तम् । काल इति । परिमाणेनार्थान्तरवारणाय दिग्गतेति । ज्ञात्यर्थान्तरवारणाय गुणेति । द्वित्वादिनार्थान्तरवारणाय अतिरिक्तान्तम् । पृथक्त्वेति । ईश्वरबुद्धिजवृत्तित्वेनार्थान्तरमङ्गाय अस्मदादीति । अदृष्टद्वारासदादिबुद्धिजवृत्तित्वेनार्थान्तरवारणायादृष्टाद्वारकत्वं विशेषणमूहम् । इदं विशेषणं द्वित्वादिसंख्येऽपि बोध्यम् । न चैकपृथक्त्वे व्यभिचारः, पृथक्त्वाव्याप्यपृथक्त्ववृत्तिजातित्वस्य हेतुत्वात् । एकपृथक्त्वं साधयति-तत्सामान्यमिति । पृथक्त्वमित्यर्थः । स्वसमवायिकारणनिष्ठपूर्ववृत्तीत्यर्थः । यद्यपि पृथक्त्वजन्यमप्येकपृथक्त्वं सिध्यत्यु इत्यभिप्रायेणेदंसाध्यनिर्देशः । न च कालपृथक्त्वघटपृथक्त्वाभ्यां जनितद्विपृथक्त्ववृत्तित्वेनार्थान्तरम्, कारणगुणपूर्वकस्याव्यासजन्यवृत्तित्वेनेति विशेषणात् । न वा व्यासजन्यवृत्तित्वमेव साध्यतामिति वाच्यम्, उद्देश्यसिध्यर्थं विशेषणस्योपात्तत्वात् । अत एवापेक्षाबुद्धिपूर्वकवृत्तित्वेनादृष्टपूर्वकवृत्तित्वेन चार्थान्तरम् । मनस्त्वादौ व्यभिचार-

१ घटवदिति क. २ इव आरम्य जातित्वादित्यन्तो भागो नास्ति क पुस्तके. ३ द्विपृथक्त्वत्रिपृथक्त्ववदिति नास्ति ग, घ पुस्तकयोः. ४ मङ्गायेति च. ५, ६ प्रसेवेणेति क. ७ अतिरिक्तमपीति छ. ८ पृथक्त्वावृत्तीति छ. ९ जत्वमपीति छ. १० वृत्तित्वेनेति नास्ति छ. ११ साध्यमिति च.

वारणाय पृथक्त्वयेति । घटपटनिप्रतिपृथक्त्वाकाशान्यतरत्वे व्यभिचारवारणाय जाति-
त्वादिति । पृथक्त्वसमवेतधर्मत्वादित्यर्थः । न च द्विपृथक्त्वे व्यभिचारः, गुणत्वव्या-
प्याव्याप्यपृथक्त्ववृत्तिजातेरुक्तत्वात् । सत्तायां तादृश्यरूपादिवृत्तित्वेन साध्यसिद्धिः ।
द्विपृथक्त्वत्रिपृथक्त्वयेति विशेषणे द्विपृथक्त्वत्रिपृथक्त्वयोर्गर्भमिचारवारणाप्येतदुभयपृत्ति-
परं । द्विपृथक्त्वत्रिपृथक्त्वान्यतरत्वे व्यभिचारवारणाय जातित्वमुक्तम् ।

[अ. टी.] रूपादिसजातीये व्यभिचारवारणार्थं दिग्गतेत्युक्तम् । तथापि दिक्कालयोरेकै-
कवृत्तिपरिमाणसजातीयपरिमाणोऽतिव्याप्तिरुक्तम् दिक्कालगतेति । उभयगतत्व-
मेकव्यक्तैर्विवक्षितम्, तर्हि दिक्कालगतद्वित्वसंख्यया सजातीयसंख्यायामतिव्याप्तिरुक्तम्
संख्यातिरिक्तेति । अत्यन्तपदेन सत्तागुणत्वान्यां सजातीयद्रव्यगुणैर्कर्मव्यवच्छेदः ।
कालो गुणवानित्युक्ते परिमाणवत्त्वेन सिद्धसाधनता, अत उक्तं दिग्गतेति । द्वित्वसंख्या
तथा भवतीति तद्वत्त्वेनोक्तदोषान्वुदासार्थं संख्यातिरिक्तपदम् । अयावद्द्रव्यमाविद्धि-
पृथक्त्वसिद्धिरित्यर्थः । अस्याप्यपेक्षाबुद्धिजन्यत्वं द्वित्ववदभिप्रेतं, तत्साधयति—पृथक्त्व-
सामान्यमिति । ईश्वरबुद्धिजवृत्तित्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थम् अस्मदादिपदम् ।
घटादिगतद्विपृथक्त्वसास्मदादिबुद्धिजन्यमपि द्वित्ववदनेन सिद्धम् । इदानीं यावद्द्रव्यमावि-
पृथक्त्वं साधयति—तत्सामान्यमिति । अपेक्षाबुद्धिलक्षणगुणपूर्वद्विपृथक्त्वादिवृत्तित्वेन
सिद्धसाधनताव्युदासार्थं कारणपदम् । कारणञ्च समवायि विवक्षितम् । नित्यगतैकपृथ-
क्त्वस्य कारणगुणपूर्वकत्वाभावेऽपि न बाधः, घटादिगतैकपृथक्त्वसाध विवक्षितत्वात् ।

[वा. टी.] संख्येति । कालगतं पृथक्त्वमित्युक्ते कालघटसंयोगोऽतिव्याप्तिरुक्तार्थं दिगिति ।
दिग्वृत्तित्वे सति कालवृत्तित्वार्थः । द्वित्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय संख्यातिरिक्तेति । घटादिपृथक्त्वेऽ-
व्याप्तिनिरासय सजातीयेति । घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय अत्यन्तेति । गुणत्वान्तरजात्यर्थः ।
काल इति । द्वित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय संख्यातिरिक्तेति । दृष्टान्ते संयोगेन सिद्धिः । पक्षे
चाभिमुखेन तस्यानुपपत्तौ द्विपृथक्त्वसिद्धिः । ईश्वरबुद्धिजन्यवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय
अस्मदादीति । रूपत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय पृथक्त्वयेति । दृष्टान्ते द्विसादिवृत्तित्वेन सिद्धिः ।
तत्सामान्यमिति । अपेक्षाबुद्धिगुणपूर्वद्विपृथक्त्ववृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय कारणेति ।
कारणञ्च समवायिकारणम्, तस्य गुण आत्मकत्वेन यस्य तत्त्वयेति ।

*

(संयोगलक्षणं, तत्र प्रमाणम्, तद्विभागश्च)

गुणत्वावान्तरजात्या द्रव्यासमवायिकारणसजातीयः संयोगः ।
तत्र प्रमाणम्—संयोगपदं सद्भाष्यम्, याचकत्वात्, स्वलक्षणपदवदिति

१ शिवासायेति च. २ द्विपृथक्त्वत्रिपृथक्त्वयेति । पृथक्त्वान्यतरत्वे व्यभिचारवारणाय जातिव-
मुक्तम् । द्विपृथक्त्वे व्यभिचारवारणाय त्रिपृथक्त्वयेति । त्रिपृथक्त्वे व्यभिचारवारणाय द्विपृथक्त्वेन इति च.
३ दिक्कालेति ज, ड. ४ सत्त्वयेति ड. ५ कर्मविशेषेति ज, ड. ६ ईश्वरेत्यादयः अपेक्षेयान्ये भागे ज्ञाति
७ पुच्छे.

परिशेषात् 'संयोगसिद्धिः । स त्रिविधः-अन्यतरकर्मजोभयकर्मजसंयोग-जमेदात् । तत्रोभयं प्रसिद्धम् । तृतीये प्रमाणम्-संयोगत्वं संयोगसम-वायिकारणवृत्तिः, संयोगवृत्तिजातित्वात्, सत्तावदिति । विप्रतिपन्ना आत्मादयः, आकाशेन न संयुज्यन्ते, सर्वगतत्वात्, आकाशवदिति अजसंयोगसिद्धिः । अयावद्भव्यभावित्वं तस्य प्रसिद्धम् ।

[व. टी.] गुणत्वावान्तरेति । संयोगरूपान्यतरत्वादिना संयोगसजातीयरूपादावति-व्याप्तिनिरासाय जातित्वमुक्तम् । रूपासमवायिकारणरूपसजातीयेऽतिव्याप्तिवारणाय द्रव्येति । तन्निमित्तकारणासजातीये ज्ञानादावतिव्याप्तिवारणाय असमवायीति । संयोगपदमिति । घटादिपदेऽर्थान्तरवारणाय संयोगेति । संयोगरूपेऽर्थे बाधवारणाय पदमिति । संयोगे त्वस्याखण्डत्वात्पदत्वम् । यद्वा तदन्तर्गता प्रकृतिः पक्षः । सद्रस्तु वाच्यं यस्येति साध्यार्थः । विभागाभावादिवाचकत्वेनार्थान्तरवारणाय सदिति । यद्वा सत्ताजातिरहित (१) सिध्यर्थान्तरवारणाय सदिति । न चाभावपदे व्यभिचारः, उभयवादिसिद्धासद्वाचकभिन्नवाचकत्वस्य हेतुत्वात् । यद्वा वाचकत्वमात्रं साध्यम्, सत्पदन्तु पक्षधर्मतावलम्ब्यार्थकथनाय । खलक्षणपदेन घटादिपदमुच्यते । परिशेषा-दिति । अन्यद्वाच्यं न सम्भवति, यद्वाच्यं संयोग इत्यर्थः । अन्ये तु स्वस्य संयोग-पदस्य यल्लक्षणं यत्पदं इदं संयोगपदमिति वाचकशब्दः तद्वदित्यर्थ इत्याहुः । संयोग-त्वमिति । सकारणवृत्तित्वेऽर्थान्तरम्, असमवायिकारणवृत्तित्वेऽपि तथैत्यत आह-संयोगेति । संयोगकारणकवृत्तित्वसाधने दिक्संयोगादृष्टवदात्मसंयोगजन्यसंयोगवृत्ति-त्वेनार्थान्तरमतः असमवायीति । स्नेहत्वे व्यभिचारभङ्गाय संयोगेति । अन्यतर-कर्मजन्यतावच्छेदकजाती व्यभिचारवारणाय जातिपदं गुणत्वव्याप्याप्याप्यजातिपरम् । घटादिवृत्तित्वेन सत्तायां साध्यसिद्धिः । संयोगसमवेतत्वादिति क्वचित्पाठस्तमीचीन एव, अन्यथा जातिपदार्थान्तर्गतानेरुवृत्तित्वादिभागस्य वैयर्थ्यापत्तेः । नन्वजसंयोगस्य सत्त्वात् कथं संयोगत्रैविध्यमत आह-विप्रतिपन्ना इति । आकाशनिरूपितसंयोगवन्तो न भवन्तीति साध्यार्थः । घटादिसंयोगवत्त्वेन बाधवारणाय आकाशेति । आकाशनिरूपितसुखादिमत्त्वेन बाधवारणाय संयोगेति । (न संयुज्यन्त इति ?) आकाशजनितज्ञानजन्यं सुखम्, आकाशजनितं द्वित्वमात्मनीति प्रतीतावाकाशस्य निरू-पकत्वात् । वस्तुतस्तु नित्यसंयोगसिद्धौ तुल्यन्यायेन विभागस्यापि तादृशस्य सिद्धिप्र-सक्त्या एकदा विरुद्धद्वयसमावेशापचिरेव दोषः ।

१ पदमिदं नास्ति क, ग, घ पुस्तकेषु. २ एतदनन्तरम्-सत्तायां गुणत्वेन च सजातीयरूपादावति-व्याप्तिवारणाय गुणत्वावान्तरेति इति पाठश्च पुनरेव. ३ कारणेनेति छ. ४ विभागो भावादिरपीति छ. ५ संयोगस्येति च. ६ संख्यानेति छ. ७ वृत्तित्वेनेति छ. ८ कारणेनेति इति. ९ धारणायेति च. १० वृत्तित्वेन नेति छ. ११ संयोगसत्तावदिति च. १२ संयोगकत्वे बाधेति छ. १३ इति कारणं विभा-गनिरूपणमभातिपर्यन्तं वा पुनरेव वस्तुतस्तुः शुद्धिमात्रं वत्तेने । च पुनरेव सत्यप्यनुद्धिबाह्वये कथ-ञ्चिदप्यस्तस्यैवेति वा.

[अ. टी.] कारणसजातीयस्संयोग इत्युक्तौ^१ समवायिनिमित्तकारणसजातीये द्रव्यादौ व्यभिचारस्सादत उक्तम् असमवायीति । तर्हि रूपाद्यसमवायिकारणसजातीयरूपादौ व्यभिचारस्सादतो द्रव्यपदम् । तथापि सत्तादिना द्रव्यासमवायिकारणसजातीयद्रव्यादोवेवातिव्याप्तिस्ततो गुणत्वावान्तरजात्येत्युक्तम् । सद्रस्तु वाच्यं यस्य तत् सद्राच्यम् । स्वशब्देन संयोगपदं तल्लक्षणमिदं संयोगपदमिति वाचकश्चन्द्रो वाग्यान्तरासम्भवात्परिशेषात्संयोग एव वाच्य इत्यर्थः । पक्षिणः स्थाणुसंयोगोऽन्यतरकर्मजः, महमेपादेः परस्परसंयोग उभयकर्मजः प्रत्यक्षसिद्धः । संयोगत्वं कर्मासमवायिकारणकसंयोगवृत्तिरिति सिद्धमेतत् उक्तम् संयोगेति । समवेतत्वं रूपादौ व्यभिचरतीति संयोगसमवेतत्वादित्युक्तम् । संयोगजातित्वादिति पाठेऽपि तत्र च आत्मत्वादौ च जातित्वं व्यभिचरतीति संयोगपदम् । जलाणुरूपादिवृत्तिसत्तायाः संयोगासमवायिकारणकद्रव्यवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धिः । अजसंयोगोऽपि कैश्चिद्व्यते, ततः कथं त्रिविध एव संयोग इत्यत आह—विप्रतिपन्ना इति । आत्मादयो घटादिभिः संयुज्यन्ते इति धाध्वुदासार्य आकाशेनेत्युक्तम् । संयोगध्यायावद्रव्यमावीष्ट इति तत्र प्रमाणमाह—अयायद्रव्यभोवीति ।

[ब. टी.] गुणत्वेति । कर्मण्यतिव्याप्तिपरिहाराय द्रव्येति । घटपटसंयोगोऽव्याप्तिनिरासाय सजातीयेति । घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय अवान्तरेति । रूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय गुणत्वेति । सत् विद्यमानं वाच्यं यस्मैति विग्रहः । स्वलक्षणपदवत् स्वरूपपदवदित्यर्थः । पर्यवसितवाच्ये रूपादीनामसम्भवादिरूपेण संयुक्तमिति व्यवहारदर्शनात् संयोग एवास्य वाच्यमित्याह—इतीति । संयोगत्वमिति कर्मासमवायिकारणसंयोगवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय संयोगेति । रूपत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय संयोगेति । नन्वनुपपन्नो विभागः, चतुर्थस्य नित्यसंयोगस्य सम्भवादत आह—विप्रतिपन्ना इति । बाधरागाय आकाशेति । न चाकाशे आकाशनिरूप्यभेदादित्यनुपाधिः, व्यतिरेके क्रियाश्वस्योपाधिच्चादिति ।

*

(विभागलक्षणं, तत्र प्रमाणम्, तद्विभागश्च)

संयोगविरोधी गुणो विभागः । तत्र प्रमाणम्—आकाशः संयोगातिरिक्तकर्मजगुणाधारः, द्रव्यत्वात्, शरीरवदिति । विप्रतिपन्नं सर्वं द्रव्यं विभागवत्, द्रव्यत्वात्, आकाशवत् । स द्विविधः—कर्मजविभागजभेदात् । आद्यो द्वेधा—अन्यतरकर्मजोभयकर्मजभेदात् । तत्र प्रमाणम्—विभागत्वम् एकानेककर्मासमवायिकारणवृत्ति विभागजातित्वात् सत्तावदिति कर्मजविभागसिद्धिः । विभागत्वम् अकर्मजवृत्ति, विभागवृत्तिजातित्वात्

१ उक्तं इति अ, ट. २ व्यभिचारलज्ज इति अ, ट. ३ सत्त्वे इति ४ संयोगत्रयमिति श. ५ तत् इति अ, ट. ६ संयोगपदमिति झ. ७ पटादिमिति ट. ८ ध्वुदासार्यमिति अ, ट. ९ भारीति नास्ति अ, ट पुस्तकयोः. १० आकाशमिति क, ख, घ. ११ कर्मत्वाभ्य सत्तापरिग्रहं नास्ति क, घ पुस्तकयोः.

सत्तावदिति । विभागजविभागसिद्धिस्तु परिशेषात् । विभागत्वं विभागासमवायिकारणवृत्ति, विभागवृत्तिजातित्वात्, सत्तावदिति मानम् ।

[व. टी.] संयोगेति । ध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिमद्भावाच्चिरोध्यन्तम् । विभागविरोधिनि संयोगेऽतिव्याप्तिवारणाय संयोगेति । अदृष्टादावतिव्याप्तिवारणायसाधारणविरोधित्वमुक्तम् । ननु यस्मिन् काले विभागस्तस्मिन् काले संयोगः, एवं दैशिकमपि सामानाधिकरण्यात् विनश्यदवस्थसंयोगेन विभागस्यास्तीति चेत्-न; निरर्थक्यनिवर्तकभावलक्षणविरोधस्योक्तत्वात् । न च गुणपदवैयर्थ्यम्, संयोगध्वंसस्य संयोगनिवृत्तिरूपतया संयोगनिवर्तकत्वाभावादेवातिप्रसङ्गाभावादिति वाच्यम् । गुणपदस्यासाधारणगुणपरतयादृष्टोदावतिव्याप्तिवारकत्वात् । यद्वा विभागत्वजातौ लक्षणं बोध्यम् । आकाश इति । संयोगेनार्थान्तरवारणाय संयोगातिरिक्तेति । शब्दादिनार्थान्तरवारणाय कर्मजेति । अदृष्टद्वारा तीर्थगमनादिजनितशब्दत्वेनार्थान्तरवारणायदृष्टाद्वारकत्वं विशेषणं बोध्यम् । गुणत्वेन विभागसिध्यर्थं गुणपदम् । शरीरे कर्मजगुणो वेगः, कालादीनां पक्षंसमत्वात् । बिप्रतिपन्नमिति । आकाशातिरिक्तमित्यर्थः । विभागत्वमिति । विभागजविभागवृत्तित्वेनार्थान्तरवारणाय कर्मेति । उद्देश्यसिध्यर्थम् एकानेकेति । यदप्युभयकर्मजन्यं तदप्येककर्मजन्यमित्यर्थान्तरमिति चेत्-न; एकमात्रेत्युक्ते यदप्येकेन कर्मणा जन्यं तदपि भूतकर्मणा जन्यत एवेति बाध इति तद्वारणाय उद्देश्यसिद्धये वा समवायीति । तादृशसंयोगवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धिः । विभागजन्यतावच्छेदकजातौ व्यभिचारवारणाय गुणत्वव्याप्यजात्यव्याप्यत्वं विशेषणं बोध्यम् । एवमुत्तरत्रापि क्रियाजन्यविभागवृत्तिजातौ व्यभिचारवारणाय गुणत्वव्याप्यजात्यव्याप्यत्वं विशेषणं बोध्यम् । विभागत्वमित्यपि क्रियासमवायिकारणकभिन्नवृत्तित्वं साध्यम् । तर्ह्यन्यदेवासमवायिकारणमित्यत आह—विभागजविभागसिद्धिस्त्विति । परिशेषात् कर्माजन्यविभागस्य विभागातिरिक्तासमवायिकारणाजन्यत्वादित्यर्थः । अन्यथा कथं वंशदलयोः परस्परविभागे तयोराकाशेन विभागस्यात् । क्रियाया वंशदलद्वयविभागजननेनैवोपक्षीणत्वात् । कर्मणः सजातीयकार्यजनने विरम्यव्यापाराभावाच्च विशेषणतोऽनुमानमाह—विभागत्वमिति । कर्मजन्यतावच्छेदकभिन्नविभागवृत्तिजातित्वादित्यर्थः । विभागजशब्दवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धिः । असमवायिपदमुद्देश्यसिद्धये । केचित्तु धनुर्गुणविभागजन्यवाणकर्मणि सत्तासत्त्वात् दृष्टान्तसिद्धिरित्याहुः, तन्न; कर्मणो विभागासमवायिकारणकत्वस्य राद्धान्तविरुद्धत्वात्, अयौक्तिकत्वाच्चेति दिक् । किन्तु नोदना तत्रासमवायिकारणमिति पर्यालोचनीयम् । अपरविशेषणप्रयोजनं स्फुटम् ।

१ तु इति नास्ति क, ग, घ, मु पुस्तकेषु २ यानुमानमिति क, प्रमाणमिति मु. ३ असाधारणायसाधारणेति च. ४ निरर्थक्येति नास्ति घ पुस्तके. ५ अदृष्टादिविभागोदाविति च. ६ संयोगेनारम्यपदिकृत्यं नास्ति छ पुस्तके. ७ समतेति च. ८ पूर्वकर्मणेति च. ९ विभागमात्रेति च. १०, ११ पदमिदं नास्ति च पुस्तके. १२ सत्तावदिति नास्ति च पुस्तके.

[अ. टी.] रूपादिगुणव्युदासार्थं संयोगविरोधीत्युक्तम् । संयोगप्रध्वंसादिव्युदासाय गुणपदम् । कर्मजपदं संयोगजसंयोगाधारत्वेन सिद्धसाधनतानिरासार्थम् । शरीरस्य संयोगातिरिक्तः कर्मजो गुणो वेगः । कर्म असमवायिकारणं यस्येति विग्रहः । सिद्धसाधनताव्यवच्छेदार्थम् एकानेकपदम् । रूपत्वादौ व्यभिचारवारणाय विभागजातित्वादित्युक्तम् । कथं तर्हि विभागजविभागसिद्धिरित्यत आह—विभागजेति । वंशदलयोर्मयो विभागे सति नमसापि तयोर्विभागो जायते, स न वंशदलक्रियाजन्यः, तस्या दलविभागजननेनैवोपक्षीणत्वात्, परिशेषाद्विभागजन्य इत्यर्थः । साक्षाद्यमाणमाह—विभागत्वमिति । धनुर्गुणविभागजन्यं बाणकर्मणि सत्तार्वातिदृष्टान्तलाभः ।

[वा. टी.] संयोगेति । रूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय विरोधीति । सुखेऽतिव्याप्तिपरिहाराय संयोगेति । संयोगाभावेऽतिव्याप्तिपरिहाराय गुण इति । यत्तु संयोगध्वंस एव विभाग इति मत्तम् तन्न; आश्रयध्वंसात्संयोगध्वंसे विभागबुध्यमानाद्वर्तमानयोस्तस्ययोगनाशस्य विभागत्वे सामर्थ्यत्वेन व्यवहारबाधप्रसङ्गात् । अतोऽतिरिक्त एव विभाग इत्याशयर्वास्तत्र प्रमाणमाह—आकाश इति । द्रव्यत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय गुण इति । संख्यया सिद्धसाधनतापरिहाराय कर्मजेति । संयोगेन सिद्धसाधनतापरिहाराय संयोगातिरिक्तेति । संयोगातिरिक्तकर्मजत्रियाधारत्वसाधने बाधः, तन्निरासाय गुणाधार इति । दृष्टान्ते वेगेन सिद्धिः । विभागत्वमिति । विभागासमवायिकारणकविभागवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय एकेति । एकगतमनेरुगतं कर्म असमवायिकारणं यस्येति । यद्वा एककर्मासमवायिकारणवृत्तिः । अनेन कर्मासमवायिकारणवृत्तिरिति साध्यभेदेन प्रमाणद्वयं द्रष्टव्यम् । दृष्टान्ते च संयोगादिवृत्तित्वेन सिद्धिः । विभागत्वमिति । कर्मजवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय प्रतिज्ञायाम् अकारः । संयोगत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय विभागेति । रूपादिवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धिः । साक्षाद्यमाणे च विभागासमवायिकारणशब्दवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धिः ।

*

(परत्वापरत्वयोर्लक्षणं प्रमाणञ्च)

परव्यवहारे यद्विशेषणतया निमित्तं तत्परत्वम् । अपरव्यवहारे यद्विशेषणतया निमित्तं तदपरत्वम् । तत्र प्रमाणम्—घटोऽस्मदादिवुद्धिजैकद्रव्यजातीयवान्, अनेकविशेषगुणसमवायिकारणत्वात्, आत्मयत् । विप्रतिपन्नं परत्यादिसंयोगासमवायिकारणकम्, अस्मदादिवुद्धिजैकद्रव्यत्वात्, सुखादिवदिति परिशेषात् कालपिण्डसंयोगासमवायिकारणत्वं सिद्धमनयोः ।

१ व्यवच्छेदार्थमिति ज, ट. २ संयोगगुणेति ट. ३ सतीति नानि ज, ट पुलकपोः. ४ नम-
सोऽपीति इ. ५ परिशेषोऽप्येति इ. ६ वृत्तेरिति ज, ट. ७ परिशेषादित्युद्धाराण्योद्धतः पाठः.
प्रमाण ७ ८

[च. टी.] परेति । ईश्वरज्ञानादावतिव्याप्तिमद्भाय विशेषणतयेति । व्यवहार्यसम-
वायितयेत्यर्थः । द्रव्यादिव्यवहारकारणे द्वित्वादावतिव्याप्तिवारणाय परेति । परं प्रति परत्वं
न कारणम् इत्यसम्भववारणाय व्यवहार इति । व्यवहारोऽत्र ज्ञानम् । शब्दादिप्रयो-
गरूपस्य तस्य विषयाजन्यत्वात् । यद्वा निमित्तं प्रयोजकम् । अत एव नातीन्द्रियपरत्वा-
दावव्याप्तिः । यद्वा विशेषणतयाऽसाधारणतयेत्यर्थः । घट इति । रूपादिनार्थान्तर-
वारणाय बुद्धिजेति । ईश्वरबुद्धिजेन तेनैवार्थान्तरवारणाय अस्मदादीति । द्वित्वा-
दिनार्थान्तरवारणाय एकद्रव्येति । ईश्वरबुद्धिजनितपरत्वादिकसाध्ये विषये वेशयितुं(?)
जातीयेति । काले व्यभिचारवारणाय विशेषेति । आकाशे तद्वारणाय अनेकेति ।
कालादौ व्यभिचारवारणाय समवायीति । आत्मन्यस्मदादिवुद्धिजन्यसुखादिमत्त्वेन
साध्यसिद्धिः । दिकालजैत्यत्वेऽनुमानमाह-विप्रतिपन्नमिति । अदृष्टवदात्मसंयोगे-
नार्थान्तरवारणाय असमवायीति । यथादृष्टवदात्मसंयोगो नासमवायिकारणं तथा
प्रपञ्चितमन्यत्र । उद्देश्यसिद्धये संयोगेति । विप्रतिपन्नत्वं जातिविशेषवैशिष्ट्यम्, न
तु दिक्कृतभिन्नत्वम्, प्रतियोग्यप्रसिद्धेः । परिमाणे व्यभिचारवारणाय बुद्धिजेति ।
तथापि तत्रैव व्यभिचारवारणाय अस्मदादीति । यद्यप्यदृष्टद्वारास्मदादिवुद्धिजन्यमस्ति,
तथापि अदृष्टाद्वारेति विशेषणीयम् । द्वित्वादौ व्यभिचारवारणाय एकद्रव्येति ।
एकमात्रनिष्ठत्वादित्यर्थः । दिकालयोस्तादृशासमवायिकारणकत्वेन करणत्वं सिद्धमित्य-
भिप्रायेणाह-परिशेषादिति । यथाकाशादिसंयोगो नासमवायिकारणं परत्वापरत्वयोः,
तथा विशदमन्यत्र ।

[अ. टी.] परापरव्यवहारकारणेश्वरप्रयत्नादावतिव्याप्तिनिरासार्थं विशेषणतयेत्युक्तम् ।
विशेषणतया व्यवहार्यनिमित्ततयेत्यर्थः । अस्मदादिवुद्धिजन्यं यदेकस्मिन्नेव वर्तते तज्जाती-
यवान् घट इति प्रतिज्ञा । घटस्यैकद्रव्यवृत्तिरूपादिजातीयत्वेन सिद्धसाधनता स्यादत
उक्तम् बुद्धिजेति । तथापीश्वरबुद्धिजन्यरूपादिमत्त्वेनोक्तदोषः स्यादतः अस्मदादिग्रहणम् ।
कालादौ व्यभिचारवारणाय विशेषणगुणपदम् । आकाशे तन्निरासाय अनेकपदम् । आत्म-
न्यस्मदादिवुद्धिजं सुखादि, तथापि तयोर्दिकालजैत्ये किं मानमित्याह-विप्रतिपन्नमिति ।
परत्वादेरसमवायिकारणान्तरानङ्गीकाराद्वाधव्युदासार्थं संयोगपदम् । एकद्रव्ये रूपादौ
व्यभिचारवारणाय अस्मदादिवुद्धिजग्रहणम् । सुखादिकमात्ममनस्संयोगासमवायिकारण-
कम् । तत्र द्रव्यान्तरसंयोगस्य परत्वादिना सहान्वयव्यतिरेकयोर्भावेन^१ दिक्कालसंयोगस्य
च तद्भावात्परिशेषात् स एव कारणमित्याह-पारिशेष्यादिति । पिण्डः शरीरं, दिवस-
मासादिना परत्वापरत्वे कालसंयोगपूर्वके । यद्यपि दिवसादिशब्दवाच्याः परिस्पन्दा आदि-

१ वारणायेति च. २ इत आरम्य पद्धिद्वयं नास्ति ॥ पुस्तके. ३ भिन्नत्वे इति च. ४ तत्तु इति छ.
५ भिन्नमित्यत्वमिति छ. ६ भादीति नास्ति च. ७ गुणतयेति इ. ८ निष्ठतयेति ज, ट. ९ द्रव्ये
वर्तत इति ज, ट. १० जातीयव्यत्येनेति ज, ट. ११ गुण इति नास्ति ट. १२ जन्यत्व इति ज. १३ रूप-
त्वादिति ट. १४ वारणायमिति ज, ट. १५ अभावादिति ज, ट. १६ अत्र इ पुस्तके पदयो व्यत्यस्याः

त्यसमवेताः, तथापि आदित्यसंयुक्तकालस्य पिण्डसंयोगस्तदुपनायकत्वात् । पिण्डे परत्वा-
दिहेतुस्तथा । यद्यपि परिमाणदण्डादिसंयोगा देशविशेषसमवेताः, तथापि दिक्संयोगो देश-
पिण्डाभ्यामविशिष्ट इति पिण्डदेशसंयोगोपनायकत्वेन परत्वादिहेतुः । तदुक्तम्-‘क्रियोप-
नायकः कालः संयोगोपनायकत्वात्’ इति ।

[वा. टी.] परेति । अयं पर इति व्यवहारे यद्यवहार्यव्यावर्तकत्वेन निमित्तं तत्परत्वमिति ।
व्यवहार्यनिवृत्तये विशेषणतयेति । एवमपरत्वस्यापि । घट इति । संयोगसजातीयत्वेन सिद्ध-
साधनतापरिहाराय एकद्रव्येति । एकं द्रव्यमाश्रयत्वेन यस्येति रूपसजातीयत्वेन सिद्धसाधनता-
परिहाराय बुद्धिजेति । ईशबुद्धिजेन सिद्धसाधनतापरिहाराय अस्मदादीति । जातीयपदन्तु
नार्थवत् । सामान्येऽतिव्याप्तिपरिहाराय समवायीति । दिश्यतिव्याप्तिपरिहाराय विशेषगुणेति ।
आकाशनिवृत्तये अनेकेति । सुखादिना दृष्टान्तलाभः । सिद्धसाधनतापरिहाराय संयोगेति ।
रूपादिनिवृत्तये बुद्धिजेति । ईशबुद्धिजे तस्मिन् अतिव्याप्तिपरिहाराय अस्मदादीति ।

*

(बुद्धेर्लक्षणं तद्विभागश्च)

अर्थावग्रहो बुद्धिः । सा द्वेधा-नित्यानित्यभेदात् । पूर्वा भगवतो
महेश्वरस्य । सा परीक्षिता आत्मप्रकरणे । उत्तरा अनीशानां मानस-
प्रत्यक्षसिद्धा ।

(अविद्यात्मिका बुद्धिः)

सा द्वेधा-अविद्याविद्याभेदात् । बाधिता अविद्या । सा द्वेधा-निश्च-
यानिश्चयभेदात् । तत्र पूर्वं विपर्ययः । तत्र प्रमाणम्-विर्वादास्पदं रजत-
धीविपर्ययः, रजतेच्छुप्रवृत्तिविपर्ययत्वात्, दृढगत रजतघटत् । उत्तरः संशयः ।
इदम् आहोस्विन्नैर्यम् इति व्यवहारो व्यवहार्यज्ञानपूर्वकः, व्यवहारत्वात्,
सम्प्रतिपक्षंवदिति तत्र प्रमाणम् । अनध्ययसायस्येहान्तर्भावः, स्वप्नस्य
विपर्यये ।

[व. टी.] अर्थेति । यद्यप्यर्थावग्रहो बुद्धिः, तदा पर्याप्तत्वाच्च लक्षणवाक्यता, तथाप्यन्या-
प्रवणार्थनिष्ठविपर्ययताप्रतियोगित्वं बुद्धित्वम्, अन्यानधीनविपर्ययत्वमिति यावत् । द्रव्ये-
दयस्तु परतन्त्रविपर्ययत्ववन्त इति नातिव्याप्तिः । यदा अर्थावग्रह इत्यनेन ज्ञानपदवाच्यत्वं
लक्ष्यतावच्छेदकत्वमुक्तम् । बुद्धिरित्यनेन बुद्धित्वं लक्षणम्, अर्थपदन्तु ज्ञानातिरिक्ता-
र्थबोधनपरम् । बाधितेति । बाधितार्थेत्यर्थः । अनिश्चयः संशयः । पूर्वोच्चाधितार्थो

१ पदमिदं नास्ति ८ पुनरे. २ इत् कारम्य तदुक्तमित्यनः पूर्वो भागो नास्ति ८ पुनरे. ३ पदमिदं
नास्ति ४ पुनरे. ४ विद्याविद्येति क, ग, घ; विद्येतादयस्य सा द्वेधा इत्यन्तं नास्ति ४ पुनरे. ५ बाधिता
धीरिति क. ६ विद्याज्ञानासिद्धिमिति ग, घ; विवादपदं रजतधीपदमिति क, र. ७ रजतादिभिरिति ग,
ग, घ. ८ सत्परजतेति र, मु. ९ भेदमिति ग, घ. १० व्यवहारादिति क. ११ इत्यादयस्त्विति
घ. १२ इत्यर्थे इत्यधिकं च पुनरे.

निश्चयः । विवादपदं शुक्त्यादिप्रवृत्तिजनकरजतत्वप्रकारकज्ञानविषयत्वं साध्यम् । तेन सर्वं रजतमित्याहार्यज्ञानेन नार्थान्तरम् । सर्वं रजतमिति स्वारसिको भ्रमः सम्भवत्येव, न; तत्सम्भवेऽपि तज्ज्ञानं न प्रवर्तकं, रजतत्वेन यस्य कस्य ज्ञानस्य प्राप्तत्वात् । एवञ्च या व्यक्तिः न प्रवर्तकरजतबुद्धिविषया, तत्र व्यभिचारवारणाय रजतेच्छुपदम् । न च रजतेच्छाविषयत्वमेव हेतुरस्तु, यथोक्तविशेष्यविशेषणभावे वैयर्थ्याभावात् । न च शुक्तिरजतेति समूहालम्बनमादायैवार्थान्तरं प्रवृत्तिविषयांशे रजतत्ववशिष्यावगाहिज्ञान-विषयत्वस्य साध्यत्वात् । इदमाहोस्त्रिधैवमिति व्यवहारः पक्षः, व्यवहार्यज्ञानमागच्छत्य-क्षधर्मतावलादेकधर्मिगततया विरुद्धनानाधर्मावगाहि सिध्यति । तदेव संशयः । ईश्व-रज्ञानपूर्वकत्वेनार्थान्तरवारणाय व्यवहार्येति । न हीश्वरज्ञानं विरुद्धकोटिरूपव्यवहा-र्यविषयकं, तस्य भ्रान्तत्वापत्तेः । व्यवहार्यपूर्वकत्वमात्रे साध्ये बाधः, व्यवहार्यस्य व्यव-हाराजनकत्वात्, उद्देश्यासिद्धिश्चेत्यत आह—ज्ञानेति । घटादिव्यवहारे सिद्धसाधनमतः आहोस्त्रिधैवमिति । इहेति । उत्कटकोटिकसंशयेनान्तर्भाव इत्यर्थः । किंसंज्ञकोऽयं वृक्ष इत्याद्यनध्यवसायस्य बाधितसंज्ञाविषयत्वांशे भ्रमत्वमिति बोध्यम् । स्वप्नस्येति । कस्यचिद्विरुद्धोभयकोटिकस्य स्वप्नस्य संशयेऽन्तर्भाव इति केचित् । परे तु स्वप्नत्वं निश्च-यत्वव्याप्यमित्याहुः । स्वप्नत्वसंशयत्वे मानसत्वव्याप्ये । एवं संशयत्वं चाक्षुषानुमित्या-दावपीति केचित् ।

[अ. टी.] अर्थस्य शब्दादेरवग्रहः स्फुरणं बुद्धिः । ज्ञानातिरिक्तार्थसङ्ग्रहाय अर्थपदम् । बाधिता अपहृतविषया बुद्धिरविद्या । विवादपदं शुक्त्यादि । घटार्थिनः प्रवृत्ति-विषये रजतबुध्यनालम्बने व्यभिचारवारणाय रजतादिपदम् । नन्वनध्यवसायः स्वप्नश्चा-विद्याभेदौ किमिति नोच्येते ? तत्राह—अनध्यवसायश्चेति । किंसंज्ञकोऽयं वृक्ष इत्याद्यनध्यवसायस्यानिश्चयात्मकत्वेऽपि बाधाभावात् कथमविद्यात्मकत्वमिति चेदुच्यते—संज्ञाविशेषस्यानिश्चयदशायां देशादिभेदेनानेकधा स्फुरतो व्यवस्थितैकसंज्ञानिश्चयेन कोट्य-न्तरस्यापहारादविद्यात्वं न दुष्यति । स्वप्नस्य जैग्रद्धोधन बाधादविद्यात्वं स्फुटमेव । न च निद्रादुष्टमनोजन्यज्ञानं स्वप्न इति लक्षणं भेदकम्, प्रतीन्द्रियदोषभेदादविद्याभेदप्रसङ्गात् ।

[वा. टी.] अर्थेति । अवग्रहणम् ग्रहः, ज्ञानमिति यावत् । अर्थशून्यवदिति निरासाय अर्थ-पदम् । मानसेति । जानामीति मनोजन्यापरोक्षप्रत्यये सिद्धे इत्यर्थः । बाधिता अपहृतविष-येत्यर्थः । यन्मतम्—इदं रजतमिति पुरोवर्त्तिग्रहणदेशान्तरस्थस्मरणरूपकं ज्ञानद्वयम् (न ?) विशिष्टमेकं विपर्ययाख्यं ज्ञानम्, प्रमाणाभावादिति तदूपयति—विवादपदमिति । शुक्त्यादी-त्यर्थः । घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय रजतेच्छिति । अतो यदरजते रजतबुद्धिस्तैव विपर्यय इति । इदमिति पुरोवर्त्ति, एवमाहोस्त्रिधैवमिति स्याणुस्त्यानेति, स्याणोरन्यः पुरुषो वेत्यर्थः । व्यवहार्य

१ भागे इति च. २ न चैतदिति समूहेति छ. ३ विषयत्वसाध्येति च. ४ इदमाहोस्त्रिधैवमिति च. ५ संशयं तत्रैवेति छ. ६ मानसत्वे इति छ. ७ भवतूतेति ट. ८ विवादात्पदमिति श. ९ घटादाति ट. १० रजतादिसुपदमिति ज, ट. ११ यस्येति ज, ट. १२ जाग्रत्वे बाध इति ट.

स्थाणुपुरुषो । अतो यदनेककोटिद्योतकमनिश्चयात्मकं ज्ञानं न एव संशयः । अनवगतसंज्ञकोऽन-
वधारणरूपोऽनुभावोऽनध्यवसाय उत्कटैककोटिकस्तन्वेह उहः । एतयोरेनवधारणत्वाविशेषाद्युक्त-
स्संशयानतिक्रमः, मिथ्यावधारणात्मकत्वात्सप्रस्य विपर्ययानतिक्रमः ।

*

(विद्यात्मिका बुद्धिः)

अवाधिता धीर्विद्या । सा द्वेषा-प्रमितिरन्यथा चेति । सम्पगनु-
भूतिः प्रमितिः । सा द्वेषा-प्रत्यक्षा इतरा चेति । तत्रापरोक्षा सा प्रत्यक्षा,
परोक्षा सेतरा चेति । पूर्वा द्वेषा-प्रकृष्टधर्मजेतरभेदात् । पूर्वा योगिप्रत्यक्षा ।
तत्र प्रमाणम्-धर्मः कस्यचित्प्रत्यक्षः, प्रमेयत्वात्, वासोचदिति । यस्य स
प्रत्यक्षः स योगी । उत्तरा अस्मदादीनां प्रत्यक्षा ।

(सविकल्पकबुद्धिः)

सा प्रकारान्तरेण द्वेषा-सविकल्पकनिर्विकल्पकभेदात् । विशिष्ट-
विषयं सविकल्पकम् । तत्र प्रमाणम्-सविकल्पिका बुद्धिः प्रमा, स्मृति-
व्यतिरिक्तत्वे सति अवाधितबुद्धित्वात्, निर्विकल्पकवत् इति ।

[व. टी.] अन्यथाचेति । स्मृतिरित्यर्थः । धर्म इति । बाधवारणाय कस्यचि-
दिति । सामान्यज्ञानप्रत्यासत्यजन्मजन्यप्रत्यक्षविषयत्वं साध्यम् । अनुमित्यादिमतासा-
दादिनार्थान्तरवारणाय प्रत्यक्षत्वमुक्तम् । विषयत्वादित्येव हेतुः । आकाशादौ न व्यभि-
चारस्तस्य पक्षसमत्वात् । विशिष्टेति । विशिष्टविषयकमित्यर्थः । तेन विशिष्टपदार्थस्य
विशेषणादिघटितत्वेन न व्यर्थता । तत्र प्रमाणमिति । अत्र यथार्थानुभवत्वं साध्यम् ।
स्मृतौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । अमे व्यभिचारवारणाय अवाधितेति । अवाधि-
तार्थक्यबुद्धित्वादित्यर्थः । न त्ववाधिता चासौ बुद्धिश्चेत्यर्थः । अमस्यापि स्वरूपेणावा-
धिततया व्यभिचारापत्तेः । ईच्छादौ व्यभिचारवारणाय बुद्धित्वादिति । न च साध्य-
समतया हेत्वसिद्धिः, संवादिप्रवृत्तिजनकत्वादिना हेतुसिद्धेः । न च साध्यवैशिष्ट्यम्,
प्रकृते हेतुसाध्ययोर्भिन्नरूपत्वात् ।

[अ. टी.] अन्यथा चेति । स्मृतिरित्यर्थः । कस्ताहिं योगीत्यत आह-यस्येति । गौरः
कुण्डली ब्राह्मणोऽयं गच्छतीत्यादि सविकल्पकम् कथमस्य प्रमाणत्वम् ? तत्राह-तत्प्र-
माणमिति । विपर्यासादौ व्यभिचारवारणार्थमवाधितत्वादित्युक्तम् । अवाधितार्थे व्यभि-
चारवारणाय बुद्धिपदम् । अवाधितबुद्धित्वं स्मृतौ व्यभिचरतीति स्मृतिव्यतिरिक्तत्वे
सतीत्युक्तम् ।

१ सेति नास्ति मुद्रितपुस्तके. २ पूर्वमिति घ. ३ प्रत्यक्षमिति क, ख, ग, घ. ४ यदस्मिन् नास्ति
क, ख. पुनःकयोः. ५ दास्तीयदिनि क, सामान्यवदिनि ग. ६ स प्रत्यक्षे प्रत्यक्ष इति ग, घ. ७ प्रत्यक्ष-
मित्यधिकं सु. ८ पदप्रत्यक्षे नास्ति क, घ. पुनःकयोः, प्रमेयत्वान्तरं ज्ञानं प्रमाणमित्यधिकं ग पुनःक-
९ प्रत्यक्षमित्यधिकं सु. १० अस्मदादीनामिति घ. ११ द्वय्यादाति घ. १२ सिद्धिरिति घ.

[वा. टी.] इन्द्रियं जन्मपरोक्षशब्दार्थः । धर्म इति । प्रत्यक्षत्वश्चात्रेन्द्रियजन्यज्ञानविषयत्वम् । तेन नेष्टरेण सिद्धसाधनता । निर्विकल्पकनिवृत्तये विशिष्टेति । विपर्ययनिवृत्तये अवाधितेति । स्मृतिनिवृत्तये स्मृतीति । सविकल्पकत्वादेवास्य प्राप्तं विपर्ययवदप्रामाण्यमपाकरोति—सत्प्रमाणमिति । कुत इत्यत आह—सविकल्पकेति । सविकल्पिका बुद्धिरविसंवादिनी घटादिवुद्धिः । तेन न भागासिद्धिरिति ।

*

(निर्विकल्पकबुद्धिः)

वस्तुस्वरूपमात्रावभासो निर्विकल्पकम् । ज्ञानानां सविकल्पकत्वादृष्टान्तासिद्धिरिति चेत्—न; प्रमाणोपपत्तेः । सर्वे विकल्पा ज्ञानव्यावृत्तजातिमन्तः, जातिमत्त्वात्, पटवत् ।

[व. टी.] वस्तिव्यति । यद्यपि मात्रपदेनावस्तु न व्यवच्छेद्यं, तस्याप्रतीतिः । न च वैशिष्ट्यं व्यावर्त्यं, तस्यापि वस्तुत्वात्, व्यक्तित्वाच्च; तथापि वैशिष्ट्यानवगाहित्वं निर्विकल्पकलक्षणम् । सर्व इति । अनुमिती यत्किञ्चिज्ज्ञानव्यावृत्तजातिरनुमितित्वमित्यर्थान्तरवारणाय सर्व इति । ज्ञानव्यावृत्ता जातिः सविकल्पकत्वं सेत्स्यतीति भावः । न च निर्विकल्पकसंविकल्पकरूपनरसिंहाकारज्ञाने सविकल्पकत्वस्याव्याप्यवृत्तित्वं प्रसङ्गः(१) । यद्वा घटोऽयमित्यादिज्ञानस्य वैशिष्ट्यावगाहितया सर्वांशे सविकल्पकत्वस्वीकारात् । यद्वा जातिपदं धर्ममात्रपरम् । घटादिव्यावृत्तज्ञानत्वादित्यर्थान्तरवारणाय ज्ञानेति । ज्ञाननिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगिधर्मवन्तः । सर्वे सविकल्पका इति समुदायार्थः । केचित्तु ज्ञानगोचरजातिमत्त्वं साध्यमित्याहुः । तत्र जातिगोचरज्ञानस्य सविकल्पस्यैव साध्यापत्तेः । धर्मवत्त्वसाध्यपक्षे धर्मवत्त्वं हेतुः, जातिमत्त्वसाध्यपक्षे जातिमत्त्वं हेतुः । सविकल्पत्वं न जातिरित्येव पक्षः । अत एव सैद्धान्तिके ध्वनिनिर्विकल्पकसिद्धौ प्रत्यक्षत्वसविकल्पकत्वयोर्न साङ्कर्यम् ।

[अ. टी.] लक्षिते निर्विकल्पके प्रमाणाभावेन सर्वज्ञानानां सविकल्पकत्वे दृष्टान्ताभाव इति शङ्कते—ज्ञानानामिति । प्रमाणाभावोऽसिद्ध इति प्रत्याह—नेति । विकल्पाः सविकल्पज्ञानानि । ज्ञानव्यावृत्ता या जातिस्तद्वन्तो विकल्पा इति साध्यम्, तच्च ज्ञानार्थयोर्जातिगोचरम् । प्रत्यक्षं ज्ञानं निर्विकल्पकम् । उक्तञ्च भट्टपादैरपि—

मुद्रमापतिलादौ च यत्र भेदो न गृह्यते ।

तत्रैकबुद्धिर्निर्ग्राह्या जातिरिन्द्रियगोचरा ॥ इति ।

आपातजस्य वस्तुस्वरूपमात्रप्रत्ययस्य प्राणिमात्रप्रत्यक्षत्वाच्च । यद्वा ज्ञानव्यावृत्ताः कस्मिंश्चिज्ज्ञाने वर्तमाना जातिस्तद्वन्तो विकल्पा इति साध्यम् । सत्तादिमत्त्वेन सिद्धसाधनतानिरासार्थं ज्ञानव्यावृत्तपदम् ।

१ वस्तिव्यति नास्ति य, घं पुलकयोः । २ सविकल्पकेति नास्ति छ पुलके. ३ सविकल्पकत्वेति घ. ४ सिध्यापत्तेरिति घ. ५ हेतुरिति नास्ति च, ६ श्लोकवार्तिके. ७ व्युदासापेक्षमिति ज, ट.

[वा. टी.]

आक्षिपति-ज्ञानानामिति । तथाचाह-

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यश्चन्दानुगमादते ।

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वशब्देन जन्यते ॥ इति ।

तन्निराकरोति-सर्वं इति । विकल्पाः सविकल्पज्ञानानि । कुतश्चिन्नावृत्ता या जातिस्तदन्तीत्यर्थः ।
गुणत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय ज्ञानेति । तत्र ज्ञानत्वादीनामनुवृत्तत्ववादिकल्पकत्वमेव व्यावृत्तं
वाच्यम् । तथतो व्यावृत्तं तन्निर्विकल्पकमित्यर्थः । पटत्वादिना दृष्टान्तलाभः । तथा चाहुः—

अस्ति ह्यालोचनं ज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम् ।

बालमृकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम् ॥ इति ।

*

(लैङ्गिकी बुद्धिः, अन्वयव्यतिरेकनिरूपणञ्च)

उत्तरा लैङ्गिकी । लिङ्गं पुनः साध्याव्यभिचारित्वे सति पक्षधर्म-
तावत् । तद्वेधा भिद्यते-अन्वयव्यतिरेकभेदात् । यस्य साध्येन साहचर्य-
नियमस्तदन्वयि । तद्विधा-सति विपक्षे असति च । पूर्वमन्वयव्यतिरेकि ।
तद्यथा-निनदोऽनित्यः, कृतकत्वात्, यदेवं तदेवम्, यथा घटः, तथा चेदं
तस्मात्तथा । यत्पुनरेनित्यं न भवति तत्पुनः कृतकमपि न भवति, यथा-
काशम्, न चेदं न तथा, तस्मान्न च न तथा । उत्तरं केवलान्वयि । यथा
स्थितिस्यापक्षः प्रत्यक्षः, प्रमेयत्वात्, यदेवं तदेवं, यथा पृथिवी, तथा च
प्रकृतं, तस्मात्तथा । असति सपक्षे यस्य साध्याभावेनोभावनियमस्तद्व्य-
तिरेकि । सर्वं कार्यं सर्ववित्कर्तृकम्, कार्यत्वात् न यदेवं न तदेवम्, यथा
परमाणुः, न चेदं न तथा, तस्मान्न तथेति ।

[वा. टी.] उत्तरा परोक्षा । लिङ्गमिति । व्याप्यत्वासिद्धेऽतिव्याप्तिवारणाय प्रकृत-
साध्याव्यभिचारित्वमुक्तम् । आश्रयासिद्धे स्वरूपासिद्धे चातिव्याप्तिनिरासाय पक्षधर्म-
तावदित्युक्तम् । साध्येनेति । केवलव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिमङ्ग्लाय साध्येनेति ।
व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिमङ्ग्लाय नियमग्रहणम् । असति सपक्ष इति । अन्वयव्यति-
रेकिण्यतिव्याप्तिमङ्ग्लाय असति सपक्ष इत्युक्तम् । विरुद्धव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिवारणाय
नियमपदैम् । सर्वमिति । आकाशादीनां पक्षत्वे बाधवारणाय कार्यमिति । अन्वये
दृष्टान्तामात्रं बोधयितुं सर्वकार्यस्य पक्षत्वसूचनाय सर्वमिति । किञ्चिज्ज्ञानबाधवारणायो-
द्देश्यसिद्धये च सर्वविद्धिति । कर्तृत्वेन तत्सिद्धये च कर्तृकेति ।

१ पक्षधर्म इति क, ख, घ. २ रथ इति क, ग, घ. ३ पुनरिति नास्ति क. ४ न तदेवं
तस्मात् भवतीति क. ५ साध्याभावेऽभावेति क; साध्याभावे साधनाभाव इति घ. ६ यथा तर्कमिति
क. ७ आकाशित्वादिनि सु. ८ न चेदं तथा तस्मात्तथेति क. ९ वारणायेति घ. १०, ११, १२
वारणायेति घ. १३ उच्यमिति नास्ति घ. १४ ग्रहणमिति घ. १५ अवयव इति घ. १६ विद्विग्ने-
नेति घ. १७ कर्त्रिति क.

[अ. टी.] उत्तरा परोक्षा प्रमितिः । असिद्धव्युदासार्थं पक्षधर्मतापदम् । अनेकान्ते-
चारणाय साध्येत्यादि । केवलव्यतिरेकिव्युदासाय साध्येनेति पदम् । नित्यत्वसाध्ये-
नामूर्तत्वस्य साहचर्यमात्रं विद्यते, न तु तल्लिङ्गत्वमतो नियमग्रहणम् । निनदः शब्दः ।
साध्याभावेऽभावनियमोऽन्यव्यतिरेकिणोऽप्यस्ति । तेनोक्तम् असति सपक्ष इति ।
कर्तृमात्रपूर्वकत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासाय सर्वविद्वहणम् ।

[वा. टी.] लिङ्गं पुनरिति । असिद्धनिवारणाय पक्षधर्मवदिति । अनैकान्तिकनिवारणाय
साध्येति । साध्यव्यभिचारित्वञ्च साध्यनिरूप्यव्याप्तिमत्वम् । साध्यव्याप्यत्वमिति यावत् । न च
केवलव्यतिरेकिण्यव्याप्तिः, तत्रापि कदाचित्कत्वं सर्ववित्कर्तृत्वव्याप्यं, तदत्यन्ताभावनियतात्यन्ता-
भाववत्त्वात्, यद्यदत्यन्ताभावनियतात्यन्ताभाववत् तत्तस्य व्याप्यम् । यथा बन्हिमतवात्यन्ताभावनि-
यतात्यन्ताभाववद्भूतत्वं बन्हिमतव्याप्यमिति साध्यव्याप्यत्वानुमानादिति । व्यतिरेकिनिरासाय
साध्येति । अनैकान्तिकनिरासाय नियमग्रहणम् । अन्यव्यतिरेकिनिरासाय अन्वयीति ।

*

(हेत्वाभासलक्षणम्, तद्विभागश्च)

लिङ्गलक्षणरहिता लिङ्गाभिमानविषया लिङ्गाभासाः । ते चासिद्धवि-
रुद्धानैकान्तिकासाधारणबाधितविषयसत्प्रतिपक्षभेदात् पदप्रकाराः ।
पक्षधर्मतयाज्ञातोऽसिद्धः । यथा शब्दो नित्यः, चाक्षुषत्वात् । पक्षविषय-
योरेव वर्तमानो विरुद्धः । यथा शब्दोऽनित्यः, श्रोत्रग्राह्यत्वात् । पक्षत्रय-
वृत्तिरनैकान्तिकः । यथा शब्दोऽनित्यः, प्रमेयत्वात् । संपक्षविषयव्या-
वृत्तः पक्षे वर्तमानोऽसाधारणः । यथा पृथिवी नित्या, गन्धवत्त्वात् प्रमा-
णविरोधी बाधितविषयः कालालयापदिष्टः । यथा अनुष्णोऽग्निः, प्रमेय-
त्वात् । समबलविरुद्धहेतुद्वयसमावेशः सत्प्रतिपक्षः । यथा शब्दो
नित्यः श्रोत्रग्राह्यत्वादित्युक्ते, न नित्यः, सामान्यवत्त्वे सत्यसदादिबाह्ये-
न्द्रियग्राह्यत्वात् इति पौढा व्यूहः । शेषं भाष्ये ।

[ब. टी.] लिङ्गलक्षणे व्यावर्त्यलिङ्गाभासज्ञानाय तल्लक्षणमाह-लिङ्गेति । सल्लिङ्गेऽति-
व्याप्तिवारणाय रहिता इत्यन्तम् । प्रत्यक्षाभासादावतिव्याप्तिवारणाय विषया इत्यन्तम् ।
लिङ्गत्वेन ज्ञानगोचरा इत्यर्थः, न तु भ्रमगोचरा इत्यर्थः । अन्यथा रहितान्तस्य वैयर्थ्या-
पत्तेः । लिङ्गत्वमबाधितासत्प्रतिपक्षव्याप्तपक्षधर्मत्वम् । केचित्तु रहितान्तविषयान्तयो-
र्व्याख्यानव्याख्येयभावं वर्णयन्ति । पक्षधर्मतयेति । व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मतयेत्यर्थः ।
व्याप्यत्वासिद्धेऽव्याप्तिभङ्गार्थं व्याप्तिविशिष्टेत्युक्तम् । स्वरूपासिद्धे आश्रयासिद्धे
चाव्याप्तिनिरासाय पक्षवृत्तित्वेनाज्ञातेति । केवलव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिनिरासाय च

१ अपरा प्रमितिरिति श. २ पक्षधर्मत्वेनेति श. ३ साधनाभावे इति ड. ४ सत उक्तमिति
ज, ड. ५ हेतुविरुद्ध इति शु. ६ पक्षविषयसत्प्रतिपक्षेति मु. ७ सपक्षेत्यारम्भ प्रमेयत्वादित्यन्तो भागो
मासि ॥ पुस्तके. ८ पदमिदं नास्ति घ पुस्तके. ९ स नेति ग, घ. १० धर्मावति घ.

पक्षधर्मतपेति । एवञ्च सद्देतुरपि व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानदशायामसिद्धः । असद्दे-
 तुरपि च तज्ज्ञानदशायां नासिद्ध इत्यालोचनीयम् । उदाहरति-शब्द इति । इदं स्वरू-
 पासिद्धे व्याप्यत्वासिद्धेऽथोदाहरणम् । काञ्चनमयोऽयमग्निः अग्निमान्, धूमवत्त्वादित्यादि
 तु विशेषणाभावादिना आश्रयासिद्धेरुदाहरणम् । पक्षविपक्षयोरवेति । पक्षाद्विक्र-
 वृत्तावतिव्याप्तिवारणाय एवेति । वस्तुतस्तु साध्यासहचरितो हेतुर्विरुद्धः । अत एव
 जलं गन्धवत् जलत्वादित्यादेस्सङ्ग्रहः । अन्ये तु स्वरूपासिद्धे केवलविपक्षगामिन्यति-
 व्याप्तिवारणाय पक्षग्रहणम् । अनेकान्तिकेऽतिव्याप्तिवारणाय एवकारः । केवलपक्षे वर्त-
 मानेऽतिव्याप्तिवारणाय विपक्षग्रहणम् । जलं गन्धवत् जलत्वात् इत्यादौ न विरुद्धते-
 त्याहुः । अन्ये तु पक्षातिरिक्तेऽगृहीतसहचार एव वा विरुद्ध इत्याहुः । पक्षत्रयेति । स्वरू-
 पासिद्धेऽतिव्याप्तिवारणाय पक्षवृत्तित्वमुक्तम् । विपक्षाव्यावृत्तसद्देतावतिव्याप्तिवारणाय
 विपक्षवृत्तित्वमुक्तम् । विरुद्धेऽतिव्याप्तिं वारयितुं सपक्षवृत्तित्वमुक्तम् । सप-
 क्षेति । विपक्षाव्यावृत्ते सद्देतावतिव्याप्तिवारणाय सपक्षव्यावृत्तित्वम्, विपक्षगतेऽ-
 तिव्याप्तिवारणाय विपक्षव्यावृत्तित्वम् । शब्द आकाशगुणः रूपत्वादित्यादिस्वरूपासि-
 द्धेऽतिव्याप्तिमङ्गाय पक्ष इति । न चैवमेवकारवैयर्थ्यम्, तदर्थस्यैव व्यावृत्तान्तेनोक्त-
 त्वात् । प्रमाणेति । समबलप्रमाणेऽतिव्याप्तिवारणाय प्रमाणेत्युक्तम् । अधिकप्र-
 माणयोधितसाध्यविपर्ययकत्वं लक्षणं बोध्यम् । प्रमाणाभासविरुद्धेऽतिव्याप्तिवारणाय
 प्रमाणेत्युक्तम् । समबलेति । अधिकबलहीनबलयोर्हेतवोः परस्परं प्रतिक्षेप्यप्रतिक्षेप-
 कभावापन्नयोरतिव्याप्तिवारणाय समबलेति । बलं व्याप्तिपक्षधर्मता । यद्यपि वास्तवं
 समबलत्वं प्रतिरोधेन सम्भवति, तथापि समबलत्वेन ज्ञायमानत्वं विवक्षितम् । नदीतीरे
 पञ्च फलानि सन्ति, नदीतीरे पञ्च फलानि न सन्तीत्यादिविरुद्धवाक्येऽतिव्याप्तिवार-
 णाय हेतुत्वमुक्तम् । हेतुभासतानिर्वाहकस्य सत्प्रतिपक्षत्वस्य हेतावेव स्वीकारात् ।
 अविरुद्धहेतुद्वयेऽतिव्याप्तिवारणाय विरुद्धेति । द्रव्यत्वादिना समाने व्याप्यत्वादिना
 वा समाने हेतावतिव्याप्तिमङ्गाय बलेति । विरुद्धयोर्हेतुवाक्ययोरतिव्याप्तिवारणाय द्वये-
 त्युक्तम् । घटादौ व्यभिचारवारणाय श्रोत्रेति । शब्दत्वं दृष्टान्तः । न च शब्दप्राग्भावे
 व्यभिचारः, शब्दनित्यत्ववादिमते तदभावात् । न च सन्दिग्धे व्यभिचारः, भावत्व-
 विशेषणस्य देयत्वात् । न च व्यर्थविशेषणत्वशङ्का, एतद्विशेषणमन्तरणैव व्यभिचारास्फु-
 र्तिदशायां सत्प्रतिपक्षस्वीकारात् । अत एव सत्प्रतिपक्षस्यानित्यदोषता, व्यभिचारस्फूर्तेः
 तदस्वीकारात् । जातौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । समवेतधर्मत्वं तदर्थः । योगिप्राये
 परमाप्तादौ व्यभिचारवारणाय अस्मदादीति । अस्मदादिपदं लौकिकप्रत्यासत्तिजन्य-

१ इत्यवबोधयामिनि च. २ काश्चनमयोऽयमग्निं च. ३ यदग्निं नास्ति च. ४ मङ्गायेति च.
 ५ पदमिदं नास्ति च. ६ विपक्षाव्यावृत्तित्वमिति च. ७ विपक्षाव्यावृत्तित्वमिति च. ८ इहः पदचतुष्टयं नास्ति
 च. ९ वारणायेति च. १० व्यावृत्तित्वेनेति च. ११ प्रतिरुद्धे इति च. १२ बलप्रमाणेति च. १३ ज्ञय-
 माणेति च. १४ हेतुवेति च. १५ व्यवहार इति च. १६ व्यभिचारादिति च. १७ पदमिदं नास्ति च.
 प्रमाण-९

परम्, विपर्यजत्वावच्छिन्नपरं वा । तेनास्मदादिसामान्यप्रत्यासत्तिजन्यग्रहविपर्यये पर-
माण्वादौ न व्यभिचारः । आत्मनि व्यभिचारनिराकृतये वाद्येति । बाह्यशरीराद्ये तत्रै-
व व्यभिचारवारणाय इन्द्रियेति । पोदेति । पट्टिधा लिङ्गभासा इत्यर्थः । भाष्ये
प्रशस्तपदभाष्ये ।

[अ. टी.] लिङ्गलक्षणे व्यवच्छेदलिङ्गभासुज्ञानाय तल्लक्षणमाह—लिङ्गलक्षणेति ।
अभिमानः प्रत्ययविशेषः । सद्देतुव्यभिचारवारणाय लिङ्गलक्षणरहिता इत्युक्तम् ।
प्रत्यक्षाभासादिव्यवच्छेदाय लिङ्गाभिमानविषय इति । अज्ञातोऽसिद्ध इत्युक्ते सप-
क्षादिधर्मत्वेनाज्ञातस्याप्यसिद्धत्वं स्यादत उक्तम् पक्षधर्मतयेति । सद्देतुव्यभिचार-
वारणाय विपक्षग्रहणम् । अनित्यशब्दो विभुत्वादित्यादेः केवलविपक्षगामिनो व्युदासीय
पक्षग्रहणम् । अनैकान्तिकव्युदासीय धैवकारः । अनित्यत्वे शब्दस्य साध्यमाने
श्रोत्रग्राह्यत्वं विपक्षे शब्दत्वे शब्दे च पक्षे वर्तते, नान्यत्रेति विरुद्धता । विरुद्धादिव्युदा-
सीय पक्षत्रयग्रहणम् । विरुद्धादिव्युदासीय विपक्षव्यावृत्त इत्युक्तम् । अन्यव्यति-
रेकिव्युदासीय सपक्षव्यावृत्त इति । सत्यपि सपक्षे सपक्षाव्यावृत्तत्वस्य विवक्षितत्वान्न
केवलव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिः । प्रमाणाभासविरोधसद्देतोरपि सम्भवति, ततस्तत्रातिव्याप्ति-
निरासार्थं प्रमाणविरोधीत्युक्तम् । याधितविषय इति कालात्ययापदिष्टज्ञा । आत्मा
नित्यः, सत्त्वे सत्यकारणकत्वात् निरवयवद्रव्यत्वाद्येत्यविरुद्धहेतुसमावेशव्यवच्छेदाय विरुद्ध-
पदम् । अनित्यशब्दः, कृतकत्वात्; नित्यशब्दः, निरवयवत्वात् इति विरुद्धहेतुसमा-
वेशव्यवच्छेदाय सम्बलग्रहणम् । श्रोत्रग्राह्यत्वेन नित्यत्वे शब्दत्वं दृष्टान्तः । अनुमान-
योगीन्द्रियान्यां ग्राह्यपरमाण्वादेषु व्यभिचारवारणाय अस्मदादीन्द्रियग्राह्यत्वादि-
त्युक्तम् । अस्मदादिमनोग्राह्य आत्मनि व्यभिचारवारणाय बाह्यपदम् । सामान्यादौ
तन्निरासीय सामान्यवत्त्वे सतीत्युक्तम् । इति पोढा पट्टिधो लिङ्गभास इति पूर्वेणा-
न्वयः । असिद्धादिभेदविशेषा दृष्टान्ततदाभासार्थं किमिति नोच्यन्त इति तत्राह—शेषं
भाष्य इति । सङ्गहाधिकारान्नात्र विशेषविस्तारोक्तिः । प्रशस्तभाष्याद्युक्तौ साक्षादप्र-
त्येत्यर्थः ।

[वा. टी.] सपक्षेऽनैकान्तिकनिरासाय विपक्षव्यावृत्त इति । अन्यव्यतिरेकिनिरासाय
सपक्ष इति । भूर्नित्या शशविषाणोद्धिखितत्वादित्यत्रातिव्याप्तिपरिहाराय पक्षेति । भूर्नित्या
नित्यरूपवत्वादिति भागासिद्धिनिरासाय एवेति । पक्षव्याप्तिधैवकारार्थः । पूर्वप्रमाणविरुद्धेन

१ जन्यत्वेति च. २ निराहृतयेति च. ३ पदमिदं नास्ति च. ४ पादेति नास्ति छ. ५ ज्ञापनायेति
ट. ६ टिङ्गेति इति झ. ७ व्यावृत्तपर्यमिति ज, ट. ८ व्यवच्छेदायेति ज, ट. ९ व्युदासायमित्येति ज,
व्यवच्छेदायमित्येति ट. १० चेति भास्ति ज, ट पुस्तकयोः. ११ व्यवच्छेदायमित्येति ज, ट. १२, १३ व्यवच्छे-
दायेति ज, ट. १४ इत्युक्तमिति ट. १५ कार्यत्वादिति ज, ट. १६ वारणायमित्येति ज, ट. १७ ग्राहकत्वादिति
झ. १८ अनैकान्तिकव्युदासायमित्येति ज, व्यवच्छेदायमित्येति ट. १९ निरासायमित्येति ज, ट. २० भासाद-
यश्चेति ज, ट.

बाधितविषयत्वं न सम्भवतीति प्रमाणविरोधाद्देवन्तरनिवृत्तये विरुद्धेति । व्यूहः प्रपञ्चः । ननु स्वरूपासिद्धादीनामपि सत्त्वात्कथमेवात्र प्रदर्शनमत आह-शेषमिति । भाष्यं प्रशस्तापादभाष्यम् । सङ्गहाधिकारानात्रोक्तिः ।

*

(शब्दार्थापत्त्यनुपलब्धीनामन्तर्भावः)

वाक्याद्वाक्यार्थधीः, असन्निहितविषयेऽभावधीः, असतो गेहे जीवतो बहिस्सत्त्वबुद्धिरनुमितिः, प्रत्यक्षेतरप्रमितित्वात्, सम्प्रतिपन्नवदिति । सन्निहितविषयेऽभावप्रमा प्रत्यक्षा, अनुमित्यन्यप्रमात्वात्, सम्प्रतिपन्नवदित्यन्तर्भावः । शेषं भाष्ये ।

[य. टी.] शब्दमनुपलब्धिधर्मोपपत्तिश्च परामितं मानान्तरमनुमानेऽन्तर्भावयितुमनुमानमाह-वाक्यादिति । एतावता परामिमता शब्दी बुद्धिः पक्षीकृता । शब्दबुद्धित्वेन न पक्षता । अनुमानान्तर्भाववादिमते (?) शब्दस्वजातेरभावात् । अतो वाक्यजज्ञाक्यार्थगोचरधीत्वेन पक्षता । वाक्यजन्यत्वन्तुभयवादिमतेऽप्यस्ति । तदनुमानविधया शब्दविधया वेत्यत्र परं विवादः । यद्यपि न्यायमते वाक्यत्वं (न ?) जनकतावच्छेदकं, तथाप्यन्वयाविरोधिपदत्वादिना वाक्यस्यैव जनकत्वमिति तत्त्वम् । यद्यपि नैयायिकमतेऽप्यनुमानविधया वाक्यजन्या धीरस्त्येवेति तामादाय सिद्धसाधनम्, तथापि विवादपदं तादृशधीः पक्षः । यद्यपि वाक्यजन्या तत्र न वर्णाविगाहिनी श्रोत्रधीः प्रत्यक्षेऽन्तर्भवति, तथापि तज्जन्या वाक्यार्थधीरनुमितावेवान्तर्भवतीति भावः । पदजनिते पदार्थसृष्टिजनितवाक्यार्थधीः काचित् मानसबोधेऽन्तर्भवतीति बोध्यम् । असन्निहितेति । असन्निहितेन विशेषणेन सन्निहितभावबुद्धेः प्रत्यक्षान्तर्भावस्त्वचितः । अनुपलब्धेरन्तर्भावोऽभावेति विशेषणेन प्राप्तः । अर्थापत्तिमन्तर्भावयति-अस्तत इति । गृहेऽसतो जीवतो देवदत्तादेः बहिस्सत्त्वबुद्धिरित्यर्थः । गृहेऽवर्तमानस्य बहिस्सत्त्वबुद्धिः प्रमा न भवत्यतो गृहासत्त्वमुक्तम् । तादृशस्य मृतस्य बहिस्सत्त्वबुद्धिः प्रमा न भवत्यतो जीवत इति । ईदृशस्य गेहबुद्धिः प्रमा न भवत्यतो बहिरिति । पक्षस्त्वर्थं यथार्थानुमदो शब्दः । प्रत्यक्षे व्यभिचारवारणाय अप्रत्यक्षेति । असिद्धिव्यभिचारयोर्वारणाय इतरेति । विपर्यये व्यभिचारवारणाय प्रमितित्वादिति । साध्यमप्यनुमितिप्रमात्वमुद्देशम् । सम्प्रतिपन्नवत् अनुमितिप्रमावदित्यर्थः । असन्निहितविशेषणेन सूचितमनुमानमाह-सन्निहितेति । अभावविपर्यये बाधवारणाय प्रमेति । सन्निकर्षसोभयवादिमतेऽभावज्ञानजनकत्वेऽपि स्वरूपसदनुपलब्धिजप्रमापक्षः । अर्थजन्यत्वमात्रे साध्येऽर्थान्तरमतः ।

१ सत्येति नास्ति क पुनरेकः सत्त्वबुद्धिर्भवेति ग, घ. २ अप्रत्यक्षेति बलदेवपाठः. ३ प्रत्यक्षेति क, ग, घ. ४ वाक्यजन्येति घ. ५ तज्जन्यधीर्वाक्यार्थधीरेति घ. ६ बोधेऽपीति घ. ७ पदमिदं नास्ति घ. ८ इति भाट्टस्य अत इत्यन्तो भागो नास्ति उ पुनरेक.

प्रत्यक्षत्वं साधितम् । अनुमितौ व्यभिचारवारणाय अनुमितीति । विपर्यये व्यभिचार-
वारणाय प्रमितित्वम् ॥

[अ. टी.] तथापि परोक्षा प्रमितिलक्षण्येवेति भवतां नियमो न सम्भवति शब्दादिप्रमिति-
सम्भवादित्यत आह-वाक्यादिति । असन्निहितविषये प्रत्यक्षागोचरेत्यर्थः । जीवतो गृहे
चासतो वहिस्त्वबुद्धिरित्यर्थापत्तिमपि पक्षीकरोति-असत् इति । प्रत्यक्षप्रमितौ व्यभिचा-
रवारणाय प्रत्यक्षेतरपदम् । ननु यद्यप्यागमार्थापत्त्यनुमानेऽन्तर्भावोऽभावस्य पुनस्सन्निहित-
विपर्यय इह भूतले घटाभाव इति प्रामाण्याङ्गीकारात्कथमनुमानेऽन्तर्भाव इत्यत आह-सन्नि-
हितविषयेति । अनुमितौ व्यभिचारव्युदासार्थं तदन्यपदम् । सम्प्रतिपन्नवत् प्रत्यक्ष-
प्रमावदित्यर्थः । तथापि प्रत्यक्षानुमाने द्वे एव प्रमाणे कथम् ? उपमानादिसम्भवादित्यत आह-
शेषं भाष्य इति । प्रत्यक्षेतरप्रमितित्वमनुमानान्तर्भावगमकमुपमित्यादां यद्यपि तुल्यम्,
तथाप्यधिकमन्यत्र द्रष्टव्यमिति भावः । एवं विद्यायाः प्रमितिलक्षणो भेदः प्रयोजितः ।

। [वा. टी.] ननु शाब्दादिप्रमितीनामपि सम्भवात् द्वैविध्यमसङ्गतमत आह-वाक्यादिति ।
प्रत्यक्षप्रमानिवृत्तये प्रत्यक्षेति । अयमाशयः-वाक्यं हि स्वार्थं संसर्गं (मर्यादया ?) बोधयल्लिङ्गस्वरूपे-
णैवानुसन्धीयमानमविनाभाववलेनैव बोधयति । तथाहि-देवदत्त गामभ्यानयेत्यत्रैतानि पदानि
स्वस्मारितार्थसंसर्गज्ञानपूर्वकाणि, विशिष्टपदत्वात्, सम्प्रतिपन्नवदिति लिङ्गरूपेणात्यगतेन वाक्येन संस-
र्गबोधः क्रियत इति युक्तं शब्दजन्यप्रमितेरेनुमितित्वम् । अर्थापत्तिरप्यनुपपद्यमानार्थदर्शनादुपपा-
दके बुद्धिः, साप्यनुमानमेवाविनाभावसम्भवात् । तद्यथा विमतो देवदत्तः वहिस्सन् (जाववाहे ?
जीवन् गृहे) असत्वात् यदेवं तदेवं यथाहमिति युक्तं तत्प्रमितेरेप्यनुमितित्वम् । अनुपलब्धि-
जन्यया प्रमया त्रैविध्यं परिहरति-सन्निहितेति । प्रत्यक्षार्थप्रतियोगिकभावविषयेति यावत् ।
अनुमित्यन्येति । न चेन्द्रियाभावयोस्सम्बन्धाभावादनुपपद्यत्वमिति वाच्यम् । पञ्चविधसम्बन्धान्य-
तमसम्बन्धसम्बन्धपदार्थविशेषणत्रिशेष्यभावत्वसम्भवादिति । समाद्यभावस्त्वागमादिनेति । तथाप्युप-
मानसम्भवात् द्वैविध्योपपत्तिरत आह-शेषमिति । अतिदेशवाक्यार्थं (स्मणाचतः ? स्मरणाच्च)
पुंसो यद्वोषिण्डे गोसदृशोऽयमिति ज्ञानं तत्प्रत्यक्षमेव नोपमानम् । संज्ञासंज्ञिप्रमितित्तु वाक्यफल-
मिति सूक्तं द्वैविध्यम् ।

(स्मृतिनिरूपणम्)

उत्तरा स्मृतिः । सा अप्रमा, स्वविषये प्रत्यक्षानुमानान्यत्वात् इति
सिद्धा बुद्धिः ।

[व. टी.] उत्तरा अविद्येत्यर्थः । यद्यपि व्यधिकरणप्रकारकत्वरूपमविद्यात्वं सर्वत्र
स्मृतौ न सम्भवति, यथार्थानुभवजनितस्मृतेर्यथार्थत्वात्, तथाप्यनुभवत्पराहित्यप्रयुक्त-

१ विषये च भूतल इति ट. विषय एव भूतल इति ज. २ वारणायेति ज, अनुमितिव्युदासार्थमिति
३ असम्भवादित्यत इति ज, ४ अनुमितीति ज, ट. ५ भावाङ्गमिति ट. ६ अनुमित्यन्यप्रमात्वादिति
मु. ७ विद्येति क छ; अविद्येति मु.

यथार्थानुभवत्वरहित्यरूपाप्रमात्वसत्त्वाच्च दोषः । स्वविषय इति साध्यविशेषणमुद्देश्यसिद्धये । प्रत्यक्षानुमित्योर्व्यभिचारवारणाय प्रत्यक्षानुमानेत्यन्यत्वविशेषणम् ।

[अ.टी.] स्मृतिलक्षणं द्वितीयं प्रपञ्चयति-उत्तरेति । तस्याः प्रमान्यत्वे प्रमाणमाह-साऽप्रमेति । स्मृतेरपि कार्यतया स्वकारणसंस्कारैलिङ्गतया प्रमाणत्वाद्वाप्युदासार्थं स्वविषये इत्युक्तम् । प्रत्यक्षान्यत्वमनुमानेऽनुमानान्यत्वञ्च प्रत्यक्षे व्यभिचरति, अत उभयान्यत्वग्रहणम् ।

[वा. टी.] साऽप्रमेति । स्मृतेः कार्यतया स्वकारणे संस्कारे लिङ्गत्वेन प्रामाण्यात् वाधनिवारणाय स्वे विषये इति । अनुमितौ प्रत्यक्षे च व्यभिचारपरिहाराय पदद्वयम् । न च साधनविकल्पविपर्ययस्येन्द्रियसन्निकर्षव्याप्तलिङ्गजन्यत्वाभावेन साधनस्य तत्र वर्तमानत्वादिति । नच तत्त्वज्ञानादेव प्रमात्वं साधनीयम्, स्वतोऽर्थान्वधारणात् । तदाहुः-

तत्र यत्पूर्वविज्ञानं तस्य प्रामाण्यमिष्यते ।

तदुपस्थापनेनैव स्मृतेस्साधारेतायता ॥

इति युक्तप्रमात्वम् ।

*

(सुखदुःखयोर्निरूपणम्)

यस्मिन्ननुभूयमाने तत्साधनेष्वभिष्टव्यः तत्सुखम् ।

यस्मिन्ननुभूयमाने तत्साधनेषु द्वेषैः तदुःखम् । ते बुद्धिजे, तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्, यदेवं तदेवं यथा घटः, तथा च प्रकृतम् तस्मात्तथा ।

[अ.टी.] यस्मिन्निति । अनुभूयमानमात्रं घटादावतिव्याप्तमतः तत्साधनेष्वभिष्टव्य इति । एवमपि पुण्ये गतं, सुखसाधनतया ज्ञायमानस्य पुण्यस्य साधने यागादौ? विधादर्शनादिति चेत्-न; अन्यसाधनतया ज्ञायमाने यस्मिन् भावे येन रूपेण ज्ञातेऽन्यैरेच्छा तद्रूपाक्रान्तसुखमित्यर्थात् । अतएव (न?) दुःखाभावेनापि सुखत्वभ्रमगोचरतापन्ने चन्दनादावतिव्याप्तिः ।

यस्मिन्निति । अन्यसाधनतया ज्ञायमाने यस्मिन् येन रूपेण ज्ञाते तत्साधने द्वेषस्वरूपाक्रान्तं दुःखमित्यर्थः । तेन दुःखत्वभ्रमगोचरतापन्ने पापादौ नातिव्याप्तिः । तदन्वयेति । स्वतन्त्रतदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वादित्यर्थः । तेनान्यथासिद्धं व्यभिचारवारणम् ।

[अ. टी.] अभिष्टव्यः अनुयागः । यस्मिन्ननुभूयमाने स्वसमवेततयेति पूरणीयम् । अन्यथा स्वैर्गन्धीद्यादावनुभूयमाने तत्साधनेषु वाणिज्यकर्षणादिष्वभिष्टव्यदर्शनादतिव्याप्तिः स्यात् । एवं

१ स्वेति नास्ति द. २ कारणे संस्कारे इति ज, द. ३ तत्साधनेष्वनुयुक्तः तत्समवेत इत्यधिकं सुदितपुस्तके. ४ समवेत इत्यधिकं सुदितपुस्तके. ५ अभिष्टव्य इति घ. ६ अनुयुक्त इति छ. ७ अन्यप्रेति नास्ति च पुस्तके. ८ मूलत्वमिति छ. ९ सुवर्गेति ज, द.

दुःखलक्षणेपदम् । तयोस्तिनिष्ठबुद्धिजन्यत्वस्वीकारात्तत्र प्रमाणमाह-ते बुद्धिज इति । अनुविधानमनुवर्तनम् ।

[वा. टी.] यस्मिन्निति । आत्मनिवारणाय तत्साधनेति । अभिष्वङ्गः अनुरागः । सगादिनिवृत्तये आत्मसमवेतेति द्रष्टव्यम् । एवं दुःखस्यापि सत्यां सगादिवुद्धौ सुखादि भवति नान्यथेति तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वम् ।

(इच्छा तद्विभागो द्वेषश्च)

प्रार्थना इच्छा । सा द्वेषा-नित्यानित्यभेदेन । महेश्वरस्य नित्या, ईशविशेषगुणत्वात् तद्बुद्धिचदिति । विप्रतिपन्नानि कार्याणि ईशेच्छाजन्यानि, कार्यत्वात्, सम्प्रतिपन्नवदिति । सर्वोत्पत्तिनिमित्तत्वमीशेच्छायाः । अनित्या अनीशानाम्, अनीशविशेषगुणत्वात्, तद्बुद्धिचदिति । रोपो द्वेषः । सोऽनित्यः, जीवविशेषगुणत्वात्, तद्बुद्धिचत् । बुद्धिजन्यं तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वादिति ।

[व. टी.] प्रार्थनेति । प्रार्थनापदवाच्यम् इच्छात्वजातिमदित्यर्थः । घटरूपादौ व्यभिचारवारणाय ईशेति । ईशसंयोगे व्यभिचारवारणाय विशेषेति । असदादीच्छायां बाधवारणाय महेश्वरस्येति । महेश्वरसंयोगादौ व्यभिचारवारणाय इच्छेति । विप्रतिपन्नानीति । अङ्कुरादौ पक्षधर्मतावलान्नित्येच्छाजन्यत्वसिध्यनन्तरं घटादिकं कार्यं पक्षीकृत्य नित्येच्छाजन्यत्वं साध्यते । अङ्कुरादिसम्प्रतिपन्नो दृष्टान्तः । अङ्कुरादौ सिद्धसाधनवारणाय विप्रतिपन्नानीति । ईशमात्रकर्तृकभित्तानीत्यर्थः । आकाशादौ बाधवारणाय कार्याणीति । अर्थान्तरवारणाय ईशेति । ईश्वरबुद्ध्यर्थान्तरवारणाय इच्छेति ।

[अ. टी.] जीवविशेषगुणपु शब्दादिषु च व्यभिचारवारणार्थम् ईशेति । ईशेच्छैव कुतस्सिद्धा, तस्यास्सर्वोत्पत्तिनिमित्तत्वञ्च कुत इत्यत आह-विप्रतिपन्नानीति । अङ्कुरादीनीत्यर्थः । इच्छाजन्यानीशेच्छाजन्यानीति च द्विविधप्रयोगो ज्ञेयः । प्रथमप्रयोगान्नित्येच्छासिद्धौ पूर्वत्र दृष्टान्तीकृतघटोदेर्नित्येश्वरेच्छाजन्यत्वमङ्कुरादिवत्साध्यम् । नित्यपरिमाणादौ व्यभिचारवारणार्थं विशेषपदम् । ईशादिविशेषगुणेष्वनैकान्तिकव्युदासाय जीवपदम् ।

[सा. टी.] इदं भूयादिति प्रार्थनाशब्दार्थः । रोपो द्वेष इत्यत्र पर्यायत्वेऽपि प्रसिद्धत्वाप्रसिद्धत्वाभ्यां लक्ष्यलक्षणभावो युक्तः, खं छिद्रमितिवत् ।

१ जीवदिति ख, ग, घ. २ दोष इति सु. ३ तदिति नास्ति क पुल्लके. ४ इत्यकारस्य तद्विशेषगुणत्वाद्बुद्धिचदित्यन्तो भागो नास्ति मुद्रितपुल्लके. ५ बाधवारणार्थेति च. ६ इह दृष्टान्त इति घ. ७ ईशपदमिति ज, ट. ८ उत्पत्तिमदिति ट. ९ द्वेषेति ज, ट. १० पदार्थेति ज, घटादाविति ट. ११

*

(प्रयत्नः तद्विभागश्च)

गुणत्वावान्तरजात्या बुद्धीच्छान्येश्वरविशेषगुणगततत्सामान्या-
धारः प्रयत्नः । सोऽस्मदादीनां प्रत्यक्षः । ईशस्य तु पुरुषत्वात्सिद्धः । स
नित्यानित्यभेदाद्ब्रह्मा । नित्यस्सर्वज्ञस्य तद्विशेषगुणत्वाद्बुद्धिवत् । अनित्यो
द्वेधा-इच्छाद्वेपान्यतरपूर्वको जीवनपूर्वकश्चेति । पूर्वं मानसप्रत्यक्षसिद्धः,
उत्तरोऽनुमानसिद्धः । सुपुप्तप्राणक्रिया अस्मदादिप्रयत्नजा प्राणक्रियात्वात्
जाग्रतः प्राणक्रियावदिति ।

[य. टी.] गुणत्वावान्तरेति । सामान्यादावतिव्याप्तिवारणाय सामान्येति ।
घटादावतिव्याप्तिवारणाय गुणगतेति । संख्यादावतिव्याप्तिवारणाय विशेषेति ।
रूपादावतिव्याप्तिवारणाय ईश्वरेति । बुद्धीच्छयोरतिव्याप्तिवारणाय बुद्धीच्छान्येति ।
सत्तामादायातिप्रसङ्गवारणाय अवान्तरेति । गुणत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय गुण-
त्वेति । रूपप्रयत्नान्यतरत्वादिनातिप्रसक्तनिरासौप सामान्येति । इच्छाद्वेपेति ।
इच्छापूर्वको द्वेपपूर्वकश्चेत्यर्थः । द्वेपपूर्वकस्तु प्रयत्नो न नव्यमते सिद्धः । जीवनेति ।
जीव्यतेऽनेनेति जीवनमदृष्टम् । सुपुप्तप्राणक्रियेति । जलादिक्रियायां बाधवारणाय
प्राणेति । प्राणे बाधवारणाय क्रियेति । प्राणायामे सिद्धसाधनवारणाय सुपुप्तेति ।
सुपुप्तशरीरक्रियायां स्पर्शनवद्देगवहोष्ठादिसंयोगजन्यायां बाधवारणाय प्राणेति । ईश्व-
रप्रयत्नेनार्थान्तरवारणाय अस्मदादीति । अस्मदादिगतत्वेनार्थान्तरवारणाय प्रय-
त्नेति । अदृष्टाद्वारकप्रयत्नजन्यत्वं समुदायार्थः । तेन नादृष्टाद्वारकप्रयत्नजन्यत्वेनार्था-
न्तरम् । क्रियात्वं पतनादौ व्यभिचारि, तदर्थं प्राणक्रियात्वं हेतुकृतम् । प्राणत्वं साध-
नविकलमतं उक्तं क्रियात्वम् । प्राणक्रियाविशेषो हेतुरतो न प्राणवाय्वादिसंयोगजन्य-
प्राणक्रियायां व्यभिचारः । पक्षेऽपि स एव, तेन नांशतो बाधः ।

[अ. टी.] सामान्याधारः प्रयत्न इत्युक्ते द्रव्यकर्मणोरतिव्याप्तिः स्यादत उक्तं गुण-
गतेति । संयोगादौ व्यभिचारवारणाय विशेषपदम् । रूपादपत्तिव्याप्तिमुक्तसार्थम् ईश्व-
रपदम् । तर्हि ज्ञानेच्छयोर्व्यभिचारस्सात्ततो बुद्धीच्छान्येत्युक्तम् । बुद्धीच्छान्येश्वर-
विशेषगुणगतसत्तागुणत्वलक्षणसामान्याधारे द्रव्यादौ गुणमात्रे चातिव्याप्तिनिरासार्थं गुण-
त्वावान्तरजात्येत्युक्तम् । किं तदनुमानमित्यंत आह-सुपुप्तप्राणक्रियेति । ईश-
प्रयत्नजन्यत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थम् । अस्मदादिपदम् । क्रियात्वं भेदगत्यादौ व्यभि-
चरतीत्यत उक्तं प्राणक्रियत्वादिति ।

१ जानीयेति घ. २ तद्विति नास्ति ख, ग, घ. ३ प्रयत्नसिद्ध इति घ. ४ तु इति नास्ति ख, ग, घ.
५ जीवदिति ख, ग, घ. ६ सुप्तेति ख, घ. ७ मन्नायेति घ. ८ अतिव्यापनेति ज, ट. ९ किमिति
नास्ति ट पुस्तके. १० इतीति नास्ति ट पुस्तके.

[वा. टी.] गुणत्वेति । संयोगेऽतिव्याप्तिपरिहाराय विशेषेति । गन्धेऽतिव्याप्तिपरिहाराय ईश्वरेति । ज्ञानेऽत्योरतिव्याप्तिपरिहाराय बुद्धीच्छान्येति । जीमप्रयत्नेऽव्याप्तिनिरासाय तद्गत-
सामान्येति । घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय गुणत्वेति । रूपनिर्गारणाय अवान्तरेति । जीवन्
प्राणधारणम् ।

*

(गुरुत्वलक्षणं तत्र प्रमाणञ्च)

आद्यपतनासमवायिकारणाल्यन्तसजातीयं गुरुत्वम् । तत्र प्रमा-
णम्—प्रथमं पतनम्, असमवायिकारणपूर्वकम्, क्रियात्वात्, सम्प्रति-
पन्नवदिति । परिशेषाद्गुरुत्वसिद्धिः । द्रुतं सर्पिः, यावद्द्रव्यभाव्यतीन्द्रिय-
वत्, चतुर्दशगुणवत्त्वात् बहुविशेषगुणवत्त्वाच्च, आत्मवेदिति मानद्वयम् ।
तत्रान्यस्यासम्भवात् । घटगुरुत्वं यार्घ्यद्रव्यभावि, अक्रियाजन्यत्वे सति
अबुद्धिजन्यत्वे सति घटसमवेतत्वात्, घटरूपवत् । सर्वत्र गुरुत्वं यावद्द्र-
व्यभावि, गुरुत्वात्, घटगुरुत्ववदिति साधनीयम् । अत एव कारणगुण-
पूर्वकत्वं तद्दृष्टान्तेन साधनीयम् । घटगुरुत्वमप्रत्यक्षं, गुरुत्वात्, परमाणु-
गुरुत्ववत् ।

[व. टी.] आद्येति । द्वितीयपतनासमवायिकारणे प्रथमपतनजन्यवेगेऽतिव्याप्तिवार-
णाय आद्येति । नोदनजन्याद्यकर्मसमवायिकारणे नोदनेऽतिव्याप्तिवारणाय पत-
नेति । यत्रापि नोदनादिना फलसंयोगाभावो भवति, तत्रापि पतनस्य (न ?) नोद-
नासमवायिकारणता । नोदनस्य संयोगध्वंसजनकपतनभिन्नकर्मजननेनैवोपक्षीणत्वात् ।
अतएव संयोगध्वंसेनोपक्षीणनोदनजन्यकर्मादिना पतनासमवायिकारणपतनात्यन्तस-
जातीयत्वं गुरुत्वे सम्भवति (?) तदर्थं कारणेति । कालादौ गतमत आह—अस-
मवायीति । सत्तादिना सजातीये घटादायतिव्याप्तिवारणाय अत्यन्तेति । तेन
गुणत्वव्याप्यजात्या साजात्यं प्राप्तम् । अत एव पतनासमवायिकारणनिष्ठान्यतरत्वादिमति
रूपादौ नातिव्याप्तिः । पतनत्वं गुरुत्वप्रयोज्यो जातिविशेषः, न त्वधस्तथोपगमलक्रिया-
त्वम् । सूर्यकरकर्मणि तदसमवायिकारणे वा पतनलक्षणस्य गुरुत्वलक्षणस्य च नातिप्र-
सक्त्यापत्तिः, न वादृष्टवदात्मसंयोगेऽतिव्याप्तिः, तस्य पतननिमित्तत्वेऽपि तदसमवायि-
कारणत्वाभावात् । अजनितपतनके नष्टगुरुत्वेऽव्याप्तिवारणाय सजातीयत्वमुक्तम् ।
प्रथममिति । प्रथमशरक्रियादापर्यान्तरवारणाय पतनमिति । द्वितीयादिपतनेऽपर्यान्तर-
वारणाय प्रथममिति । अदृष्टादिनार्यान्तरवारणाय असमवायीति । परिशेषादिति ।

१ आद्यपतनमिति र, ग, घ; प्रथमपतनमिति क. २ चेति नास्ति क, र, घ पुल्लेख; वा इति ग.

३ आद्यमवदिति नास्ति घ पुल्लेख. ४ पठेति घ. ५ जगत्वे सतीति घ. ६ कारणपूर्वकमिति ग, घ;
कारणगुणपूर्वकमिति क. ७ जन्यमत इति छ. ८ उपस्थीण नोदनजन्यं कर्मापि न पतनेति छ. ९ कार-
कक्रियात्वेनेति घ. १० क्रियैवेति च.

अन्यथा गुरुत्वोत्कर्षेण पतनोत्कर्षो न स्यादिति भावः । द्रुतमिति । रूपादिनार्थान्तरवारणाय अतीन्द्रियेति । आकाशवृत्तद्वित्वेनार्थान्तरवारणाय यावदिति । न च गगननिरूपितवृत्तिनिष्ठसंयोगेनार्थान्तरं, तस्यापि यावद्रूपव्यभावित्वाभावात्, व्याप्यवृत्तित्वविशेषणस्य देयत्वाद्वा । न च स्थितस्थारपकेनार्थान्तरम्, तद्विभक्तत्वेन विशेषणात् । न च द्रुतपदवैयर्थ्यम्, द्रुतसर्पिण्येन प्रतीतेरुद्देश्यत्वात् । अत्यक्षतेजसि व्यभिचारवारणाय चतुर्विधेति । प्रमेयत्वादित्युद्देश्यमवति तत्रैव व्यभिचारवारणाय गुणेति । तेजसि व्यभिचारवारणाय घट्टिति । अनेकगुणयति तत्रैव व्यभिचारवारणाय विशेषेति । उक्तसाध्यविशेषणं साधयति घटेति । उद्देश्यसिद्धये घटेति । द्वित्वादौ बाधवारणाय रूपादौ सिद्धसाधनवारणाय च गुरुत्वमिति । उद्देश्यसिद्धये यावदिति । साधनप्रसमानकालीनध्वंसप्रतियोगीत्यर्थः । रूपप्रागभावे व्यभिचारवारणाय असमवेतत्वादिति । शब्दं व्यभिचारवारणाय घटेति । घटद्वित्वे व्यभिचारवारणाय अनुद्विजत्वे इति । असाधारणवृद्धिजत्वनिषेधे सतीत्यर्थः । तेन नासिद्धिः । संयोगादिषु व्यभिचारवारणाय अक्रियाजत्वे सतीति । संयोगादिभिन्नत्वे सतीत्यर्थः । तेन न संयोगजसंयोगादौ व्यभिचारः न या वेगे । अन्ये तु अक्रियाजत्वे सति संयोगजसंयोगादिभिन्नत्वे सतीत्याहुः । परे तु अक्रियाजत्वं क्रियाप्रयोज्यभिन्नत्वं, संयोगजसंयोगादिः क्रियाप्रयोज्य एवेति न तत्र व्यभिचारो न या वेग इत्याहुः । साधनीयं यावद्रूपव्यभावित्वमिति शेषः । अत एवेति । घटसमवेतत्वे सति यावद्रूपव्यभावित्वादित्यर्थः । तदुद्धान्तेन घटरूपदृष्टान्तेन । तर्हि तद्वत् किं तत्प्रत्यक्षम् ? नेत्याह—घटेति । परमाणुगुरुत्वे सिद्धसाधनवारणाय घटेति । घटनिष्ठाकाशसंयोगादौ सिद्धसाधनवारणाय घटरूपादौ च बाधवारणाय गुरुत्वमिति । गुरुत्वादित्यर्थः ।

[अ. टी.] सजातीयं गुरुत्वमित्युक्ते कालादौ व्यभिचारवारणार्थम्—असमवायिकारणेत्युक्तम् । तर्हि सत्तया समवायिकारणसजातीये द्रव्येऽतिव्याप्तिस्सादत उक्तम् अत्यन्तेति । तथापि संयोगादौ व्यभिचारस्सादत उक्तं पतनेति । एवमप्युत्तरपतनासमवायिकारणात्यन्तसजातीये प्रथमपतनोत्पत्त्यसंस्कारेऽतिव्याप्तिस्सादत उक्तम् अग्न्यपदम् । जातमात्रनष्टगुरुत्वेऽव्याप्तिनिरासार्थं सजातीयपदम् । सम्प्रतिपन्नमुत्तरं पतनम् । प्रयोगान्तरमाह—द्रुतं सर्पिरिति । अतीन्द्रियवदित्युक्ते कालादिसंयोगवत्त्वेन सिद्धसाधनता सादत उक्तम् यावद्रूपव्यभावीति । यावद्रूपव्यभावि युक्तमित्युक्ते रूपादिमत्त्वेन सिद्धसाधनता अत उक्तम् अतीन्द्रियवदिति । स्थितस्थारपकान्यत्वस्य विवक्षितत्वान्न तेन सिद्धसाधनता । गुणवत्त्वादित्युक्ते तेजोविकारे स्थूलसुवर्णे व्यभिचारस्सादत उक्तम् ।

१, २ निराकृत्य इति च. ३ इतः पदद्वयं नास्ति च पुस्तके. ४ सर्पिर्नास्ति च. ५, ६ पदद्वयं नास्ति च पुस्तके. ७ भावित्वादेवेति च. ८ मद्भावावेति च. ९ पदमिदं नास्ति ज, २ पुनरुक्तम्. १० द्रव्यगुरुत्वेति ज. ११ तत् इति ज, ड. १२ अन्यत्वं दृष्टव्यमिति ज.

चतुर्दशेति । रूपस्पर्शविशेषगुणद्वयवति स्थूलतेजसि व्यभिचारवारणाय बहुपदम् । द्रवीभूतसर्पिषि तादृशं गुणान्तरं स्यान्न गुरुत्वमिति तत्राह-तत्रेति । प्रकारान्तरेणोक्तं साध्यविशेषणं साधयति-घटगुरुत्वमिति । समवेतत्वादित्युक्ते शब्दबुद्ध्यादौ व्यभिचारस्यादतो घटपदम् । घटसमवेतद्वित्वादावनैकान्तिकत्वबुद्ध्यादाय बुद्धिजत्वविशेषणम् । अबुद्धिजन्यैत्वे सति घटसमवेतसंयोगादिना व्यभिचारवारणायाक्रियाजन्यत्वविशेषणम् । घटसमवेतसंयोगजसंयोगविभागजविभागाम्यां व्यभिचारवारणाय तदन्यत्वविशेषणमपि द्रष्टव्यम् । तथाप्यन्यत्र कथं तस्य यावद्रव्यभावित्वसिद्धिस्तत्राह-सर्वत्रेति । साधनीयं यावद्रव्यभावित्वमिति शेषः । घटादिगुरुत्वस्य किं कारणं तदाह-अत एवेति । अत एव घटसमवेतत्वे सति यावद्रव्यभावित्वादेवेत्यर्थः । तद्वृष्टान्तेन घटरूपनिदर्शनेनेत्यर्थः । तर्हि रूपवत्प्रत्यक्षमपि किं गुरुत्वं, तत्राह-घटगुरुत्वमिति ।

[भा. टी.] आद्येति । रूपनिवारणाय पतनेति । वेगनिवारणाय आद्येति । उपपन्नघटगुरुत्वेऽतिव्याप्तिनिवारणाय सजातीयमिति । घटनिवृत्तये अत्यन्तेति । संयोगनिवृत्तये एकवृत्तीति द्रष्टव्यम् । न च लघुत्वाभावस्यैव गुरुत्वादसम्भवादलक्षणमिति वाच्यम् । तथात्वे कारणापेक्षया कार्ये सति शेषस्तदुपलम्भो न स्यादतिशयस्य भावधर्मत्वादतोऽतिरिक्तमेव गुरुत्वमित्याशयवांस्तत्र प्रमाणमाह-तत्रेति । स्पष्टम् । द्रुतं द्रवशीलमुदकम् । सर्पिर्धृतम् । अन्यथा तादृशपदवैयर्थ्यादिति । दिक्संयोगेन सिद्धसाधनपरिहाराय यावद्रव्येति । सुवर्णादौ व्यभिचारपरिहाराय चतुर्दशेति । गुरुत्वाङ्गीकारे चतुर्दशगुणवत्त्वस्य हेतोरसिद्धिमाशङ्क्य हेत्वन्तरमाह-बहुविशेषगुणवत्त्वाद्देति । आकाशवारणाय बहुपदम् । स्थितिस्थापकान्यत्वञ्च द्रष्टव्यम् । दृष्टान्ते एकपृथक्त्वादिनासिद्धिः (परिहाराय !) यावद्रव्यभावित्वं साधयति-घटेति । द्वित्वनिवारणाय अबुद्धीति । संयोगनिवारणाय अक्रियेति । तथापि संयोगजसंयोगविभागजविभागनिवारणाय तदन्यत्वमुपादेयम् । अतएवेति । अक्रियाजन्यत्वादेव । तद्वृष्टान्तेन घटरूपदृष्टान्तेनेत्यर्थः । गुरुत्वस्पर्शनगम्यत्वे निराकरोति-घटगुरुत्वमिति । न चाश्रयाप्रत्यक्षत्वमुपाधिः, धर्मादौ साध्याभ्यासेः । अतिप्रसङ्गस्तु प्रत्यक्षादिबाधेन परिहरणीय इति ।

*

(द्रवत्वलक्षणं तद्विभागश्च)

आद्यस्यन्दनासमवायिकारणान्तसजातीयं द्रवत्वम् । तद्देहा-
नित्यानित्यभेदेन । सलिलपरमाणुषु नित्यम् । तत्र प्रमाणम्-सलिलद्व्यणुकं
यावद्रव्यभाविद्रवत्ववत्समवायिकार्यं, कार्यत्वे सति सलिलत्वात्, सम्प्रति-
पन्नसलिलवत् । पार्थिवतैजसपरमाणुषु द्रवत्वमनित्यम्, असंलिलद्रवत्वात्,

१ स्थूल इति श. २ द्रवीकृतेति ट. ३ जत्वे सतीति ज, ट. ४ मद्भावेति ज. ५ अत्यन्तेति नाति घ पुनरे. ६ तच्चेति सु. ७ भेदादिति सु. ८ पूर्वत्रेति क. ९ समवायिकारणकमिति ग, कारणमिति ख, कारणकार्यमिति सु. १० सलिलातिरिक्तद्रवत्वादिति ग.

सम्प्रतिपन्नवदितीतरसिद्धिः । पार्थिवाः परमाणवो रूपादिचतुष्टयातिरिक्ताग्निसंयोगजैकद्रव्यगुणयोगिनः, अनित्यविशेषगुणवत्त्वे सति नित्यभूतत्वात्, आकाशवदिति परिशेषादग्निसंयोगजत्वं द्रवत्वस्य सिद्धम् । तेजःपरमाणुं पु द्रवत्वम् अग्निसंयोगजम्, उदकानधिकरणत्वे सति परमाणुद्रवत्वात्, पार्थिवपरमाणुद्रवत्ववदिति ।

[व. टी.] आद्येति । द्वितीयस्यन्दनासमवायिकारणे वेगेऽतिव्याप्तिवारणाय आद्येति । नोदनादावतिव्याप्तिनिरासाय स्यन्दनेति । अदृष्टादावतिव्याप्तिवारणाय असमवायीति । सैत्वे तत्सजातीये घटादावतिव्याप्तिवारणाय अत्यन्तेति । गुणत्वसाक्षाद्वाप्यजात्या साजात्यं विवक्षितम् । तेन रूपद्रव्यत्वान्यतरत्वेन तत्सजातीयेरूपादौ नातिव्याप्तिः । अजनितस्यन्दनके द्रवत्वेऽव्याप्तिवारणाय सजातीयत्वमुक्तम् । सलिलद्रव्यगुणमिति । घटादिद्रव्यगुणे बाधवारणाय सलिलेति । सलिलपरमाणौ बाधवारणाय द्रव्यगुणमिति । उद्देश्यसिद्धये पावद्रव्यभावीति । रूपादिनार्थान्तरमङ्गाय द्रवत्वेति । तादृशद्रवत्ववत्त्वमात्रसाधने नित्यं द्रवत्वं नायात्यतो द्रवत्ववत्समवायिकार्यत्वमुक्तम् । जलशरीरद्रव्यगुणस्य द्रवत्ववत्पार्थिवपरमाणूपट्टम्भकत्वसम्भवेनार्थान्तरवारणाय समवायीति । परमाणौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । घटादौ व्यभिचारवारणाय पञ्चम्यन्तम् । सम्प्रतिपन्नवदिति । स्थलजलवदित्यर्थः । प्रकृते पञ्चधर्मताबलाद्रवत्वस्य नित्यत्वसिद्धिः । सम्प्रतिपन्नवदिति । घृतेद्रवत्ववदित्यर्थः । असलिलेति । संलिलपरमाणुद्रव्यत्वे व्यभिचारवारणाय असलिलेति । असलिलनिष्ठत्वादिति वक्तव्ये आकाशाद्येकत्वे व्यभिचारः, तदर्थं द्रवत्वत्वादित्युक्तम् । जलपरमाणुद्रवत्वे बाधवारणाय पार्थिवा इति । उभयत्र तत्सिद्धये उभयग्रहः । घृतेतद्द्रव्यगुणादिद्रवत्वे सिद्धसाधनवारणाय परमाणुत्वित्युक्तम् । परमाणुनिष्ठैकत्वादौ बाधवारणाय तच्चिष्टत्वादौ च सिद्धसाधनवारणाय द्रवत्वमुक्तम् । पार्थिवेति । घटादौ बाधवारणाय अणव इति । द्रव्यगुणे बाधवारणाय परमेति । जलादिपरमाणौ बाधवारणाय पार्थिवेति । रूपादिनार्थान्तरवारणाय अतिरिक्तान्तम् । परिमाणेनार्थान्तरवारणाय जन्यत्वमुक्तम् । दैर्घिकपरत्वादिनार्थान्तरवारणाय अग्निसंयोगेति । अदृष्टवदात्मसंयोगेनार्थान्तरवारणाय अग्नीति । उद्देश्यसिद्धये संयोगेति । यद्वा यथोक्तविशेषणविशेष्यभावेन वैयर्थ्यम्, अग्निसंयोगजं विभागनार्थान्तरवारणाय एकद्रव्येति । अव्यासजन्यवृत्तित्वं तदर्थः । रूपध्वंसेनार्थान्तरवारणाय गुणेति । यद्वा संयोगजसंयोगेनार्थान्तरवारणाय एकद्रव्येति ।

१ अग्नीति नास्ति घ. २ परमाणुद्रवत्वमिति सु. ३ द्रवत्वान्यपार्थिवेति ख. ४ धारणाद्येति घ. ५ सत्येनेति छ. ६ द्रव्यान्यतरत्वेनेति च. ७ द्रवत्वमाद्येति च. ८ सलिलेति च. ९ घृतेति नास्ति छ पुनके. १० सलिलेति नास्ति छ पुनके. ११ द्रवत्वेनेति च. १२ तदेति नास्ति च पुनके. १३ जलपरमाणाविति च. १४ परिमाणादिनेति च. १५ द्रव्यगुणमिति च. १६ पट्टिरियं नास्ति छ पुनके. १७ संयोगजन्येति च.

अग्निसंयोगजक्रियाश्रयत्वेनार्थान्तरवारणाय गुणेति । जलपरमाणौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । विशेषपदं विनैव व्यभिचारः । अनित्यविशेषपदन्त्वसम्भवि, विशेषपदार्थस्य नित्यत्वात् । यदि विशेषपदेन पदार्थविशेष उच्यते, तदाप्यनित्यगुणवत्वमादाय स एव व्यभिचारः । आत्मनि व्यभिचारमङ्गाय भूतत्वादिति । यद्यपि विषयनयाग्निसंयोगजन्यज्ञानाश्रयत्वमात्मन्येव, तथापि वह्निसंयोगासमवायिकारणत्वघटितं वह्निसंयोगासाधारणकारणत्वघटितं वा साध्यं तत्र नास्ति, तेन विशेषणेन विना व्यभिचारस्स्यादेव । गुणपदस्य कृत्यदशायां गुणध्वंसेनार्थान्तरवारणाय द्वितीयसाध्यमादायोक्तम् । प्रथमे वा साध्ये उक्तं कृत्यान्तरं बोध्यम् । घटादौ व्यभिचारवारणाय नित्येति । वंशादावग्निसंयोगजचटचटाद्यब्दमादाय वाचास्य दृष्टान्तता । तैजसेति । द्रवत्वमात्रपक्षत्वे घृतादिद्रवत्वे बाधः । तैजसद्रवत्वपक्षीकरणे तैजसश्चणुकादिद्रवत्वे बाधः । तैजसपरमाणुनिष्ठरूपादेरपि पक्षत्वे बाधः । अतो विशिष्टस्य पक्षताजन्यत्वमात्रसाधने सिद्धसाधनं, संयोगजन्यत्वसाधनेऽदृष्टवदात्मसंयोगेनार्थान्तरम्, अतः अग्नीत्यादि । असमवायिकारणत्वसिद्धये संयोगेति । उदकमनधिकरणं यस्य तत्त्वे सतीत्यर्थः । जलद्रवत्वे व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । श्चणुकादिद्रवत्वे व्यभिचारवारणाय परमाण्विति ।

[अ. टी.] स्रन्दनं क्षरणं तत्कारणं सजातीयं द्रवत्वंमित्युक्ते ईश्वरप्रयत्नादावतिव्याप्तिस्सादतः असमवायिपदम् । तथापि सत्तादिना तत्सजातीयसंयोगादौ व्यभिचारस्सादतः अत्यन्तपदम् । उत्तरस्रन्दनासमवायिकारणे पूर्वस्रन्दनोत्थसंस्कारे व्यभिचारवारणार्थम् आद्यपदम् । सद्यःशुष्कं द्रवत्वं क्षरणकारणं न भवतीत्यव्याप्तिनिरासार्थं सजातीयग्रहणम् । अयावद्रव्यमायिद्रवत्ववत्समेवतत्वेन सिद्धसाधनता मा भूदित्यत उक्तम् यावद्रव्येति । सम्प्रतिपन्नः स्थूलो जलावयवी । अनित्ये प्रमाणमाह-पार्थिवेति । सम्प्रतिपन्नं सुवर्णकाष्ठादिद्रवत्वं काष्ठाग्निसंयोगजद्रवत्वस्य प्रत्यक्षत्वेऽग्निपरमाणुषु तस्य किं गमकं तदाह-पार्थिवाः परमाणव इति । अग्निसंयोगजक्रियायोगित्वेन सिद्धसाधनतावारणाय गुणपदम् । तर्हि संयोगजसंयोगाश्रयत्वेन सिद्धसाधनता सादत एकद्रव्यपदम् । तर्ह्यग्निसंयोगजरूपाद्याश्रयत्वेन सिद्धसाधनता, तत उक्तं रूपादिचतुष्टयातिरिक्तेति । भूतत्वादित्युक्ते सलिलश्चणुकादौ व्यभिचारवारणार्थं नित्यपदम् । तर्हि सलिलादिपरमाणुषु व्यभिचारस्तत उक्तम् अनित्यविशेषगुणवत्त्वे सतीति । एतावत्युक्ते आत्मनि व्यभिचारस्सादत उक्तं नित्यभूतत्वादिति । द्रवत्वादित्युक्ते सलिलश्चणुकादिद्रवत्वे व्यभिचारस्सादत उक्तं परमाणुत्वादिति । एतावत्युक्ते सलिलपरमाणुद्रवत्वे व्यभिचारस्सादत उक्तम् उदकानधिकरणत्वे सतीति । द्रवत्वादित्युक्ते तैलादिद्रवत्वे

१ सत्त्वेनेति च. २ विशेषवत्वमिति च. ३ लभ्यत इति च. ४ तथापीति च. ५ कारणघटितमिति च. ६ नाम्नीति इति च. ७ उत्पद्येति च. ८ द्वितीयेति नास्ति च पुनरे. ९ प्रथमसाधनेति च. १० संयोगजन्येति च. ११ कीदृशत्वेति च. १२ जलेति च. १३ द्रवत्वमिति । प्रत्यक्षेति ह. १४ काष्ठादिव्यतीति ट. १५ प्रत्यक्षत्वेऽपीति ज, ट. १६ सलिलादाविति ट.

व्यभिचारस्यादतः परमाणुग्रहणम् । तैर्लादिपरमाणुद्रवत्वे व्यभिचारवारणाय तदन्यत्वे सतीति द्रष्टव्यम् ।

[वा. टी.] आद्येति । रूपनिवारणाय स्यन्दनेति । द्वितीयम्यन्दनजनप्रपञ्चमस्यन्दननिवारणार्थम् आद्येति । उत्पन्ननष्टद्रवत्वेऽव्याप्तिनिवारणाय सजातीयेति । घटनिवारणाय अत्यन्तेति । संयोगनिवारणाय एकवृत्तीति द्रष्टव्यम् । सलिलव्यापुकमिति । सिद्धसाधनतापरिहाराय यावद्द्रव्यभावीति । आप्यपरमाणुनिरास्य कार्यत्व इति । सुखादिनिवृत्त्यर्थं सलिलेति । पार्थिव्य इति । सामान्यादिना सिद्धसाधनतापरिहाराय गुण इति । संयोगेन सिद्धसाधनतापरिहाराय एकद्रव्येति । संख्यादिना सिद्धसाधनतापरिहाराय अग्निसंयोगजेति । रूपादिनिवृत्तये रूपादिचतुष्टयव्यतिरिक्तेति । आप्यव्यपुकनिवृत्तये नित्येति । सलिलाणुनिवृत्तये अनित्यविशेषगुणवत्त्वे सतीति । आत्मनिवारणाय भूतत्वादिति । शब्दादिना दृष्टान्तलभः । सलिलाणुनिवृत्तये बुदकानधिकरणत्वे सतीति ।

*

(स्नेहलक्षणम्, तस्य यावद्द्रव्यभावित्वञ्च)

घनोपलगतद्वीन्द्रियग्राह्यविशेषगुणालयान्तसजातीयः स्नेहः । स च यावद्द्रव्यभावी, अम्भोविशेषगुणत्वात्, रूपवत् । परगतविशेषानपेक्षया पृथिव्यादीनामन्योन्यव्यवच्छेदको गुणो विशेषगुणः ।

[व. टी.] घनेति । घनो मेघः, तद्रूपलः करकः यद्वा घनः प्रतिबद्धसांसिद्धिकद्रव्यत्वं । सांसिद्धिकद्रव्यत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गतान्तम् । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय द्वीन्द्रियेति । लिङ्गद्रव्यादिग्राह्यरूपादिकेऽतिव्याप्तिवारणाय इन्द्रियेति । एवमपि रूपादावतिव्याप्तिवारणावेन्द्रियगतं द्रित्वमुक्तम् । संख्यादावतिव्याप्तिवारणाय विशेषेति । एवं पदार्थविशेषे संख्यादावेवातिव्याप्तिवारणाय गुणेति । अग्राह्ये स्नेहेऽव्याप्तिवारणाय सजातीयत्वमुक्तम् । गुणत्वादिना तत्सजातीये रूपादावतिव्याप्तिवारणाय अत्यन्तेति । गुणत्वसाक्षाद्याप्यजात्या साजात्यमुक्तम् । गुणत्वव्याप्यजात्यव्याप्यस्नेहरूपान्यतरत्वादिना कृत्वा, रूपादावतिव्याप्तिवारणाय जात्या साजात्यमुक्तम् । स्नेहत्वं जातिरूपनावच्छेदिका । स चेति । द्वित्वादौ व्यभिचारवारणाय विशेषेति । शब्दादौ व्यभिचारवारणाय अम्भ इति । गुणपदकृत्यं पूर्ववत् । ननु स्नेहलक्षणे विशेषगुणेति यदुक्तं, तर्दसत् ; स्नेहस्यैकमावेन्द्रियग्राह्यजातिमत्त्वाभावात् । अतोऽन्यादृशं विशेषगुणत्वं निर्वर्त्तितं परगतेति । परत्वमपि भूतममूर्तादन्यतो भेदयति । अतः अन्योन्येति । परत्वं न पृथिवीं जलाद्भेदयति, परत्वस्य विषये जलादावपि सत्त्वात् । पाकजरूपसमानाधिकरणपरत्वं भेदयत्येव । अतस्तृतीयान्तम् । यन्मते व्यर्थविशेषणस्यापि व्यवच्छेदकता, तन्मत इदम् ।

१ पट्टित्यं नास्ति ज, ह शुक्लकरोः । २ यहिमिन्द्रियेति सु. ३ समावग्राणीय इति घ. ४ चेति नास्ति क. ५ विवक्षितमिति च. ६ असद्व्यतिथि च. ७ यदमिदं नास्ति छ पुष्कोः. ८ व्यवच्छेदकतेति मठमिति छ.

अत एवैतदेकत्वादौ नातिव्याप्तिः, तस्य परमतैकत्वरूपविशेषापेक्षत्वात् । पृथिवीत्वादावतिव्याप्तिवारणाय गुणपदम् । यत्तु ह्रस्वादेः परगतदीर्घत्वादिविशेषापेक्षया व्यवच्छेदकत्वाच्चत्रातिव्याप्तिवारणाय तृतीयान्तेति, तन्न; अन्योन्यत्वादिनैव तद्व्यवच्छेदात् । ह्रस्वत्वस्य जलपरमाण्वादिविषयगतत्वात्, आकाशपेक्षया परत्वस्य, मूर्तापेक्षया शब्दस्य वान्योन्यव्यवच्छेदकत्वात् परत्वेऽतिव्याप्तिरतः पृथिव्यादीनामित्युक्तम् एतेनैकैकद्रव्यविभाजकोपाध्याक्रान्तव्यवच्छेदकता प्राप्ता । अधिकं वर्द्धमानप्रकाशे बोध्यम् ।

[अ. टी.] गुणसजातीयस्नेह इत्युक्ते सत्तादिना गुणसजातीये द्रव्यादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् अत्यन्तेति । संख्यादौ व्यभिचारवारणार्थं विशेषपदम् । शब्दबुद्ध्यादौ व्यभिचारनिरासार्थं घनोपलगतित्युक्तम् । घनो मेघः, तदुपलः करकः । घनोपलगतविशेषगुणात्यन्तसजातीयस्नेह इत्युक्ते रूपादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् द्वीन्द्रियग्राह्येति । स्नेहस्य चक्षुःस्पर्शनान्यां गृह्यमाणत्वाद्दीन्द्रियग्राह्यत्वम् । द्वीन्द्रियग्राह्यविशेषगुणात्यन्तसजातीयस्नेह इत्युक्ते सांसिद्धिकद्रवत्वे व्यभिचारस्स्यादतो घनोपलगतित्युक्तम् । शब्दादौ व्यभिचारवारणार्थम् अम्भोविशेषगुणत्वादित्युक्तम् । ननु कोऽसौ विशेषगुण इत्यत आह—परगतेति । पृथिव्यादीनां गुणो विशेषगुण इत्युक्ते संख्यादावतिव्याप्तिः स्यादत उक्तम् अन्योन्यव्यवच्छेदक इति । तर्हि ह्रस्वादेः परगतविशेषानपेक्षतयेत्युक्तम् । ह्रस्वादेः परगतदीर्घत्वादिविशेषापेक्षया व्यवच्छेदकत्वान्नोक्तदोषः । पृथिव्यादीनामन्योन्यव्यवच्छेदकाः पृथिवीत्वादयोऽपि भवन्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं गुणपदम् ।

[वा. टी.] घनोपलेति । संगोगनितारणाय विशेषेति । रूपनितारणाय द्वीन्द्रियग्राह्येति । सलिलद्वयवनिवृत्तये घनोपलगतेति । घनोपलः करकः । (स्नेहे ?) अव्याप्तिनिरासय सजातीय इति । घटनिरासय अत्यन्तेति । परगतेति । संगोगनिरासय अन्योन्येति । सामान्यनिरासय गुण इति । ह्रस्वत्वनिरासय परगतेति ।

*

(संस्कारलक्षणम्, तद्विभागः तत्र वेगश्च)

गुणत्वावान्तरजात्या वेगसजातीयः संस्कारः । स त्रेधा—वेगादिभेदेन । क्रियासमवायिकारणैकद्रव्यात्यन्तसजातीयो वेगः । वेगत्वं क्रियासमवायिकारणैकद्रव्यसमानाधिकरणं, स्पर्शवज्जातित्वात्, सत्तावदिति वेगसिद्धिः । स द्विविधः—वेगजः क्रियाजश्चेति । वेगत्वं वेगासमवायिकारणवृत्ति, वेगजातित्वात्, सत्तावदिति वेगजवेगसिद्धिः । वेगत्वं कर्मासमवायिकारणवृत्ति, वेगजातित्वात् सत्तावदिति कर्मजवेगसिद्धिः ।

१ विशेषगमिति घ. २ पद्धिरियं नास्ति छ पुच्छके. ३ द्रव्येति क. ४ दीपव्यमिति क, ख, ग, घ. ५ द्वेपेति क, ग.

[व. टी.] गुणत्वेति । गुणत्वेन रूपेण वेगसजातीये रूपादावतिव्याप्तिवारणाय गुणत्वावान्तरेत्युक्तम् । वेगरूपान्यतरत्वादिना रूपादावतिव्याप्तिवारणाय जात्येत्युक्तम् । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय वेगेति । भावनास्थितिस्थापकयोरव्याप्तिवारणाय सजातीयेति । न चात्माश्रयः, संस्कारत्वेन लक्ष्यत्वात्, वेगत्वेन लक्षणप्रवेशात्, येन रूपेण लक्ष्यता तेन रूपेण लक्ष्यस्य लक्षणशरीरे प्रवेशे आत्माश्रयात् । क्रियेति । सजातीयरूपमपि.....यत्किञ्चिदसमवायिकारणसजातीयं रूपमपि (?) अतः क्रियेति । क्रियानिमित्तकारणसजातीयेऽदृष्टादावतिव्याप्तिवारणाय असमवायीति । गुणत्वादिना सजातीये रूपादावतिव्याप्तिवारणाय तान्तम् । अननितकर्मके वेगेऽव्याप्तिवारणाय सजातीयत्वम् । नोदनादावतिव्याप्तिवारणाय एकद्रव्येति । अनेन लक्षणेन वेगत्वं जातिरेव लक्षणत्वेन (न?) सूच्यते । यद्वा गुरुत्वादिभिन्नत्वं सतीति दैयम् । यद्वा स्पन्दनपतनभिन्ना क्रिया विवक्षिता । तेन (न) गुरुत्वादावतिव्याप्तिः । यद्वा तदेकद्रव्यं सौरतेजोनिष्ठत्वेन विवक्षणीयम् । यद्वा क्रिया असमवायिकारणं यस्येति बहुव्रीहिः । सूर्यक्रियाजनितरूपादावतिव्याप्तिवारणाय असमवायीति । संयोगादिनार्थान्तरवारणाय एकद्रव्येति । आत्मत्वे व्यभिचारवारणाय स्पर्शवदिति । वेगरहिते घटे व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति । तादृशगुरुत्वसामानाधिकरण्येन सत्तायां साध्यसिद्धिः । वेगज इति । वेगवतः कयादिनारब्धे घटादौ वेगजवेगो बोध्यः । कर्मासमवायिकारणवृत्तित्वेनार्थान्तरवारणाय वेगेति । उद्देश्यसिद्धये असमवायीति । घटत्वादौ व्यभिचारवारणाय वेगेति । वेगासमवायिकारणत्वरहितवेगवृत्तित्वात् । वेगत्वादौ व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति । सत्तायां वेगजन्यकर्मवृत्तित्वेन साध्यसिद्धिः । कर्मेति । वेगजन्यवेगवृत्तित्वेनार्थान्तरवारणाय कर्मेति । उद्देश्यसिद्धये असमवायीति । घटत्वादौ व्यभिचारवारणाय वेगेति । वेगासमवायिकारणकवेगत्वे व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति । ननु वेगे वेगासमवायिकारणकत्वावच्छेदकमसमवायिकारणतावच्छेदकञ्च जातिद्वयमस्ति । तथा चानुमानद्वये व्यभिचार इति चेन्न; तत्रोपाध्योरेव कारणकत्वावच्छेदकत्वे जाल्योर्मानाभावात् । वेगजन्यत्वकर्मजन्यत्वावच्छिन्नेति विशेषणमिति वेगत्वाव्याप्यवेगवृत्तिजातित्वस्य हेतुत्वाद्वा ।

[अ. टी.] सत्तादिना वेगसजातीयत्वं द्रव्यादेरप्यस्तीति गुणत्वावान्तरजात्येत्युक्तम् । वेगः स्थितिस्थापको भावना चेति त्रैधा संस्कारः । क्रियां प्रत्यक्षसमवायिकारणमिति विग्रहः । क्रियासमवायिकारणजातीयो वेग इत्युक्ते "संयोगे व्यभिचारः स्यादत

१ गुणवेगसजातीयेति च. २ इत्युक्तमिति च. ३ इत आरभ्य तेन रूपेणेत्यन्तो भागो नामि च पुनरे. ४ अपीत्यनन्तरम् अतोऽन्यनान्तरम् इति च. ५ कारणेति नामि छ पुनरे. ६ तत्तमानादी इति च. ७ पतनक्रियामिच्छक्रियेति च. ८ इत आरभ्य यद्विद्वत्वं नामि च पुनरे. ९ घटत्वादीति छ. १० कारणेति च ११ कारणतावच्छेदकत्व इति च. १२ वेगेत्यारभ्य विशेषणमितीत्यन्तं नामि छ पुनरे. १३ सत्तादिनेति छ. १४ कारणं यस्य स इति ट. १५ संयोगादाविति ज, ट.

एकद्रव्यपदम् । क्रियासंभवाधिकारणकैकद्रव्यमात्रनिष्ठेन वेगेन सत्तागुणत्वाभ्यां सजातीय-
रूपादौ व्यभिचारवारणाय अत्यन्तपदम् । गुरुत्वान्यत्वे सतीति ज्ञेयम् । दीप्तये सत्येक-
द्रव्यसमानाधिकरणमित्युक्ते रूपादिसमानाधिकरणत्वेन सिद्धसाधनता स्यादतः क्रिया-
समवायिकारणपदम् । संयोगादिना समानाधिकरणत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थमेक-
द्रव्यपदम् । जातिव्यमात्मत्वे व्यभिचरतीति स्पर्शवत्पदम् । एवं प्रमाणवत्तादेवविध-
गुणसामानाधिकरण्ये दीप्त्यस्य सिद्धे दीपोऽगुरुः पतनाधारत्वात्संमतवदिति गुरुत्वसामा-
नाधिकरण्यप्रतिपेधे परिशेषाद्वेगसिद्धिः । सत्ताया गुरुत्वासमवायिकारणकपतनक्रियां
प्रत्यसमवायिकारणगुरुत्वसमानाधिकरणत्वेनोक्तसाध्यवर्त्ता । वेगो वेगवद्भिः पूर्वपूर्वजलावय-
विभिरारभ्यमाणेषु कारणवेगपूर्वको ज्ञातव्यः । सत्ताया वेगजन्यक्रियाविशेषवृत्तित्वेन साध्य-
वर्त्ता । रूपादौ व्यभिचारवारणार्थं वेगजातित्वादित्युक्तम् ।

[वा. टी.] गुणत्वेति । घटनिवृत्तये अद्यान्तरेति । रूपनिवृत्तये गुणत्वेति । संयोगनिवृ-
त्तये एकद्रव्येति । परत्वनिवृत्तये क्रियेति । क्रियाया असमवायिकारणमिति विग्रहः । अव्याप्ति-
निवारणाय सजातीयेति । घटनिवृत्तये अत्यन्तेति । वेगत्वेनेत्यर्थः । आत्मनिवृत्तये स्पर्शव-
दिति । पतनक्रिया समवायेकद्रव्यगुरुत्वसमानाधिकरणत्वेन दृष्टान्तसिद्धिः । घटनिवृत्तये वेगेति ।
वेगासमवायिकारणकर्मवृत्तित्वेन दृष्टान्तलाभः ।

(स्थितिस्थापकः भावना च)

यावद्रव्यभावी संस्कारः स्थितिस्थापकः । सुवर्णं यावद्रव्यभावि,
अतीन्द्रियवद्भनावयत्वात्, सूचीवदिति तस्सिद्धिः ।

संस्कारः पुरुषगुणो भावना । संस्कारत्वं पुरुषगुणवृत्तिः, "स्थितिस्था-
पकवेगजातित्वात् सत्तावदिति भावनासिद्धिः ।

[वा. टी.] यावदिति । वेगभावनयोरतिव्याप्तिवारणाय व्यन्तम् । रूपादावतिव्या-
प्तिर्भङ्गाय संस्कारत्वमुक्तम् । सुवर्णमिति । आकाशद्वित्वतत्संयोगादिनार्थान्तरवा-
रणाय व्यन्तम् । रूपादिनार्थान्तरवारणाय वदन्तम् । द्रव्यत्वमात्रमत्र हेतुः । तेन न
व्यर्थता ।

वेगादावतिव्याप्तिवारणाय पुरुषेति । सुखादावतिव्याप्तिनिरासाय संस्कार
इति । संस्कारत्वमिति । वेगादिवृत्तित्वेनार्थान्तरवारणाय पुरुषगुणेति । घटत्वे

१ वारणार्थमिति ट. २ सतीति नास्ति झ, ट. ३ दीप्त्यमेव द्रव्येति ज, ट. ४ पूर्वमित्यारभ्य
वेगसिद्धिरित्यन्तं नास्ति ट पुस्तके. ५ सप्रतिपक्षवदित्यर्थ इति ज, ट पुस्तकयोः द्विष्यन्तौ. ६ पदमिदं नास्ति
ज, ट. पुस्तकयोः. ७, ८ साध्यवत्त्वमिति दृष्टान्तसिद्धिरिति ट. ८ पूर्वपूर्वत्वेति ट. १० रूपवादाविति ट.
११ भाविसंस्कार इति मु. १२ स्थितेति क, ख, ग. १३ तादिति नास्ति ग, घ पुस्तकयोः. १४ स्थितेति
क, ख, ग. १५ वारणार्थेति च. १६ इतः पदत्रयं नास्ति च पुस्तके. १७ सूच्या गुरुत्वेन साध्यवर्त्ता
संस्कार इत्यधिकं च पुस्तके.

व्यभिचारवारणाय वेगेति । वेगत्वे व्यभिचारवारणाय स्थितिस्थापकेति । स्थिति-
स्थापकत्वे व्यभिचारवारणाय वेगेति । वेगस्थितिस्थापकान्यतरत्वे व्यभिचारवारणाय
जातित्वादिति । सुखादिवृत्तित्वेन सत्तायां साध्यसिद्धिः ।

[अ. टी.] यावद्रव्यभावी रूपादिरपि भवतीति संस्कारपदम् । वेगभावनयोर्व्यवच्छेदार्थं
यावद्रव्यभावीति । सुवर्णमतीन्द्रियवदित्युक्ते गगनादिसंयोगवत्त्वेन सिद्धसाधनता
स्यादतो यावद्रव्यभावविग्रहणम् । यावद्रव्यभावि रूपादिमत्त्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थम्
अतीन्द्रियवदित्युक्तम् । सूच्या गुरुत्वयोगात्साध्यवत्ता । पुरुषगुणो भावनेत्युक्ते
बुध्यादावन्तिव्याप्तिः स्यादतस्तसंस्कारपदम् । वेगस्थितस्थापकयोर्व्यवच्छेदार्थं पुरुषगुणे-
त्युक्तम् । स्थितस्थापकत्ववेगत्वयोरेकैकत्र व्यभिचारवारणार्थं स्थितस्थापकवेग-
जातित्वादित्युक्तम् ।

[या. टी.] वेगनिवृत्तये यावद्रव्येति । रूपनिवृत्तये संस्कार इति । सुवर्णमिति । ननु
घनत्वव्यवृत्त्यं किं गुणव्यवृत्त्यम् ? निविडाव्यवृत्त्यं वा ? आद्ये हेत्वसिद्धिः । न हि तेजसि गुणव्यव-
त्त्वमस्ति । द्वितीयेऽपि किं बहुव्यवृत्त्यम् ? अन्यद्वा ? आद्ये प्रभाषामनैकान्तः, बहुपदवैयर्थ्यञ्च
व्यावर्त्तभावात् । द्वितीयेऽसम्भवः, निरूपयितुमशक्यत्वात् । किञ्च सूच्यासौख्यसत्त्वेनोक्तगुणाभावात्
दृष्टान्तोऽपि साध्यविकल इत्यसङ्गतमिदमनुमानमिति चेत्—न; घनत्वं नाम द्रव्यत्वयोग्यत्वेऽपि
घनोपलब्धदनुद्भूतद्रवत्वम्, तथाभूता अवयवा यस्तेति तत्तथा, तस्य भावस्तस्य तस्मात् ।
तथाचेदमुक्तं भवति—द्रवत्वव्यवृत्त्ययोग्यद्रवत्वादिति । न च सूचीवदिति दृष्टान्तोऽपि साध्यविकलः ।
सूचीनाम सूक्ष्मस्तीक्ष्णशलाकापरपर्यायो द्रव्यविशेषः । स च लोहविकारवत्पर्यायद्रव्यविशेषविका-
रोऽपि सम्भवतीति स एवास्तु दृष्टान्त इति सर्वं सुखम् । दिक्संयोगनिवृत्तये यावद्रव्यभावीति ।
रूपनिवृत्तये अतीन्द्रियवदिति (१) । रूपनिवृत्तये पुरुषेति । सुखनिवारणाय संस्कार
इति । संस्कारत्वमिति । घटत्वनिवृत्तये वेगेति । विगतत्वनिवृत्तये स्थितस्थापकेति ।
स्थितस्थापकनिवृत्तये वेगेति । इदं हि पुरुषगुणवृत्ति तदा भवेत् यदि कोऽपि संस्कारभेदः
पुरुषगुणस्यादिति भावानासिद्धिः । दृष्टान्ते बुध्यादिवृत्तित्वेन सिद्धिः ।

(धर्माधर्मौ)

अतीन्द्रियः पुरुषैकवृत्तिः सुखहेतुधर्मः ।

अतीन्द्रियः पुरुषैकवृत्तिर्दुःखहेतुरधर्मः । तत्र प्रमाणम्—विमतं मूर्त-
द्रव्यचलनं पुरुषगुणकारितं, क्रियात्वात्, कलेवरचलनवदिति ।

[व. टी.] अतीन्द्रिय इति । गुरुत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय सुखहेतुरिति । आत्ममनस्संयोगेऽतिव्याप्तिवारणाय पुरुषैकवृत्तिरिति । अतएव विषये नातिव्याप्तिः । विषयसाक्षात्कारेऽतिव्याप्तिवारणाय अतीन्द्रिय इति । सुखासाधारणकारणत्वं धर्मत्वं वा धर्मस्य लक्षणान्तरमूहम् ।

दुःखहेतुरिति । इदं विशेषणं भावनादावतिव्याप्तिनिरासाय । द्वेषसाक्षात्कारेऽतिव्याप्तिनिरासाय अतीन्द्रिय इति । अतीन्द्रियविषये ज्ञायमानतया दुःखहेतावतिव्याप्तिनिरासाय पुरुषवृत्तिर्त्वेम् । आत्ममनस्संयोगेऽतिव्याप्तिनिरासाय एकेति । दुःखासाधारणकारणत्वं चाधर्मत्वमिति लक्षणान्तरमूहम् । विमतमिति । स्पर्शवद्देगवद्द्रव्यसंयोगाद्यजन्यञ्चलनमित्यर्थः । अत एव न पक्षे द्रव्यपदवैयर्थ्यम् । न वा मूर्तपदवैयर्थ्यम् । प्रयत्नासाधारणकारणकत्वरहितचलनस्यैव पक्षत्वात् । ईश्वरगुणकारित्वेनार्थान्तरवारणाय पुरुषपदं जीवपरम् । प्रयत्नकारित्वेन कलेवरचलनस्य दृष्टान्तता ।

[अ. टी.] अतीन्द्रियो धर्म इत्युक्ते गुरुत्वादौ व्यभिचारस्स्यात् अतः पुरुषपदम् । आत्ममनस्संयोगेऽतिव्याप्तिनिरासार्थम् एकपदम् । आत्मनिष्ठसंस्कारे व्यभिचारवारणाय सुखहेतुरित्युक्तम् ।

सुखहेतुकदलीफलादिव्यवच्छेदार्थं पुरुषवृत्तिपदम् । तथापीद्वस्तुसाक्षात्कारे व्यभिचास्स्यादत उक्तम् अतीन्द्रिय इति । धर्मेऽतिव्याप्तिनिरासाय दुःखहेतुपदम् । अनिष्टवस्तुतत्साक्षात्कारयोर्व्यावर्तनाय पुरुषवृत्त्यतीन्द्रियपदे । मूर्तद्रव्यं वाद्यादि । तस्मानुक्त्यप्रातकृत्याभ्यां चलनम् । ईशगुणकारित्वेन सिद्धसाधनताव्युदासाय पुरुषपदम् । शरीरचलनं पुरुषगुणप्रयत्नकारितम् ।

[वा. टी.] अतीन्द्रिय इति । आत्ममनस्संयोगनिवारणाय पुरुषैकवृत्तिरिति । प्रयत्ननिवारणाय अतीन्द्रिय इति । भावनानिवारणाय सुखहेतुरिति । धर्मनिवारणाय दुःखेति । विमतमिति । ईशगुणकारित्वेन सिद्धसाधननिवृत्तये पुरुषेति । पुरुषश्चात्र क्षेत्रज्ञः । दृष्टान्ते प्रयत्नेन सिद्धिः । पक्षेऽनुपपत्त्यादृष्टसिद्धिः ।

✽

(शब्दलक्षणम्, तस्यानित्यत्वं गुणत्वञ्च)

ओत्रैकग्राह्यजातिमान् शब्दः । सोऽनित्यः, महाभूतविशेषगुणत्वात्, घटरूपवदित्यनित्यत्वसिद्धिस्तस्यै । शब्दो गुणः कर्मान्यत्वे सति सामान्यैकाश्रयत्वात् रूपवदिति नासिद्धो हेतुः ।

१ वारणायेति घ. २ जायमानेति च. ३ उक्तमिति घ. ४ कारणत्वमधर्म्यञ्चेति छ. ५ इदं पदत्रयं भाषि छ पुस्तके. ६ पदमिति ट. ७ मूर्तत्वं वाद्यादिति ट. ८ स्थलनमिति झ. ९ त्वे चेति ट. १० पदेति मु. ११ त्वेति नास्ति क पुस्तके.

[ब. टी.] श्रोत्रेति । चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमति रूपेऽतिव्याप्तिवारणाय श्रोत्रेति । श्रोत्रग्राह्यगुणत्वादिति रूपादावतिव्याप्तिवारणाय एकेति । श्रोत्रग्राह्यशब्दवति गगनेऽतिव्याप्तिवारणाय जातिपदम् । श्रोत्रग्राह्ये शब्देऽव्याप्तिवारणाय जातिमानिति । स इति । जलपरमाणुरूपे व्यभिचारवारणाय महेति । ईश्वरज्ञाने व्यभिचारवारणाय भूतेति । नित्यपरिमाणे व्यभिचारवारणाय विशेषेति । शब्द इति । कर्मणि व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । सामान्यादौ व्यभिचारवारणाय सामान्याश्रयत्वम् । द्रव्ये व्यभिचारनिरासाय एकेति । समवायसम्बन्धेन जातिमानाश्रयत्वमिति विशेष्यार्थः । तेन सम्बन्धान्तरेणाभिधेयत्वादिसत्त्वेऽपि न क्षतिः । नासिद्ध इति । महाभूतविशेषगुणत्वादिति हेतुर्नासिद्ध इत्यर्थः । शब्दस्य विशेषगुणत्वमनुमानान्तरसिद्धमेव ।

[अ. टी.] द्रव्यादिव्यवच्छेदार्थं श्रोत्रग्राह्यजातिमानित्युक्तम् । श्रोत्रग्राह्यसत्तायोगी द्रव्यादिरपि, अत एकपदम् । विशेषगुणत्वादित्युक्त ईश्वरप्रयत्नादौ व्यभिचारस्यादतो महाभूतपदम् । महाभूतशब्दोऽत्यन्तोद्भूतत्वमैन्द्रियकत्वं धोतयतीति न जलपरमाण्वादिविशेषगुणेषु व्यभिचार इति द्रष्टव्यम् । ननु शब्दस्य गुणत्वमेवासिद्धम्, दूरत एव विशेषगुणत्वम् । तत्राह—शब्दो गुण इति । सामान्यादौ व्यभिचारवारणाय सामान्याश्रयत्वादित्युक्तम् । तर्हि द्रव्ये व्यभिचारस्यादत उक्तम्, एकेति । तथापि कर्मणि व्यभिचारस्यादतः कर्मान्यत्वपदम् ।

[वा. टी.] श्रोत्रेति । रूपनिवृत्तये श्रोत्रग्राह्येति । श्रोत्रग्राह्यसत्ताजातिमति घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय एकेति । शब्दस्वनिवृत्तये जातीति । सोऽनित्य इति । गगनपरिमाणनिवृत्तये विशेषेति । आप्याणुरूपनिवृत्तये महाभूतेति । महाभूतं महत्त्वाधिकारं भूतमित्यर्थः । ननु गुणत्वमेवासिद्धं दूरे विशेषगुणत्वमत आह—शब्दो गुण इति । सप्तम् । विशेषगुणत्वञ्च नियमेनाश्रयोपलम्भमन्तरेणोपलम्भमानत्वाद्विषयम् ।

*

(शब्दस्य नित्यत्वशङ्का तत्परिहारश्च)

शब्दो नित्यः, अपसिद्धजनित्यभूतविशेषगुणत्वत्वात्, सलिलपरमाणुरूपवदित्यन्यव्यतिरेकिणा सत्प्रतिपक्ष इति चेत्—न; अस्य दूषणस्य घञ्चनीयत्वाभावादपसिद्धान्तात् । किञ्च कोऽयं व्यतिरेकोऽस्य हेतोः । किं विपक्षेऽभावोऽन्यो वा ? नायः, अपसिद्धान्तप्रसङ्गात् । अन्यश्चेद्विविच्य वाच्यः । दृश्ये प्रतियोगिनि हेतौ सार्यमाणे विपक्षोपलम्भः, ततो व्यावृत्तिरिति चेत्—न; अनुभूयमाने तस्मिन् विपक्षे पश्यतोऽयं हेतुर्न स्यात् ।

१ अनुमानान्तरादिति च. २ योगित्वव्याघापीति ज, द. ३ शब्दोत्पन्नो भूतत्वमिति श. ४ वारणार्थमिति ज, द. ५ इत्यत इति ज, द. ६ अन्यत्वे सतीति विशेषणमिति द. ७ घञ्चनार्थेन सु. ८ अपसिद्धान्त इति क. ९ किञ्चेति भास्ति क पुन्यके. १० हेतोरिति घ.

ततोऽननुभूयमाने तस्मिन् विपक्षोपलम्भः, ततो व्यावृत्तिरिति चेत्-न;
 प्रमेयत्वादीनां गर्भकत्वप्रसङ्गादनैकान्तिकोच्छेदप्रसङ्गात्, अनुमितानु-
 मानोच्छेदप्रसङ्गाच्च । ततो व्यतिरेकासिद्धिः । विपक्षे हेतुविशेषणे च दूषण-
 मिदमूहम् । तस्मात्पूर्वो हेतुरेव । शब्दस्य द्रव्यत्वसाधकं प्रमाणमप्रमा-
 णम् । निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वं साक्षादिन्द्रियसम्बन्धेन प्रतीयमानत्वञ्च
 व्यर्थविशेषणं मन्तव्यम् ।

[व. टी.] शब्द इति । वर्णात्मकशब्द इत्यर्थः । तेन न ध्वनिमादाय बाधः । वर्ण-
 पदवाच्यं रूपमादाय बाधं वारयितुं शब्दपदम् । पृथिवीपरमाणुरूपादौ व्यभिचारवा-
 रणाय अपाकजेति । नित्यभूतनिष्ठद्वित्वादौ व्यभिचारवारणाय विशेषेति । घटादि-
 रूपादौ व्यभिचारवारणाय नित्येति । मुखादौ व्यभिचारवारणाय भूतेति । नित्यस्य
 भूतस्य गुणः, न तु नित्यो गुणः, तथा सति साध्यावशिष्टापातात् । वचनीयत्वेति ।
 भवदनुमानं यद्यधिकबलं तर्ह्यबाधकमेव । यदि न्यूनबलं तदा बाध्यमेव । समबलता तु
 वेत्तुमशक्या । अस्मदनुमानेऽनुकूलतर्कस्योपलम्भः । शब्दो नष्टः कोलाहल इत्यादिप्रेती-
 तिर्न स्यादिति प्रसङ्गलक्षणस्य विद्यमानत्वेनाधिकबलत्वात् । भवदनुमानस्यानुकूलतर्का-
 भावात् । प्रतिबलतर्कत्वे हीनबलत्वात् प्रतिपक्षत्यागमितदूषणस्य वचनानर्हत्वादित्यर्थः ।
 ननु हीनबलेन सत्प्रतिपक्षतात्वमित्यत आह अपसिद्धान्तादिति । यद्वा सत्प्रतिप-
 क्षमनङ्गीकुर्वाणं प्रत्याह अस्येति । ननु महर्षेण यद्यपि सत्प्रतिपक्षो दोषत्वेन न
 प्रतिपादितस्तथापि, अधुना मयैवोद्भाव्यत इत्यत आह अपसिद्धान्तादिति । यद्वा
 त्वया शब्दस्य द्रव्यत्वमङ्गीक्रियते न तु गुणत्वमित्यन्यतरासिद्धेन कथं सत्प्रतिपक्षानु-
 मानमित्यत आह अस्येति । ननु मयैवेदानीं गुणत्वं स्वीकार्यं शब्दस्येति चेत्-न;
 अपसिद्धान्तादिति । यद्वा न तु शब्दस्य धारया नित्यधारया नित्यत्वं त्वया यद्यपि
 मन्यते, तथापि न ध्वंसप्रतियोगित्वलक्षणं नित्यत्वमित्याह अस्येति । ननु मया
 मन्यत एव ध्वंसप्रतियोगित्वलक्षणं नित्यत्वमिति चेत्-न; अपसिद्धान्तादिति ।
 नन्वहं ध्वंसप्रतियोगित्ववादी शब्दस्य गुणत्ववादी च, सत्प्रतिपक्षस्य दूषणत्ववादी च ।
 ममापि हेतौ यदि शब्दो नित्यो न स्यात्तर्हि स एवायं गकार इति प्रत्यभिज्ञायमानो न
 स्यादित्यनुकूलतर्कोऽस्तीत्यत आह किञ्चेति । अन्यव्यतिरेकी भवतोक्तस्तत्र को
 वायं व्यतिरेक इत्यर्थः । अन्यो वेति । अधिकरणतज्ज्ञानैधर्म्यतत्कालसम्बन्धपृथ-
 कत्वान्यतम इत्यर्थः । अपसिद्धान्तेति । भवतो मतेऽतिरिक्तस्याभावस्याभावादिति
 भावः । यत्तु पार्थिवपरमाणुनिष्ठानादिश्यामिक्कायां पाकजन्यायां पाकनिवर्त्यायां साध्या-
 भावसत्त्वेऽपि हेत्वभावाभावाव्यतिरेकस्योपसंहर्तुमशक्यत्वात्, व्याप्तिग्रहार्थञ्च तत्र हेत्वभा-

* १ मेवेति क, ग, घ. २ जनवत्वेति मुं. ३ जनैकान्तिकत्वेति मु. ४ प्रसङ्गाच्चेति मु. ५ चेति नास्ति
 क. ६ अप्रमाणमिति नास्ति घ. ७ सम्बन्धत्वमिति क. ८ तदेति घ. ९ आदीति नास्ति घ. १० अनिष्ट-
 प्रसङ्गेति घ. ११ इतीति नास्ति च शुलके. १२ विषयो नेति घ.

वाङ्मोक्षारेऽपसिद्धान्तादित्यर्थ इति, तत्र; पृथिवीपरमाणुनिष्ठानादिश्यामिकायां पाकाज-
न्यायां प्रमाणाभावात्, तस्या अनादिभावत्वे नाशानुपपत्तेश्च । न च तत्र समानाधिकरणं
रूपान्तरं समवायिकारणमिति वाच्यम् । रूपस्य स्वसमानाधिकरणरूपजनकत्वनिपमात् ।
तस्माद्यत्किञ्चिदेतत् । विविच्येति । स च विविच्य वक्तुमशक्य इत्यर्थः । प्रतियोगिनि
पुद्गिस्थेऽधिकरणज्ञानमभाव इति मतमादायं शङ्कते दृश्ये इति । दृश्यप्रमाणयोग्यो यः
प्रतियोगिरूपो हेतुः तस्मिन् स्मर्यमाणे यद्विषयज्ञानं तदेवं विषये, हेतोरभाव इत्यर्थः ।
संसर्गाभावस्तु योग्यप्रतियोगिक एव योग्य इति कृत्वा दृश्य इत्युक्तम् । यद्यप्यपाकज-
नित्यभूतविशेषगुणत्वमतीन्द्रियं, तथापि प्रकृतप्रतियोगिनः प्रामाणिकत्वद्योतनाय दृश्यं
इत्युक्तम् । अप्रमितप्रतियोगिकस्याभावात् । यद्वा स्मरणं प्रति पूर्वज्ञानं कारणं तदतिरे-
केण कथं हेतोः स्मर्यमाणत्वमित्यत उक्तवान् दृश्य इति । पूर्वज्ञात इत्यर्थः । हेतो-
रज्ञानदशायां विषयोपलम्भस्य हेत्वभावत्वं वारयितुं स्मर्यमाण इति । केवलस्य स्मर्य-
माणस्य हेतोर्हेत्वभावत्वं वारयितुं विषयेति । केवलहेतौ स्मर्यमाणे ज्ञायमाने च
विषये हेत्वभावत्वं वारयितुं उपलम्भ इति । ननु विषयस्य हेत्वभावत्वे को दोष इति
चेत्-न; घटे हेत्वभाव इत्याधाराधेयभावप्रतीत्यभावप्रसङ्गः । न चौपचारिक आधाराधेय-
भाव इति वाच्यम् । मुख्यत्वे सम्भवति तदयोगात् । हेतौ स्मर्यमाणत्वविशेषणप्रयोज-
नः । न हि व्यवहृत्यज्ञाने

भावः । दूषयति अननुभूयमान इति ।

पश्यत इति । हेतुमनुभवतः प्रमातृरथवा हेतुमनुभवतः प्रमादृक् प्रति सदेतुर्न
स्यात् । अयं निगर्वः । स्मर्यमाण इति । विशेषणमहिम्ना हेतोरनुभूयमानत्वदशायां
विषयेऽभावाभावात् व्यभिचारप्रसङ्ग इति । विषयं पश्यत इति पाठे तस्मिन् हेतावि-
त्यर्थः । तत इति । पूर्वदूषणपरिहारार्थं पर्युदासलक्षणया अनुभूयमानसदृशे ज्ञायमान
इति यावदित्यर्थः । एवं हेतोरनुभवदशायामपि हेतुत्वाभावः प्राप्तः । प्रमेयत्वादी-
नामिति । अनित्यत्वादिसाधकप्रमेयत्वादिहेतुनां व्यभिचारिणामपि ज्ञानदशायां
विषयेऽभावप्रसङ्गेन सदेतुत्वप्रसङ्गाव्यभिचारोच्छेदप्रसङ्गादित्यर्थः । ननु भवतु व्यभिचा-
रोच्छेदप्रसङ्ग इत्यत आह-अनुमितेति । उपधिनानुमितेन व्यभिचारेणासाधकतानु-
मानोच्छेदप्रसङ्गादित्यर्थः । केवलान्वयित्वमङ्गप्रसङ्गोऽपि दोषो बोध्यः । ननु केवल-
ान्वयित्वं प्रतियोग्यधिकरणमिच्छाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं, तच्चाश्रमेव । न च
व्यभिचारोच्छेदोऽपि, स्वस्याविद्यमानत्वेऽपि साध्यात्यन्ताभाववद्भ्रामित्वस्य सत्त्वादिति
चेत्-मैवम्; भवतः प्रसङ्गाभावयोरैकावच्छेदेनैकत्र वृत्तौ विरोधस्याप्युच्छेदापत्तिः,
गोत्वाश्रयत्वविरोधस्याप्युच्छेदापत्तिः । गोत्वाश्रयत्वविरोधस्य गोत्वाश्रयत्वसमानाधिकरणगो-

१ रूपान्तरसमवायीति च. २ तत्र विषय इति च. ३ सति तदिति च. ४ व्यवहिते इति च.

५ अपेक्षामात्र इति छ. ६ प्रत्ययमिति च. ७ एवमित्याख्य प्रसङ्गादित्यर्थ इत्यन्तो भागो नास्ति छ.
पुस्तके. ८ एकवृत्ताविति च. ९ पतेरिति च.

त्वाश्चत्वात्यन्ताभावेनिष्ठप्रतियोगिनिरूपितविरोधोपजीवकत्वादिति ।। उर्पसंहरति तत इति । स्वदर्शितमाश्रित्य भवता व्यभिचारादिदोषग्रासेन व्यतिरेको निरूपयितुं न शक्यत इत्यर्थः । ननु प्रतियोगिनि बुद्धिस्थे केवलाधिकरणज्ञानमभावः, नच प्रमेयत्वाधिकरणं केवलं भवति । तथाच न व्यभिचाराद्युच्छेद इत्यत आह विपक्ष इति । केवल्यं हि हेतुमदधिकरणमिच्छाधिकरणत्वं विपक्षस्य वाच्यम् । एवञ्च भेदनिरूपिततया हेतुरूपे विशेषणे देये इदमेव नित्यत्वसाधकमवदनुमानस्य प्रतिकूलतर्कानुकूलतर्कमाधाम्नां न्यूनबलत्वलक्षणं दूषणं बोध्यमित्यर्थः । स्वहेतोः सद्देतुत्वमुपसंहरति तस्मादिति । दूषणस्य परिहृतत्वात् । पूर्वं एव शब्दानित्यत्वसाधक एव सद्देतुरित्यर्थः । अन्ये तु—तत इत्युपलम्भविशिष्टाद्विपक्षाद्यावृत्तिः हेतोस्स व्यतिरेकः । नानुभूयमान इति । अनुभूयमाने विपक्षेऽधिकरणे हेतुं पश्यतोऽयमन्वयव्यतिरेकी हेतुर्न स्यात्, व्यतिरेकासम्भवात् । अयं दोषस्तु यथा कदाचित् घटवच्चया प्रमिते भूतले घटाभावः प्रमा, तथा हेतुमत्तया प्रमिते विपक्षे हेत्वभावः प्रमेति यदि विवक्षितं, तदा बोध्यः । ननु यत्र कचित्प्रमितस्य हेतोः प्रमिते विपक्षेऽभावो वाच्य इत्यत आह ततोऽननुभूयमान इति । यतो विपक्षनिष्ठतया हेतोरनुभूयमानत्वे वक्तव्ये उक्तदोषः, अतो विपक्षानिष्ठतयानुभूयमाने तस्मिन् हेतौ केवलविपक्षोपलम्भस्सर्वकाले । ततो व्यावृत्तिहेतोर्व्यतिरेक इत्यर्थः । यत्र हेतुर्वर्तते तद्वृत्तित्वावच्छिन्नो हेतुस्समारोप्य निषिध्यत इत्यभिमतं तत्राह नेति । अनित्यत्वादिसाधकप्रमेयत्वस्य सपक्षवृत्तित्वावच्छिन्नस्य विपक्ष आरोः पूर्वैकनिषेधावगमसम्भवेन व्यभिचाराभावप्रसङ्गादित्यर्थः । किञ्च यत्र प्रतिज्ञाघन्यतः माययवज्ञानेन हेतोरवगतिः, तत्र वाचनिकविपक्षोपलम्भमावाहुत्वरूपव्यतिरेकासिद्धौ अनुमितानुमानं न स्यादित्याह अनुमितेति । यद्वा व्यतिरेकानिरूपणादेवानुमितानुमानोच्छेदप्रसङ्गो बोध्यः, गुरुमतेऽभावासम्भवात् । नन्वेवमभावखण्डनेऽतिप्रसक्तिरित्यत आह विपक्ष इति । मुख्यो दोषो व्यतिरेकासम्भव एव । इदन्तु दूषणं विपक्षे हेतुविशेषणे सत्युहामिति व्याचक्रुः, तैमन्दम् ; उदक्षरत्वात्, सपक्षवृत्तित्वावच्छिन्नत्वादेरध्याहाराच्च । शब्दस्येति । निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वं यच्छब्दस्य द्रव्यत्वसाधकं प्रमाणम्, यच्च साक्षादिन्द्रियसम्बन्धेन प्रमाणम्, तदप्रमाणम् । तथा हि—निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वं सुखादौ व्यभिचारि, द्वितीयं साधनं ध्वनौ उत्प्रागभावादौ च व्यभिचारि, गुणत्वसाधनेन विरुद्धञ्च । यदि निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वे सति साक्षादिन्द्रियसम्बन्धेन प्रतीयमानत्वं मिलितं हेतुः, तदा व्यर्थविशेषणत्वं बोध्यम् । रूपादौ व्यभिचारवारणाय निरवयवेति । निरवयव आत्मा तज्जन्यग्रहविषयरूपादौ व्यभिचारवारणाय इन्द्रियेति । न च मनोग्राह्यरूपादौ तदवस्थो व्यभिचारः, लौकिकप्रत्यासत्या निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वस्य विवक्षितत्वात् । द्वितीयहेतौ रूपादौ व्यभिचारवारणाय साक्षादिति । अनुमानेन साक्षात्स-

१ यत्तद्व्यमिति च. २ निरूपकतयेति घ. ३ हेतोरनुभूयमानेति छ. ४ विपक्षनिष्ठतयेति छ.

५ तत्रेति च.

मन्धेन प्रतीयमाने रूपादौ व्यभिचारवारणाय इन्द्रियेति । अत्रापि लौकिकप्रत्यास-
त्तिर्बोध्या । धर्मधर्मिणोरभेदवादिमते साक्षात्पदस्यापि व्यर्थता बोध्या ।

[अ. टी.] तथापि शब्दानित्यत्वानुमानं न युक्तमिति शङ्कते-शब्दो नित्य इति ।
विशेषगुणत्वादित्युक्ते बुध्यादौ व्यभिचारस्यादत्त उक्तम् मूलपदम् । घटरूपादौ व्यभिचार-
वारणार्थं नित्यपदम् । नित्यमूलविशेषगुणत्वादित्युक्तेऽपि पार्थिवपरमाणुरूपादौ व्यभि-
चारस्ततः अपाकजपदम् । प्रतिपक्षानुमानस्य दौर्बल्यान्मैवमिलाह नास्येति । स्वय-
ध्यापसिद्धान्तापादकत्वादवचनीयोऽयं प्रयोग इत्यर्थः । तथापि निर्दुष्टप्रयोगविरोधे कथं
पूर्वस्य सङ्केतत्वं तत्राह-कोऽयं व्यतिरेक इति । यत्रानित्यत्वं तत्रापकजनित्यमूलविशे-
षगुणत्वं नास्तीति व्यतिरेकस्य शब्दानित्यत्ववादिना वक्तुमशक्यत्वात् । नित्यत्वाङ्गीकारेऽपि
पार्थिवपरमाणुगतांशदिश्यामत्ये पाकजनिवर्त्ये साध्याभावेऽपि साधनमावाव्यतिरेकाभावात्
गुरुमते चाभावाभावात् व्यतिरेकार्थं तदङ्गीकारेऽपसिद्धान्तापातात्राद्य इत्याह नाय इति ।
अन्यस्य व्यतिरेकस्याप्रसिद्धत्वात्तान्त्र्योऽपि युक्त इत्याह अन्यश्चेदिति । परः प्रकारान्तरं
सम्पादयति इदमे प्रतियोगिनीति । इदमे प्रमाणदर्शनयोग्ये हेतुलक्षणप्रतियोगिनि
स्वर्यमाणे सति यो विपक्षोपलम्भस्तद्विशिष्टाद्विपक्षार्त्ततो या व्यावृत्तिर्हेतोः स व्यतिरेकः ।
प्रमाणयोग्यस्य हेतोः प्रमाणयोग्यविपक्षाव्यावृत्तिर्हेतोर्व्यतिरेक इति संक्षेपः ।

अत्र वक्तव्यम्-किं यथा भूतले प्रमाणदृष्टस्य घटस्य कदाचिदभावग्रहः तथा
विपक्षे प्रमाणगृहीतस्य हेतोस्तत्राभावः प्रमा ? किं वा गगने प्रमाणगृहीतस्य सूर्यादेर्भूमाव-
साववदन्यत्र प्रैमित्य हेतोरभावग्रहो विपक्षे ? तत्र न प्रथम इत्याह-नानुभूयमान इति ।
प्रमीयमाणे विपक्षे पश्यतो हेतुमिति शेषः । अभावासम्भवादयमन्वयव्यतिरेकी हेतुर्न स्यात् ।
द्वितीयमुत्थापयति-ततोऽननुभूयमान इति । यतोऽनुभूयमानत्वे उक्तदोषस्ततोऽ-
ननुभूयमाने तस्मिन् हेतौ केवलं विपक्षोपलम्भः सर्वकालं ततो व्यावृत्तिर्हेतोर्व्यतिरेक इत्यर्थः ।
तत्रापि वक्तव्यम्-यत्र हेतुर्वर्तते, तेन सहैव विपक्षे समारोपनिषेधाभ्यां व्यावृत्त्यवगमः,
यथा भूतले सह नभसा चन्द्रोऽयमिति समारोपनिषेधाभ्यां तदभावावगतिः । किमेवमे-
तत्राह-न मेयत्वादीनामिति । विपक्षे सपक्षप्राप्तौ तन्निषेधे प्रमेयत्वादिहेतोरुक्तव्य-
तिरेकसम्भवेन गमकत्वम् । ततः शब्दानित्यत्वादिसाधने प्रमेयत्वादिहेतोरनैकान्तिकहेत्वा-
भासत्त्वोच्छेदप्रसङ्ग इति भावः । किञ्च यत्र प्रतिज्ञाचन्यतमावयवदर्शनादनुमानमूह्यते, तत्र
याचनिकविपक्षोपलम्भाभावादुक्तव्यतिरेकासिद्धावनुमितानुमानमङ्गस्यस्यादित्याह अनुमि-
तेति । अथवा व्यतिरेकानिरूपणादेवानैकान्तानुमानोच्छेदो द्रष्टव्यः, गुरुमते व्यावृत्तेरस-

१ गुणत्वादिनि श. २ उक्तमिति नास्ति ज, ट पुस्तकयोः. ३ मूध्यत्वेति ज, ट. ४ गतादि-
श्यामत्य इति ट. ५ पाकनिवर्त्येति ज, पाकनिवर्त्येति ट. ६ साधनाभावादिनि श. ७ यथास्थितमपि
आन्त्या पर इति ट. ८ सह इति नास्ति ट पुस्तके. ९ ग्रहणमिति ट. १० परपक्ष इति ट. ११ केयलेति
ज, ट. १२ अन्वयव्यतिरेकाभ्यामित्यधिकं = पुस्तके. १३ यमेवमिति ट. १४ भासोपेदेति श. १५ अनेक-
न्यानुमितानुमानेति ट.

म्भवात् । नन्वेवं व्यतिरेकिखण्डनेऽतिप्रसङ्ग इत्यत आह विपक्ष इति । मुख्यं दूषणं शब्दनित्यत्ववादिनो गुरुमते च न व्यतिरेकलाभ इति पूर्वमेवोक्तम् । इदन्तु विपक्षे हेतु-विशेषणे विपक्षोपलम्भस्ततो व्यावृत्तिरित्येवं सति दूषणमूहम् । बुद्धिविस्फारणाय च प्रसिद्धव्यतिरेकापलापासम्भवादिति भावः । यस्मात्प्रतिपक्षहेतुर्न सम्भवति स्वयूच्यानुसारेण, न च शब्दनित्यत्वमतानुसारेण । अयं प्रयोगो युक्तः, गुरुमते व्यतिरेकानिरूपणात् । भाट्टैश्वर्य-शब्दस्य गुणत्वानङ्गीकारेणान्यतरासिद्धत्वात्,

वर्णात्मकार्थं ये शब्दाः नित्यास्सर्वगताश्च ते ।

स्वयं द्रव्यतया ते हि न गुणाः कस्यचिन्मताः ॥

इत्युक्तत्वाच्च । अत उपसंहरति तस्मादिति । हेतुरेव सहेतुरेवेत्यर्थः । शब्दस्य गुणत्वे प्रमाणस्य दर्शितत्वात्तद्विरुद्धं द्रव्यत्वसाधनं साधनाभास इत्याह शब्दस्येति । नित्यः शब्दो निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वादात्मवदिति नित्यत्वप्रमाणं सुखादौ व्यभिचरति । शब्दो द्रव्यं साक्षादिन्द्रियसम्बन्धेन प्रतीयमानत्वाद्वदति द्रव्यत्वसाधनम् । एतच्च गुणत्वसाधनविरुद्धम् । एवं शब्दस्य नित्यत्वद्रव्यत्वसाधकप्रयोगद्वये दूषणम् । ग्रन्थकारस्तु शब्दो द्रव्यं निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वे सति साक्षादिन्द्रियसम्बन्धेन प्रतीयमानत्वादित्येकं हेतुं कृत्वा निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वविशेषणस्य वैयर्थ्यमाह-निरवयव इति । लिङ्गसम्बन्धेन प्रतीयमानपरमाणुरूपादौ व्यभिचारवैरणार्थमिन्द्रियपदम् । घटरूपादौ व्यभिचारवैरणार्थं साक्षात्पदम् । एवमुक्ते व्यभिचाराभावाच्चार्थं विशेषणम् । द्रव्यत्वे प्रयोगद्वये च निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वं रूपादौ व्यभिचारावारकत्वाच्चार्थं विशेषणम् । गुणगुणिनोर्भेदभेदवादे रूपादे-द्रव्यत्वसम्भवात्साक्षादिति विशेषणम् । विपक्षाव्यावर्तकत्वाच्चार्थं कथञ्चिद्वृष्टव्यम् ।

[वा. टी.] शब्द इति । संयोगनिवारणाय विशेषेति । सुखनिवृत्तये भूतेति । घट-निवारणाय नित्येति । पार्थिवपरमाणुरूपनिवृत्तये अपाकजेति । दूषयति नास्येति । हेतुर्विशेषणासिद्धत्वात् । इत्यत हि वाताग्निसंयोगेनापि शब्दोत्पत्तिरिति । किञ्च कोऽयमित्याशङ्कते-किं नैयायिकः कश्चित् ? गुरुपक्षी वा ? नात्र इत्याह अपसिद्धान्तेति । द्वितीयश्चेत्तत्राह कोऽयमिति । अपसिद्धान्तेति । स्वरूपातिरिक्ताभावस्यानङ्गीकारादिति भावः । द्वितीय आह-अन्यश्चेदिति..... । इदं इति । प्रमाणयोगे हेतौ प्रतियोगिनि स्पर्शमाणे यः प्रमाणयोग्य विपक्षोपलम्भः स तस्य हेतोः, ततो विपक्षे व्यतिरेक इति यावत् । तत्र किं हेतुसहितस्य विपक्षस्योपलम्भः, तद्वहितस्य वा ? नात्र इत्याह अनुभूयेति । हेतुमिति शेषः । प्रतीयमाने विपक्षे तत्र हेतुं पश्यतोऽनुभवक्रतोऽयम् अन्वयव्यतिरेकी हेतुर्न स्यादिति योजना । द्वितीयमनुवदति अननुभूयमान इति । तत्रापि वक्तव्यम्-किं विपक्षे हेतौ सत्येव तदननुभवः ? असति वा ? नात्र इत्याह मेयत्वादीनामपीति । अस्ति हि मेयत्वादीनामपि विपक्षेऽननुभवः, अनुभवकारणामावादात्,

१ मुख्यं हीति ट. २ शब्दानित्यत्वेति ज, ट. ३ विस्फारणयेति ट. ४ वर्णात्मनश्चेति ज, ट. ५ नित्यत्वे इति झ. ६ ग्राह्यत्वेति ट. ७, ८ द्युदासावैमिति ज, ट. ९ नित्यत्वप्रयोगेति ट. १० भेदादेवेति ट.

प्रात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेन शब्दत्वान्पून्वृत्तित्वाभावात् । यद्वा गुणत्वव्याप्यजात्यव्याप्यशब्दवृत्तिजातित्वस्य हेतुत्वात् । सत्तासंयोगासमवायिकारणके घटोदावस्तीति दृष्टान्तसिद्धिः । द्वितीयसाध्येऽर्थान्तरवारणाय विभागेति । विभागस्यासमवायिकारणत्वसिद्धये असमवायीति द्वितीयहेतुः । पूर्ववद्विवक्षणीयविभागजविभागवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धिः । गुणत्वावान्तरेति । शब्दस्य गुणत्वजात्या सजातीयस्संयोगादिः । तज्जन्यवृत्तित्वेनार्थान्तरवारणार्थं गुणत्वावान्तरेति । शब्दसंयोगान्यतरत्वेन सजातीयसंयोगजन्यवृत्तित्वेनार्थान्तरं वारयितुं जाल्या साजात्यमुक्तम् । हेतुः पूर्ववत् । रूपादिजन्यवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धतिः ।

इति प्रमाणमञ्जरीन्याख्याने गुणपदार्थस्समाप्तः ।

[अ. टी.] संयोगजो विभागजश्शब्दजश्चेति त्रिविधः शब्दः । संयोगोऽसमवायिकारणयस्येति विग्रहः । रूपादौ व्यभिचारवारणाय शब्दजातित्वादित्युक्तम् । सत्तायाः सजातीयद्रव्यारम्यवृत्तित्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थम् अवान्तरजात्येत्युक्तम् । गुणत्वजात्या सजातीयसंयोगारम्यवृत्तित्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं गुणत्वावान्तरजात्येत्युक्तम् ।

इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणेऽद्वयारण्ययोगिविरचिते गुणपदार्थः ।

*

(कर्मणो लक्षणं तस्य प्रत्यक्षत्वञ्च)

एकद्रव्यविभागासमवायिकारणसंज्ञातीयं कर्म । तत् प्रत्यक्षं, प्रमेयत्वात्, घटवदिति तस्य प्रत्यक्षत्वम् । घटकर्म, अस्मदादिप्रत्यक्षं, गुणान्यत्वे सति घटसमवेतत्वात्, सत्तावदित्यस्मदादिप्रत्यक्षम् ।

[व. टी.] एकेति । अव्यासज्यवृत्तिविभागासमवायिकारणवृत्त्यपरे सामान्यवत्कर्मेत्यर्थः । विभागासमवायिकारणे विभागेऽतिव्याप्तिवारणाय एकद्रव्येति । रूपादावतिव्याप्तिं वारयितुं विभागेति । द्रव्येऽतिव्याप्तिर्झातय असमवायीति । सत्तामादाय तदोपं वारयितुम् अपरेति । विभागघटान्यतरत्वादिकमादाय दोषं वारयितुं सामान्येति । न च गुणत्वमादाय रूपादावतिव्याप्तिः, गुणत्वेतरजातेरुक्तत्वात् । यद्वा विभागासमवायिकारणतावच्छेदकजातिमदित्यर्थः । न चाविनश्यदवस्थकर्मत्वमसमवायिकारणतावच्छेदकम्, तच्च न सामान्यमित्यसम्भव इति वाच्यम्, किञ्चिद्विशेषणवद्भिन्नजातेरेवात्रोपाधित्वात् । अन्यतरत्वादिकन्तु नावच्छेदकं, गौरवात् अतिप्रसङ्गाच्च । वस्तुतस्तु-

- १ वृत्तित्वस्येति घ. २ घटादावपीने घ. ३ पदमिदं नास्ति ख पुस्तके. ४ रूपादिवृत्तित्वेनेति घ. ५ रूपादाविति ज, ट. ६ वारणाधेमिति ज, ट. ७ सचयेति ज, ट. ८ निरासाधेमिति ज, ट. ९ टिप्पणके इति ट. १० कारणजातीयमिति ख. ११ गुरुत्वमित्यत्र इति ख, ग, घ. १२ प्रत्यक्षत्वमिति गु. १३ वृत्तिसत्तासाक्षात्पारयेति घ. १४ वारणायेति घ.

एकद्रव्यविभागासमवायिकारणतावच्छेदकत्वकर्म इत्येव लक्षणार्थः । तेन न व्यर्थता । न च विनश्यदवस्थकर्मणि अविनश्यदवस्थकर्मत्वस्य विभागासमवायिकारणतावच्छेदकसा-
मावादव्याप्तिरिति वाच्यम् । अविनश्यदवस्थतादृश्यां तत्रापि तत्सत्त्वात् । यद्वा एक-
द्रव्यं यद्वा विभागासमवायिकारणं तद्वृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत् कर्मत्वार्थः । एकद्रव्यं
कर्मति वक्तव्ये परिमाणादायतिप्रसक्तिः, तद्विरासाय(?)परविशेषणम् । यत्तु केनचि-
दुक्तम्-केवलसंयोगजनके कर्मव्यव्याप्तिवारणाय सजातीयपदमिति, तत्र; संयोगजनके
कर्मणि विभागजनकत्वस्यावश्यकत्वात् संयोगस्य पूर्वदेशविभागोत्तरकालीनत्वात् ।
तदिति । कर्मत्वार्थः । न च परमाभादौ व्यभिचारः, तत्राप्यलौकिकप्रत्यक्षादिविषयत्वस्य
प्रत्यक्षविषयमात्रस्यैव साध्यत्वात् । अतएवास्मादादिप्रत्यक्षेणैव साधयिष्यति । विषय-
त्वादित्येव हेतुः, न तु प्रमाविषयत्व हेतुः, व्यर्थविशेषणत्वात् । यद्वा-ज्ञानं द्वारीकृत्य
साक्षात्सम्बन्धेन वर्तमानमेव हेतुः । यद्वा-उद्देश्यसिद्धये प्रत्यक्षप्रमाविषयत्वं साध्यम्,
तेनासद्वैशिष्ट्ये व्यभिचारवारणाय प्रमाविषयत्वं हेतुः । ननु लौकिकप्रत्यक्षविषयत्वं न
सिद्धमन्त आह, घटकमिति । अर्थान्तरवारणाय अस्मादादीति । नन्वस्मादादिना प्रमेय-
त्वादिना रूढत्वा एवेत्यर्थान्तरमिति चेत्-न; लौकिकप्रत्यक्षविषयत्वस्य साध्यत्वात् । प्रत्य-
क्षत्वं जातिरिति न व्यर्थता । न त्विन्द्रियजन्यज्ञानेता, येनेन्द्रियजन्यत्वप्रमावैषम्ये सात् ।
यद्वा-लौकिकज्ञानविषयत्वमेव साध्यम् । यद्वा-अलौकिकप्रत्यक्षासत्यजन्यजन्यज्ञान-
विषयत्वे साध्येऽनुमित्यादिनार्थान्तरं स्यात्, तदर्थे प्रत्यक्षविशेषणम् । यन्चात्मनस्त-
योगेन लौकिकप्रत्यक्षासत्त्वानुमित्यादिर्जन्यत एवेति प्रत्यक्षत्वविशेषणमिति, तत्र; एष-
मप्यलौकिकप्रत्यक्षेणार्थान्तरायातात्, तस्याप्यात्मनस्तयोगजन्यत्वात् । तस्माद्वाज्ञेयैव
लौकिकसन्निकर्षो लौकिकसन्निकर्षमेव कारणम् । तेनानुमित्यादौ न लौकिकता । यद्वा-
इन्द्रियत्वेनेन्द्रियनिरूपितसंयोगादिः, तद्वानुमित्यादौ मनस्त्वेन मनोनिरूपितकारण-
संयोगः । गुरुत्वादौ व्यभिचारं वारयितुं गुणान्यत्वे सतीति विशेषणम् । परमाणु-
समवेतविशेषादौ दोषनिरासार्थं घटेति । साक्षात्समवायो विवक्षितः । तेन संपृक्तसम-
वायेन घटसमवेते विशेषादौ न व्यभिचारः । घटनिष्ठपरमाणुत्वात्तन्नामायादौ व्यभि-
चारेण घटसमवेते विशेषादौ न व्यभिचारः । यत्र प्रत्यक्षयोग्यता साध्या, तेनाप्रत्यक्षविशिष्टकर्मणि न
वाधः । एवं घटकमिदावपि साध्यम्, गुणान्यत्वे सति घटसमवेतत्वादिहेतुः । प्रत्यक्ष-
निष्ठकर्ममात्रपक्षीकरणे विशेषणत्वे सति गुणान्यत्वे सति प्रत्यक्षसमवेतत्वादिहेतुः ।

[अ. टी.] त्रिमितिकामणसजातीयेश्वरप्रयत्नादावतिव्याप्तिर्निरासार्थम् असमवायिपदम् ।
यद्वत्साधसमवायिकारणतन्तुत्वादित्येवच्छेदार्थं विभागपदम् । विभागासमवायिकारण-
पदवत्साधसमवायिकारणतन्तुत्वादित्येवच्छेदार्थं विभागपदम् । एकमेव द्रव्यमात्रयो यस्य तदेकद्रव्यम् । कर्मेत्युक्ते
विभागनिरासार्थम् एकद्रव्यपदम् ।

१ संयोगस्यैव च. २ विषयत्वेति च. ३ प्रत्यक्षत्वमिति च. ४ वर्तमानं ज्ञानमेवेति च.
५ निरासार्थेति च. ६ आगत इति च. ७ ज्ञानविषयत्वमिति च. ८ प्रत्यक्षत्वेति च. ९ अज्ञानात्तन्निष्कारणमिति
च. १० समवेतत्वेति च. ११ निष्ठेति च. १२ अनुसृत्यतेति च. १३ च.

स्मरकत्वेन सकलकारणरूपसामग्र्यभावादिति भावः । विकल्पेति । वक्ष्यमाणविकल्पेन सम्भवेत्पक्षस्य क्षणिकत्वस्यानुपपत्तेरित्यर्थः । व्यावृत्ताविति । तत्र सत्त्वमस्ति क्षणिकत्वञ्च नास्तीति व्यभिचारादित्यर्थः ।

ननु व्यावृत्तिरपोहो भूया न मन्यते, किन्तु भावान्तरमेव सँ इति शङ्कते अथेति । व्यावृत्तावसत्यामिति । सकलसाध्यसाधनसङ्गाहकव्यावृत्तिरूपधर्माभावादिति भावः । यस्तुतस्तु हेतुमति क्वचित्क्षणिकत्वं व्यावर्तते न वा ? आद्यमाह व्यावृत्ताविति । द्वितीयं शङ्कते अथेति । समाधत्ते व्यावृत्तावसत्यामिति । क्षणिकत्वं हि क्षणमात्रावस्थायित्वमात्रपदार्थोऽस्तु स्वपूर्वोत्तरक्षणयोर्भावस्य व्यावृत्तिः । व्यावृत्त्यनङ्गीकारे तद्वदितक्षणीकत्वस्य वक्तुमशक्यत्वेन व्याप्तिग्रहवैधुष्ये क्षणिकत्वसाधनत्वाभिमतानुमानस्याभावप्रसङ्गादित्यर्थः । किञ्च व्यावृत्त्यनङ्गीकारे भवदभिमतव्यतिरेकव्याप्तिभङ्गप्रसङ्गः । भावभिन्नतित्वाभावस्य स्वीकृतस्य परित्यागेऽपसिद्धान्तमाह अपसिद्धान्तेति । ननु भवत्वतिरिक्ता व्यावृत्तिरिति चेत्-न; तदा भवदभिमततित्वाव्यावृत्तावेव व्यभिचारात्, क्षणिकत्वाभावाधिकरणस्यैव स्वैर्यस्वीकारापत्तेश्च । साध्याप्रसिध्या व्याप्तिग्राहकप्रमाणोभावत्वेनेव चरमशब्द एव साध्यप्रसिद्धिरिति वाच्यम् । तस्यापि स्थिरत्वाङ्गीकारात् । न च क्षणिकत्वाप्रसिध्या कथं क्षणिकत्वनिषेध इति वाच्यम् । घटः स्वाव्यवहितोत्तरक्षणवर्तिर्ध्वंसप्रतियोगी नेति निषेधशरीरस्वीकारात् । घटाव्यवहितोत्तरक्षणवर्तिः स्वसंप्रतियोगित्वस्य प्रतियोगिनो घटः ।प्राङ्मणे वस्तुनि सिद्धेः । सम्प्रतिपन्नवदिति । सम्प्रतिपन्ना व्यावृत्तिः, स्वशब्देन कर्मणं उक्तत्वेन कर्मोत्तरक्षणे वर्तमानो भावो वा सम्प्रतिपन्न इति निगर्वः ।

इति कर्मपदार्थः ।

[अ. टी.] कर्मणोऽसमवायिकारणत्वमुक्तं, तदाक्षिपति यत्सदिति । सन्तश्चामी भावा इति । द्रव्यादीनामपि क्षणिकत्वेन कारणत्वमाक्षिप्तम् । लब्धसत्ताकानां कारणानां मेलने सामग्री, ततः कार्यजननमित्यनेकक्षणस्थित्यपेक्षणात् । क्षेणीभूते कारणत्वासम्भव इत्यर्थः । क्षणिकत्वे लक्षणसाध्यानिर्वचनान्मैवमित्याह नेति । क्षणे भवतीति क्षणेभद्रः । तत्सम्भवात् क्षणावस्थानसम्भवादित्यर्थः । व्यावृत्तिरपोहशब्दार्थभूतः, तस्य च व्याप्तिग्रहार्थक्रियाहेतुत्वात्सत्त्वमिति युक्ता तत्रानैकान्तिकता ।

अथ भावान्तरमेव भावान्तरापोहः, ततो नोक्तो दोष इति शङ्कते अथेति । इष्टहान्या परिहरति न व्यावृत्ताविति । स्वलक्षणं सर्वतो व्यावृत्तमसाधारणं भावरूपम् । अनुमानाभावे तत्रमेवत्यनेनैक्षणिकत्वहानिरित्यर्थः । भावद्वित्रस्य नित्यस्याभावस्य स्वीकृत-

१ भारम्भाक्ये सति क्षणिकत्वेन सकलकारणसमग्र्यं रूपेति छ. २ चेति नास्ति च पुस्तके. ३ मयेति नास्ति छ. ४ सेति च. ५ पट्टिमियं नास्ति च पुस्तके. ६ प्रसङ्ग इति नास्ति च पुस्तके. ७ पदमिदं नास्ति च पुस्तके. ८ सिद्धिरिति च. ९ सम्प्रतिपद्येति च. १० यद्वद्वयं नास्ति च पुस्तके. ११ क्षणिकत्वे इति ट. १२ भवति तिष्ठतीति ट. १३ भावान्तरमेति नास्ति छ. १४ वक्ष्यमाणमिति ट. १५ स्वरूपमिति ज, ट. १६ पदमिदं नास्ति छ पुस्तके.

नित्यपरिमाणेऽतिव्याप्तिः स्यादतः असमवायिकारणपदम् । कारणरूपादिविभागपद-
व्यवच्छेदं पूर्ववत् । केवलसंयोगजनके कर्मण्यतिव्याप्तिनिरासार्थं सजातीयपदम् । तत्र
किं प्रमाणम् ? प्रत्यक्षं कुतः ? इत्यत आह तत्प्रत्यक्षमिति । तर्ह्यष्टादिवद्योगिप्रत्यक्षगम्य-
मेवेत्यत आह घटकमेति । परमाण्वादिसमवेतेषु विशेषेषु व्यभिचारवारणार्थं घटपदम् ।
घटसमवेतगुत्वादौ व्यभिचारवारणार्थं गुणान्यत्वे सतीत्युक्तम् ।

[वा. टी.] गुणनिरूपणानन्तरं सामान्याचारतया कर्म लक्षयति—एकद्रव्येति । आद्यविभाग-
निराकरणाय एकद्रव्येति । विनश्यदवस्थकर्मण्यव्याप्तिनिराकरणाय सजातीयमिति । सजातीयकं
जात्येति न घटादावतिव्याप्तिः । तथाच कर्मत्रययोगि कर्मैत्युक्तं भवति । घटकमेति । गुत्वेऽति-
व्याप्तिपरिहाराय गुणान्यत्वे सतीति । ततो यच्चलतीति यत्प्रत्ययालम्बनं तत्कमेति सिद्धम् ।

(कर्मणोऽसमवायिकारणत्वाभावशङ्का तत्समाधानञ्च)

यत् सत्, तत्क्षणिकम्, यथा जलधरः । सन्तश्चामी, भावा इति
क्षणद्वयस्थित्यभावादारम्भकत्वानुपपत्तिः कर्मण इति चेत्—न; विकल्पानु-
पपत्तेः । तथाहि—क्षणे भवः क्षणिकः, तस्य भावः क्षणिकत्वम् ? किंवा
क्षणादूर्ध्वं न तिष्ठतीति क्षणिकः, तस्य भावः क्षणिकत्वम् ? आद्ये कल्पे
सिद्धसाधनम्, स्यायित्वपक्षेऽपि तत्सम्भवात् । न द्वितीयः, व्यावृत्ता-
वनैकान्तात् ।

अथ भावाद्विधा व्यावृत्तिर्नास्तीति चेत्—न; व्यावृत्तावसत्यां स्वल-
क्षणानां क्षणिकत्वेनाविनाभावस्याशक्यग्रहत्वादभ्युपगतस्यानुमानस्या-
सम्भवप्रसङ्गादपसिद्धान्तप्रसङ्गाच्च । तस्मात् सत्त्वं न क्षणिकत्वे प्रमाणम् !
स्यायित्वे तु विप्रतिपन्नं कर्म, स्वोत्पत्तिक्षणेतरक्षणस्थं, सत्त्वात्, सम्प्र-
तिपन्नवदिति ।

इति तार्किकमट्टकेसरिसर्वदेवसूरिविरचितायां
प्रमाणमञ्जर्यां कर्मपदार्थस्समाप्तः ।

[वा. टी.] कर्मणः कारणान्तरेऽसम्बद्धस्योक्तासमवायिकारणत्वमाक्षिपति—यदिति ।
एतस्य मते उदाहरणसहित उपनय इत्यवयवद्वयम् । सत्त्वंमर्थक्रियाकारित्वम्, जनक-
त्वमिति यावत् । सन्तश्चेत्युक्त्या द्रव्यादीनामपि क्षणिकत्वेन कारणत्वमाक्षिप्तम् । आर-

१ व्यवच्छेदार्थं विभागपदमिति ट. २ गम्येति नास्ति इह पुस्तके. ३ पदमिदं नास्ति ज, ट पुस्तकयोः ।
४ गुरुवाभ्यव्य इति ट. ५ तथा विमिति क. ६ अपीति नास्ति क पुस्तके. ७ अभावप्रसङ्गादिति ख, ग, घ.
८ क्षणिकत्वे न साधनमिति सु, न व्यावृत्तावसत्यां स्वलक्षणानां क्षणिकत्वे प्रमाणमिति घ. ९ प्रमाणमिति
सु. १० क्षणादन्वक्षणस्थमिति सु, क्षणेतरक्षणे सदिति क. ११ इति कर्मपदार्थ इति क, ख, ग, घ.
१२ सारवन्वति घ.

भ्रमकत्वेन सकलकारणरूपसामग्र्यभावादिति भावः । विकल्पेति । वक्ष्यमाणविकल्पेन सम्भवत्पक्षस्य क्षणिकत्वस्यानुपपत्तेरित्यर्थः । व्यावृत्ताविति । तत्र सचमस्ति क्षणिकत्वञ्च नास्तीति व्यभिचारादित्यर्थः ।

ननु व्यावृत्तिरपोहो मया न मन्यते, किन्तु भावान्तरमेव सँ इति शङ्कते अथेति । व्यावृत्तावसत्यामिति । सकलसाध्यसाधनसद्भाहकव्यावृत्तिरूपधर्माभावादिति भावः । यस्तुतस्तु हेतुमति कचित्क्षणिकत्वं व्यावर्तते न वा ? आद्यमाह व्यावृत्ताविति । द्वितीयं शङ्कते अथेति । समाधत्ते व्यावृत्तावसत्यामिति । क्षणिकत्वं हि क्षणमात्रावस्थापितवमात्रपदार्थोऽस्तु स्वपूर्वोत्तरक्षणयोर्भावस्य व्यावृत्तिः । व्यावृत्त्यनङ्गीकारे तद्वदितक्षणिकत्वस्य वक्तुमशक्यत्वेन व्याप्तिग्रहवैधुर्यं क्षणिकत्वसाधनत्वाभिमतानुमानस्याभावाप्रसङ्गादित्यर्थः । किञ्च व्यावृत्त्यनङ्गीकारे भवदभिमतव्यतिरेकव्याप्तिभङ्गप्रसङ्गः । भावभिनित्याभावस्य स्वीकृतस्य परित्यागेऽपसिद्धान्तमाह अपसिद्धान्तेति । ननु भवत्वतिरिक्ता व्यावृत्तिरिति चेत्-न; तदा भवदभिमतनित्यव्यावृत्तावेव व्यभिचारात्, क्षणिकत्वाभावाधिकरणस्यैव स्वैर्यस्वीकारापत्तेश्च । साध्याप्रसिध्या व्याप्तिग्राहकप्रमाणाभावेनैव चरमशब्द एव साध्यप्रसिद्धिरिति वाच्यम् । तस्यापि स्थिरत्वाङ्गीकारात् । न च क्षणिकत्वाप्रसिध्या कथं क्षणिकत्वनिषेध इति वाच्यम् । यदः स्वाध्य-
.....पेधशरीरस्वीकारात् । यदाध्यवहितोत्तरक्षणवर्ति-
.....प्राङ्गणे वस्तुनि सिद्धेः । सम्प्रतिपन्न-

वदिति । सम्प्रतिपन्ना व्यावृत्तिः, स्वशब्देन कर्मणं उक्तत्वेन कर्मोत्तरक्षणे वर्तमानो भावो वा सम्प्रतिपन्न इति निगमः ।

इति कर्मपदार्थः ।

[अ, टी.] कर्मणोऽसमवायिकारणत्वमुक्तं, तदाक्षिपति यत्सदिति । सन्तश्चामी भावा इति । द्रव्यादीनामपि क्षणिकत्वेन कारणत्वमाक्षिपत् । लब्धसत्ताकानां कारणानां मेलने सामग्री, ततः कार्यजननमित्यनेकक्षणस्थित्यपेक्षणात् । क्षेणीभूते कारणत्वासम्भव इत्यर्थः । क्षणिकत्वे लक्षणसाध्यानिर्वचनान्वैवमित्याह नेति । क्षणे भवतीति क्षणमयः । तत्सम्भवात् क्षणावस्थानुसम्भवादित्यर्थः । व्यावृत्तिरपोहशब्दार्थभूतः, तस्य च व्याप्तिग्रहार्थक्रियाहेतुत्वात्सत्त्वमिति युक्ता तत्रानैकान्तिकता ।

अथ भावान्तरमेव भावान्तरापोहः, ततो नोक्तो दोष इति शङ्कते अथेति । इष्ट-
हान्या परिहरति न व्यावृत्ताविति । खलक्षणं सर्वतो व्यावृत्तमसाधारणं भावरूपम् । अनुमानाभावे तत्प्रमेयत्वेनेष्टक्षणिकत्वहानिरित्यर्थः । भावाद्भिन्नस्य नित्यत्वाभावस्य स्वीकृत-

१ आरम्भकत्वे सति क्षणिकत्वेन सकलकारणसामग्र्ये स्वेति छ. २ चेति नास्ति च पुनरे. ३ मयेति नास्ति छ. ४ सेति च. ५ पद्विरिचं नास्ति च पुनरे. ६ प्रसङ्ग इति नास्ति च पुनरे. ७ पदमिदं नास्ति च पुनरे. ८ सिद्धिरिति च. ९ सम्प्रतिपद्येति च. १० पदद्वयं नास्ति च पुनरे. ११ क्षणिकत्वे इति ट. १२ भवति निष्प्रीति ट. १३ भावान्तरेति नास्ति श. १४ व्यावृत्ताविति ट. १५ स्वरूपमिति च, ट. १६ पदमिदं नास्ति च पुनरे.

त्वात्तत्वागश्चायुक्त इत्याह अपसिद्धान्तेति । सत्त्वं हेतुत्वेनोपन्यस्तम् । स्थायित्वे वाक्यं प्रमाणं तदाह स्थायित्वे त्विति । सम्प्रतिपन्ना व्यावृत्तिः, स्वस्येन कर्मणो विवक्षित-
त्वात्तदुत्पत्त्यनन्तरक्षणभावी भावो वा सम्प्रतिपन्नः ।

इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणेश्चद्वयारण्ययोगिविरचिते कर्मपदार्थः ।

[वा. टी.] शङ्कते यत्सदिति । क्षणद्वयस्थित्यभावादेति उत्पत्तिक्षणादन्यलक्षणस्थि-
तेरभावादित्यर्थः । किं वा क्षणादिति । उत्पत्तिक्षणादित्यर्थः । सिद्धसाधनत्वोक्त्या एवंविधं
क्षणिकत्वमनारम्भे प्रयोजकमिति 'सूचितम् । व्यावृत्तिरूपोहरूपं सामान्यम् । अनैकान्तिकतां
परिहरति अयेति । भिन्नेत्यत्र नित्येति शेषः । एवं घटतानुमानमभ्युपगतं न वा ? नाद्य इत्याह
व्यावृत्ताविति । स्वलक्षणं भावस्वरूपम् । न द्वितीय इत्याह अपसिद्धान्तेति । सिद्धसाधन-
तापरिहाराय स्वोत्पत्तीति । तस्मान्न लक्षणा इति कर्मसम्भव इत्युपसंहारो द्रष्टव्यः ।

इति प्रमाणमञ्जरीटीकायां कर्मपदार्थः ।

*

(सामान्यलक्षणम् तत्र प्रमाणञ्च)

नित्यमनुगतं सामान्यम् । तत्र प्रमाणं प्रत्यक्षम् । अथैतत्कल्पना-
ज्ञानमिति चेत्-न; कल्पनात्वस्य विकल्पानुपपत्तेः । तथाहि किं-निर्धिषयत्वं
कल्पनात्वम् ? किं वा शब्दसंपृक्तार्थप्रतिभासकत्वम् ? आहोसितस्मरणान-
न्तरभावित्वम् ? इति । नाद्यः; इदमित्यबाधितधीविषयत्वात् । नापि द्वितीयः;
अर्थे शब्दाभावात् । भावे चार्थस्य श्रोत्रपरिच्छेद्यत्वं स्यात् । शब्दस्य
चाश्रोत्रेन्द्रियग्राह्यत्वं प्रसज्येत । न तृतीयः; इन्द्रियसन्निकर्षानुविधायिनो
बाधस्य स्मृत्यनन्तरभावित्वेऽपि विरोधाभावात् । रूपस्मरणजननानन्तर-
मुपजातस्य रससाक्षात्कारस्याभ्युपगतप्रामाण्यस्याप्रामाण्यप्रसङ्गाच्च । सा-
मान्यानभ्युपगमे लिङ्गलिङ्गिनोरविनाभावस्य दुर्ज्ञानत्वात् अनुमानस्यानु-
ष्ठानं न स्यात् । धूमधूमध्वजानामनन्तानामुपसङ्गाहकाभावात् ।

[व. टी.] नित्यमिति । बहुत्यादावतिव्याप्तिभङ्गाय नित्यमिति । अष्टुत्तिपदार्थेऽ-
तिप्रसक्तिमङ्गाय अनुगतमिति । न च विशेषादावतिव्याप्तिः, अनेकवृत्तित्वस्यानुगत-
शब्दार्थत्वात् । न चात्यन्ताभावादावतिव्याप्तिः, अनेकसमवेतत्वसोक्तत्वात् । नाद्य इति ।
विषये गोत्वरूपे बाधाभावात् । विषयं विनैव जायमानत्वरूपकल्पनात्वं नास्तीत्यर्थः ।
अर्थ इति । रूपादिवदर्थशब्दाभावात् न शब्दसम्पृक्तार्थविषयकत्वलक्षणं कल्पना-
त्वमित्यर्थः । भावे चेति । शब्दग्राहकेनैव तत्सम्पृक्तार्थग्रहणे घटादेरपि श्रोत्रग्राह्यता
स्यादित्यर्थः । शब्दसम्पृक्तस्य च चक्षुरादिग्राह्यत्वे शब्दस्यापि तत्स्यादित्याह शब्द-

१ च युक्त इति ट. २ टिप्पणक इति ट. ३ एवंविधं नास्ति क पुस्तके. ४ यद्विदं नास्ति क पुस्तके.
५ वेति नास्ति क पुस्तके. ६ सर्वथेति क. ७ इन्द्रियेति नास्ति ख, ग, घ पुस्तकेषु. ८ अपीति नास्ति
क पुस्तके. ९ भूमेति नास्ति क पुस्तके. १० जनेवेति नास्ति च पुस्तके. ११ तदिति घ.

स्येति । यद्वा शब्दसम्पृक्तशब्देन यद्यमेदः शब्दार्थयोरुक्त इति द्वितीयः पक्ष उक्तस्त-
 ग्राह अर्थ इति । शब्दाभावात् शब्दभेदाभावादित्यर्थः । भावे चेति । शब्दामेद
 इत्यर्थः । अर्थाग्रहे शब्दोऽपि श्रोत्रेण न गृह्येत, तयोरमेदादित्याह शब्दस्येति । यदि
 शब्दसम्पृक्तत्वमर्थस्य शब्दबोध्यं तदा तस्याबाधितस्योपनीतस्य चक्षुरादिना ग्रहेऽपि न
 ग्रहस्य कल्पनात्वमित्युपरि बोध्यम् । यदि शब्दनिरूपितो बाधितस्साम्बन्धो घटादौ
 भासते तदा भ्रम एवेति बोध्यम् । तृतीयं पक्षमास्कन्दयन्नाह नेति । बोधस्य गोत्ववि-
 पयकस्य स्मृत्यनन्तरं भवतीत्येतावन्मात्रेण कल्पनात्वेऽतिप्रसक्तमाह रूपेति । कल्प-
 नात्वस्य वक्तुमशक्यत्वे सामान्यमङ्गीकार्यमित्यघस्तनग्रन्थेनोक्तम् । सम्प्रत्यनङ्गीकारे
 दोषमाह सामान्यानभ्युपगम इति । तत्र हेतुः धूमधूमध्यजानामिति सामान्य-
 लक्षणानङ्गीकारे सकलधूमव्यक्तां बहुतरसाध्यव्यक्तिव्याप्यत्वाग्रहे निपतधूमाद्वह्यनुमानं
 न स्यादित्यर्थः ।

[अ. टी.] अनुगतं सामान्यमित्युक्ते संयोगादावतिव्याप्तिस्स्यात् अतः नित्यपदम् । नित्येऽ-
 ननुगतेऽन्ये विशेषादौ तद्वदासाय अनुगतपदम् । अनुगतत्वंमनेकसमवेतत्वम् । गौर्गौ-
 रित्याद्यनुगतप्रत्ययरूपं प्रत्यक्षमुक्तम्, तदाक्षिपति अथेति । कल्पनाज्ञानत्वादस्याप्रामाण्यं
 वाच्यम्, तदयुक्तम् तदनिरूपणादित्याह नेति । इदं गोत्वमित्यादिप्रत्ययस्य बाधामावाद्य
 निर्विषयत्वपक्षो युक्तः । रूपादिसम्पृक्तवद्वटादीनां शब्दसम्पृक्तत्वं नास्तीति । ततो न
 द्वितीयः । विपक्षे दण्डमाह भाव इति । शब्दग्राहकेणैव शब्दसम्पृक्तार्थग्रहणे श्रोत्र-
 ग्राह्यत्वं घटादिरपि स्यात् । यदि च शब्दसम्पृक्तस्यापि चक्षुरादिग्राह्यत्वं तर्हि शब्दस्यापि
 तत्स्यादित्याह शब्दस्येति । बोधस्य गोत्वप्रत्ययस्येत्यर्थः । किञ्च स्मृत्यनन्तरमावित्व-
 मात्रेण सामान्यप्रत्ययस्य कल्पनात्वेऽतिप्रसक्तस्स्यादित्याह रूपस्मरणेति । अतस्सामान्य-
 प्रत्ययस्य कल्पनात्वान्निरूपणात्सामान्यमङ्गीकार्यम् । अनङ्गीकारे दोषाच्च तदङ्गीकार्यमित्याह
 सामान्यानभ्युपगम इति । अनुमानं प्रयोगः । उपसङ्गादिकस्य सामान्य-
 धर्मस्य व्यतिरेकेऽनन्तव्यक्तीनामन्वयव्यतिरेकव्याप्त्योर्ज्ञातुमशक्यत्वाच्च तत्पूर्वकानुमान-
 प्रवृत्तिस्स्यादित्यर्थः ।

[वा. टी.] पदार्थत्रयवृत्तिवत्तात्सम्यव्यमानाकाङ्क्षितत्वाच्च सामान्यं निरूपयति नित्यमिति ।
 आकाशनिराकरणाय अनुगतमिति । अनुगतमनेकसमवायि । संयोगादिनिराकरणाय नित्यमिति ।
 तत्रेति । इदं सदिदं सदिति गौर्गौरित्यनुच्चप्रत्यय एव मानमित्यर्थः । आक्षिपति अर्धेतदिति ।
 इदं सदिदं सदित्यादि ज्ञानमित्यर्थः । शब्दसम्पृक्तत्वं नाम शब्दात्मतत्त्वम् । इदमित्यसा-
 यमर्थः-इदं सदित्यादिज्ञानस्याबाधितत्वेन विषयत्वात् विषयो विपक्षे यस्य तद्विषयं तस्य भावस्तत्रं,

१ वाच्यमिति च. २ बोध्य इति छ. ३ विषयस्तेति च. ४ अनुगतं मनेकसमवेतेति छ. पदद्वयं
 बाधितं पुस्तके. ५ सम्पृक्तचेति ट. ६ संयुक्तत्वमिति छ. ७ सम्पृक्तस्यार्थमिति छ. ८ शब्दसम्पृक्तस्या-
 पीति ट. ९ शब्दस्य चेति ज, ट. १० अभावे इति छ, ट.

तस्मात् सविषयत्वादित्यर्थः । विपर्ययनिरासाय अवाधिते युक्तम् । अर्थे शब्दाभावादिति । अर्थस्य शब्दामत्राभावादित्यर्थः । तथावे दोषमाह भावे चेति । अत्रोपपत्त्यात् श्रोत्रान्येन्द्रियमाह्वयम् । अर्थस्य तत्तदिन्द्रियप्राहृत्यात्तदात्मकादिदं सदिति प्रत्ययस्येत्यर्थः । विरोधे चातिप्रसङ्ग इत्याह रूपेति । तस्य प्रामाण्यमेव नेत्यत आह अभ्युपगतेति । प्रसङ्गाच्चेत्यनन्तरं तस्मात्स्वपनानुपपत्तिरिति ग्रन्थमहरो द्रष्टव्यम् । दृष्टान्तरमाह सामान्येति ।

*

(सामान्यस्यावस्तुत्वशङ्का तत्समाधानञ्च)

अथ मतम्-वस्तुभूतं सामान्यं नास्ति । तथाप्यतद्व्यावृत्तेस्सामान्यस्य विद्यमानत्वात् । तदुपसङ्गाहकादनुमानं प्रवर्तत इति चेत्-न; तद्व्यावृत्तेरवस्तुत्वादुपसङ्गाहकाभावात् । तस्माद्वस्तुभूतं सामान्यमङ्गीकर्तव्यम् ।

[व टी] अतद्व्यावृत्तेरिति । अधूमव्यावृत्तेरवद्विव्यावृत्तेरित्यर्थः । वस्तुन एव ह्यत्रादेः पुष्पादिसङ्गाहकत्वदर्शनाच्च मते च व्यावृत्तेरेव वस्तुत्वान्नोपसङ्गाहकत्वमित्याह नेति । वस्तुतस्तु धूमोऽप्यमित्यादियुद्धौ धूमत्वादिकमेवापुण्ड्रं प्रतीयते, तेनातद्व्यावृत्तिः । किञ्च धूमव्यावृत्तिरित्यत्रापि धूमत्वं (किम् ? यद्यधूमव्यावृत्तिरेव तदोन्मत्तप्रलापः । धूमत्वं) सामान्यञ्चेत्परमतस्वीकार इत्यलमतिपल्लवेन । १।

[अ टी] तथापि त्वदभिमत सामान्यं न सिध्यतीति शङ्कते अथ मतमिति । धूमसामान्यं नाम अधूमपदार्थव्यावृत्तिः । अग्निसामान्यं नाम अनग्निपदार्थव्यावृत्तिः । तयोस्तद्व्यावृत्त्योरविनाभावादनुमानं प्रवर्तते । तेन भावरूपसामान्यापेक्षा नास्तीत्यर्थः । वस्तुभूतस्येव सूत्रादेः पुष्पादिसङ्गाहकत्वदर्शनाद्व्यावृत्तेश्चावस्तुत्वान्नोपसङ्गाहकत्वमित्याह नेति ।

[वा टी] किमित्यनुमानमङ्गः अतद्व्यावृत्तेस्सामान्यस्याङ्गीकारात् । धूमवत्यं नाम अधूमवत्यावृत्तिः, अग्निमत्र वा अनग्निमत्यावृत्तिः । तदविनाभावादनुमानं वर्तत इत्याशङ्कते अथ मतमिति । परिहरति नेति । वस्तुभूतस्येव सूत्रादेः पुष्पादिसङ्गाहकत्वदर्शनाद्व्यावृत्तेरवस्तुत्वान्नोपसङ्गाहकत्वमित्यर्थः । फलितमाह तस्मादिति ।

*

(परसामान्यमपरसामान्यञ्च, तत्र प्रमाणञ्च)

तत् परमपरञ्च । तत्र परं सत्ता, त्रिवर्गान्तर्गतत्वात् । अपरं द्रव्यत्वादि, अतपविषयत्वात् । तत्र प्रमाणम्-कर्म श्रावलेयसजातीयं, कार्यत्वात्, बाहुलेयवदिति । कार्यगुणः कर्मव्यावृत्तजातिमान्, कार्यत्वात्, तुरंगवदिति कर्मत्वसिद्धिः । कर्म गुणव्यावृत्तजातिर्मत्, कार्यत्वात्, देवा-

१ सामान्यमेवेति क २ तथापि तदिति घ ३ उपसङ्गाहकमेति क, ग ४ अङ्गीकारमिति ग, घ ५ धूमेत्यत्राप्य यदात्यत्रो भागो नास्ति छ पुस्तके ६ परमिति नास्ति ग, घ ७ इह पदत्रय नास्ति क, ग, घ पुस्तके ८ जातमानात् छ, घ

लयवदिति कर्मत्वसिद्धिः । कालो गुणव्यावृत्तजातिमान्, द्रव्यत्वात्, गोव-
दिति द्रव्यत्वसिद्धिः । विप्रतिपन्नाः पृथिव्यसेजोवायवः कालव्यावृत्तजाति-
मन्तः, स्पर्शवत्त्वाद्गोवदिति पृथिवीत्वादिसिद्धिः । आत्मा द्रव्यत्वावान्तर-
जातिमान्, चतुर्दशगुणवत्त्वात्, उदकवदित्यात्मत्वसिद्धिः । मनो द्रव्य-
त्वावान्तरजातिमत्, ज्ञानासमवायिकारणाश्रयत्वादात्मवदिति मन-
स्त्वसिद्धिः । कार्यरूपं रसादिव्यावृत्तजातिमत् कार्यत्वाद्गोवदिति रूपत्व-
सिद्धिः । एवं सर्वत्र रसादिव्यवगन्तव्यम्, उत्क्षेपणादिषु च ।

इति तौर्किकचक्रचूडामणिसर्ववस्तुरिविरचितायां
प्रमाणमञ्जरां सामान्यपदार्थस्समाप्तः ।

[व. टी.] त्रिवर्गेति । द्रव्यादित्रयवृत्तित्वादित्यर्थः । कर्मेति । शायलेयः
शयलवर्णो गौः, तद्वृत्तिजातिमौनित्यर्थः । प्रमेयत्वादिनार्थान्तरवारणाय जातीति ।
कर्ममात्रजात्यार्थान्तरवारणाय शायलेयेति । गोत्वादेः कर्मणि बाधात् पक्षधर्मता-
बलात्सत्तासिद्धिः । बाहुलेयः वर्णविशेषविशिष्टो गोपिण्डः । वर्णव्यागोपिण्ड
इति केचित् । गुणत्वेऽपरसामान्ये प्रमाणमाह कार्येति । नित्ये गुणे पक्षभागासिद्धि-
वारणाय कार्यपदम् । कर्मणो बाधवारणाय द्रव्ये च सिद्धसाधनवारणाय गुण इत्यु-
क्तम् । सर्वथा सिद्धसाधनवारणाय व्यावृत्तान्तम् । सामान्यादिव्यावृत्तया सत्तया
पुनरप्यर्थान्तरवारणाय कर्मेत्युक्तम् । उपाधिना केनचिदर्थान्तरमुन्मूलयितुं जाती-
त्युक्तम् । द्रव्यत्वादिना गुणं परम्परासम्बन्धेनार्थान्तरतादवस्थ्यनिराकृतये मनुष्या
साक्षात्सम्बन्ध उक्तः । न च द्रव्यत्वस्य परम्परासम्बन्धेन कर्मण्यपि वृत्तित्वेन व्यावृ-
त्तान्तविशेषणेनैव प्रयोजनस्य सिद्धत्वात् किं सम्बन्धस्य साक्षाच्चविवक्षयेति वाच्यम् ।
आत्मवृत्तिवंगुणे आत्मत्वसम्बन्धित्वेनार्थान्तरवारणाय साक्षाच्चस्य विवक्षितत्वात् । न
चात्मत्वं परम्परासम्बन्धेन कर्मसम्बद्धमिति व्यावृत्तवैविशेषणेनैककार्यस्य सिद्धत्वानु-
नरपि विवक्षाधिकेति वाच्यम् । कर्मवृत्तिवधट्टपरम्परासम्बन्धभिन्नात्मसम्बन्धस्य
सुखादौ वृत्तेः कर्मव्यावृत्तिनिर्वाहिकार्योसात्वेनार्थान्तरतादवस्थ्यर्थास्थ्यनिवारकत्वेन
विवक्षाया विद्वन्मनीषाचमत्कारगोचरत्वात्, अन्यथा किमपि कुतोऽपि व्यावृत्तं न
स्यात् । गुणत्वसमवायरूपोद्देश्यसिद्धये साक्षात्सम्बन्धस्य समवायरूपस्य मनुष्योक्तत्वाच्च ।
भावत्वे सति कर्मत्वशून्यकार्यत्वहेतुरिति न कर्मणि ध्वंसे च व्यभिचारः । कर्मपक्षकानु-
मानेऽप्येवम् । काल इति सत्तयार्थान्तरवारणाय । व्यावृत्तमित्यादि पूर्ववत् । द्रव्य-

१ गोवदिति नास्ति च पुस्तके. २ रूपवदिति मु. ३ साध्यमिति मु. ४ इति सामान्यपदार्थे इति
क, ख, ग, घ. ५ जातिमदिति छ. ६ पदमिदं नास्ति च पुस्तके. ७ ध्वंसकर्मन इति घ. ८ सत्तयामिति
घ. ९ उक्त इति नास्ति च पुस्तके. १०, ११ त्वेति नास्ति च पुस्तके. १२ विवक्षानयेति च. १३ कायामिति
घ. १४ दोषेति घ. १५ व्यावृत्तान्तमिति घ.

त्वात् गुणवत्त्वादित्यर्थः । यद्वा द्रव्यपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वेन हेतुता, तस्य जातित्वे हि विवादः, न तु धर्मत्वं इति भावः । ननु कालादिमात्रवृत्तिजैव्यार्थान्तरमिति चेत्-
 घटादिः गुणव्यावृत्ते कालवृत्तिजातिमान् संयोगवत्त्वात् कालवदित्यर्थान्तरवारणात् ।
 विप्रतिपक्षा इति । अत्र परस्परव्यावृत्तत्वविशेषणम् । तेन नोभयवृत्त्येकं जाल्यार्थान्त-
 रम् । तत्तत्स्पर्शवत्त्वोपाधिनार्थान्तरवारणाय जातीति । एकैकवृत्तिकालादिवृत्तिजात्या-
 र्थान्तरभङ्गाय व्यावृत्तान्तम् । घटत्वादिनार्थान्तरनिरासार्थं विप्रतिपक्षा इति ।
 विप्रतिपत्तिविषयत्वावच्छेदेनैका जातिस्तिष्ठतीति भावः । युक्त्यन्तरेण पृथिवीत्वादि-
 साधनं ग्रन्थान्तर उक्तम् । यथा च चतुर्मात्रनिष्ठैका जातिर्न सिध्यति तथा तत्रैव बोध्यम् ।
 आत्मेति । संसार्यात्मेत्यर्थः । तेन न भागासिद्धिः, ईश्वरस्याष्टगुणवत्त्वात् । उपाधिना-
 र्थान्तरवारणाय जातीति । सत्त्वार्थान्तरवारणाय अवान्तरेति । द्रव्यत्वेनार्थान्तर-
 वारणाय द्रव्यत्वेति । तेन द्रव्यत्वव्यूनवृत्तिजातिमानित्यर्थः । आकाशादौ व्यभिचार-
 निरासार्थं चतुर्दशेति । गुणविभाजकोपाधिना विजातीयचतुर्दशत्वसंख्यावच्छिन्नधर्म-
 वत्त्वादिति हेत्यर्थः । तेन चतुर्दशैविभागवति गगनादौ न व्यभिचारः । चतुर्दशशब्दवा-
 च्यत्वेन गुणा गृहीताः । तेनान्ये चतुर्दश पक्षे, अन्ये च दृष्टान्त इत्यसिद्धिर्न । ज्ञाना-
 दिमत्त्वेनैवैवैऽपि तज्जातिसिद्धिः । यद्वात्ममात्रपक्षीकरणेऽष्टगुणादिमत्त्वं हेतुः । न च
 प्रथमहेतौ चतुर्दशत्वं व्यर्थम्, तस्य सप्तत्वाद्यघटितत्वात् । ज्ञानेति । श्रोत्रे ज्ञानकारण-
 मनस्संयोगवति व्यभिचारवारणाय असमवायीति । शब्दासमवायिकारणवति गगने
 व्यभिचारवारणाय ज्ञानेति । गुणत्वव्याप्यजातिं साधयति कार्यमिति । नित्यरूपे
 भागासिद्धिवारणाय कार्येति । घटादिनार्थान्तरवारणाय ध्वंसे रसादौ च बाधवारणाय
 रूपमिति । रसादिव्यावृत्तभावकार्यत्वं हेतुः । आदिपदेनेतरे गुणा ग्राह्याः । कर्म-
 व्यावृत्तजातेर्गुणस्यैव सिद्धत्वात् । आदिपदेन द्रव्यग्रहे दृष्टान्तासिद्धिस्स्यात् । उपाधिना-
 र्थान्तरवारणाय जातित्वमुक्तम् । रसव्यावृत्तजातिमत् गन्धव्यावृत्तजातिमदित्यादि
 पृथगेव साध्यम् । यद्वा रसव्यावृत्तो गन्धरूपनिष्ठो(वा मा) सिध्यतु इत्येकमेव साध्यम् ।
 न चादिपदेन कर्माग्रहणे रसव्यावृत्तरूपकर्मनिष्ठजातिसाध्यापत्तिः, सदाकारप्रतीतिः
 सत्त्वयैवोपपत्तेः, रूपकर्ममात्रनिष्ठविलक्षणागुणतत्प्रतीतेरभावात्, भावे वा रूपकर्मन्यतर-
 त्वेनैव तदुपपत्तेः, तादृशजातेरनुभवसिद्धत्वात् । एवमिति । कार्यरसः रूपादिव्यावृत्त-
 जातिमान् कार्यत्वात् भोवत् । उत्क्षेपणम् अपक्षेपणादिव्यावृत्तजातिमत् कार्यत्वाद्भोवदि-
 त्याद्यनुमानं कर्मत्वावान्तरजातिसाधकं बोध्यम् । अपक्षेपणादिभिन्नसमवेतधर्मवत्त्वं चाप-
 क्षेपणादिव्यावृत्तजातिसाधने हेतुः ।

इति सामान्यम् ।

[अ. टी.] त्रिवर्गो द्रव्यगुणकर्माख्यः, तदन्तर्गतत्वं तद्वृत्तित्वम् । शायलेयः शयल-
वर्णो गौः । कर्मव्यक्तीनां परस्परसजातीयत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं शायलेय-
सजातीयमित्युक्तम् । तत्सजातीयत्वञ्च कर्मणो न गोत्वादिनेत्यतिरिक्तसत्तासिद्धिः ।
अपरसामान्ये तर्हि किं प्रमाणम् ? तदाह कार्यगुण इति । सत्ताजातिमत्त्वेन सिद्धसाधन-
ताव्युदासार्थं कर्मव्यावृत्तपदम् । गुणे द्रव्यत्वासम्भवात्कर्मणो व्यावृत्ता जातिगुणत्वमेव ।
कार्यत्वञ्चात्र कर्माद्यन्यत्वविशेषितं हेतुत्वेन द्रष्टव्यम् । कर्मणोऽपि सत्ताजातिमत्त्वेन सिद्ध-
साधनताव्युदासाय गुणव्यावृत्तपदम् । तथापि द्रव्यत्वे किं प्रमाणं तदाह काल इति ।
द्रव्यत्वात् गुणवत्त्वादित्यर्थः । इदानीं द्रव्यत्वावान्तरजातिं साधयति विप्रतिपन्न इति ।
व्यावृत्तासाधारणजातिः, तद्वन्तः । द्रव्यत्वजातिमत्त्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं द्रव्यत्वा-
धान्तरपदम् । शब्दस्वसंभवाधिकारणाश्रये व्योमादौ व्यभिचारवारणार्थं ज्ञानपदम् ।
रसो रूपादिव्यावृत्तजातिमानित्यादिप्रयोगो रसादिषु, ततो गुणत्वावान्तरजातिसिद्धिः । एवं
कर्मत्वावान्तरजातिरपि साध्येत्याह उत्क्षेपणादिषु चेति । उत्क्षेपणमपक्षेपणादिव्यावृत्त-
जाति(मत्, जाति ?) मत्वात् गोवैदित्यादिप्रयोगः ।

इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणेऽद्वयारण्ययोगिविरचिते सामान्यपदार्थः ।

[वा. टी.] अत्र बहुवृत्तित्वन्यूनवृत्तित्वोपाधिप्रयुक्त्या द्विविधमेव सामान्यमित्याह तच्चेति ।
ननूपाधिद्वयस्यैकत्र सम्भवात्परापरमपि स्यादिति न ब्राह्म्यम् । तथावेऽनन्तोपाधिकल्पनया त्रित्व-
नियमो न स्यादिति द्विविध्यमेव युक्तमिति । कर्मेति । कर्मन्तरेण सिद्धसाधनतापरिहाराय
शायलेयेति । शयलवर्णस्यापलं शायलेयः । स्त्रीभ्यो ङक् । तज्जातीयत्वञ्च कर्मणो न गोत्वादिनेत्य-
तिरिक्ता जातिस्सिद्धा । सा च सत्तेति । शेषं स्पष्टम् ।

इति सामान्यनिरूपणम् ।

*

(विशेषनिरूपणम्)

निस्सामान्य एकेनैव समवायी विशेषः । तत्र प्रमाणम्-मनो मनोऽ-
न्तरव्यावृत्तनिस्सामान्यसमवायि, द्रव्यत्वात्, गोवदिति । नित्या आका-
शादयो विशेषवन्तः नित्यद्रव्यत्वात् मनोवदिति । स नित्यः सत्ये सति
जातिशून्यत्वात्सत्तावदिति ।

इति तार्किकचक्रवृद्धामणिसर्वदेवसूरिविरचितायां
प्रमाणमञ्जरीयां विशेषपदार्थस्समाप्तः ।

१ तद्वृत्तित्वमिति ट. २ इयमपक्षेपयेति ज, ट. ३ शब्दाद्यसमवायीनि ट, शब्दाद्यसमवायीनि ज.
४ प्रयोगादिति ट. ५ गोत्ववदिति ट. ६ टिप्पणं इति ट. ७ पदमिदं नामि क, ८ पुस्तकयोः,
८ जातीयं नामि ९ पुस्तकं, सामान्येति ज. १ इति विशेष पदार्थ इति क, ख, ग, घ.

[च. टी.] निस्सामान्य इति । गुणादावतिव्याप्तिभङ्गाय निस्सामान्य इति । सामान्येऽतिव्याप्तिवारणाय एकेति । एकमात्रसमवायीत्यर्थः । सम्बन्धविशेषणैकमात्र-समवायित्वं विवक्षितम् । तेन परमाणुविशेषस्य कालादौ वृत्तावपि नासम्भवः । सम्बन्धविशेषेण परमाणुमात्रवृत्तौ पाकजरूपादिध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय समवायीति । मनोऽन्तरेति । समवायीत्युक्ते गुणेनार्थान्तरम्, अत उक्तं निस्सामान्येति । सामान्येनार्थान्तरवारणाय मनोऽन्तरव्यावृत्तेति । बाधवारणाय अन्तरेति । घटव्यावृत्तमनस्त्वेनार्थान्तरवारणाय मन इति । मनोनिष्ठात्ममनस्संयोगध्वंसेनार्थान्तरवारणाय समवायीति । अनुमानन्तु-आकाशादि मनोव्यावृत्तनिस्सामान्यसमवायि मनोभिन्नद्रव्यत्वात् घटवदित्यादि बोध्यम् । हेतुस्तु मनोऽन्तरव्यावृत्तद्रव्यत्वं, तेन न मनोऽन्तरव्यभिचारः । सामान्यादौ च न व्यभिचारः । इदानीं विशेषत्वेन रूपेणाकाशादौ विशेषं साधयति नित्या इति । आकाशादय इत्यादिपदेन परमाण्वादिरिग्रहः । घटादिरिग्रहे बाधभङ्गाय नित्या इत्युक्तम् । नित्यगुणादिरिग्रहेण बाधवारणाय आकाशादिरिग्रहेण द्रव्यं गृहीतम् । तथा च नित्यद्रव्याणि मनोव्यतिरिक्तनित्यद्रव्याणि वा पक्षः । घटादौ व्यभिचारभङ्गाय नित्येति । नित्यपरमाण्वादौ व्यभिचारवारणाय द्रव्यत्वविशेषणम् । अन्ये तु पक्षे नित्यग्रहणे नित्यद्रव्यैकवृत्तित्वसूचनायेत्याहुः । तत्र पक्षविशेषणकृत्यस्योक्तत्वात् । स इति । प्रागभावे व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । भावत्वे सतीति तदर्थः । घटादौ व्यभिचारवारणाय विशेष्यभागः । अन्यनिरूपितसमवापरहितत्वादिति तदर्थः ।

इति विशेषपदार्थः ।

[अ. टी.] समवायी विशेष इत्युक्ते संयोगादावतिव्याप्तिस्स्यादत एकेनेत्युक्तम् । अनेकसमवायिन एकसमवायित्वमप्यस्तीति स एव दोषस्यादत एवेत्युक्तम् । एकेनैव समवायिरूपादिव्यवच्छेदाय निस्सामान्यत्वविशेषणं द्रष्टव्यम् । मनसो निस्सामान्यमनस्त्वादिसमवायित्वेन सिद्धसाधनताच्युदासाय मनोऽन्तरव्यावृत्तेत्युक्तम् । मनोऽन्तरव्यावृत्तसमवायीत्युक्ते परिमाणसमवायित्वेन सिद्धसाधनता स्यादतो निस्सामान्यपदम् । तथाप्याकाशादिषु कथं विशेषसिद्धिरत आह नित्या इति । नित्यद्रव्यैकवृत्तित्वसूचनार्थं नित्यग्रहणम् । तन्नित्यत्वं तर्हि कथं तत्राह स नित्य इति । जातिशून्यत्वादित्युक्ते प्रागभावे व्यभिचारस्यादत उक्तम् सन्ध्ये सतीति ।

इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणेऽवधारणयोगिविरचिते-विशेषपदार्थः ।

[वा. टी.] सम्बन्धनिरूपणेनावहितव्याप्तिशेषं विशदयति निस्सामान्य इति । संयोगनिराकरणाय एकेनेति । सामान्यनिराकरणाय निस्सामान्य इति । अनेकसमवेतं यत्तदेकसमवेतं

१ तत इति च. २ सम्बन्धविशेषणेति च. ३ इतः पदत्रयं नास्ति च पुलक. ४ भङ्गायेति च. ५ तनीत्यर्थे इति च. ६ यदाप्येनिरूपणमिति च. ७ समवायीतीति स. ८ समवायिने इति झ. ९ च्युदासायमिति अ, ट. १० टिप्पणके इति २.

भवत्येवेति पुनरपि सामान्येऽतिप्रसङ्गसदर्थम् एवेति । न च विशेषाभावाल्लक्षणासम्भवः, सामान्यतस्तत्सिद्धेः । अस्ति तावदस्माकं गोघटादिषु व्यावृत्तप्रत्ययाभिहितं वान्यम् । न च विशेषाणामिव खत एव व्यावृत्तप्रत्ययजनकत्वं तेषाम्, जात्यादिरहितत्वेनात्यन्तविलक्षणत्वात्तत्वात् युक्तम्, अन्यथा विशेषत्वमेव न स्यात् । प्रकृते च जात्यादिना सारूप्याद्यावृत्तधीनिमित्तेन भवितव्यं, यन्निमित्तं स एव विशेष इत्याशयवांस्तत्र प्रमाणमाह तत्रेति । गुणसमवायित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय निस्सामान्येति । मनसुत्वेन तां परिहरति मनोऽन्तरव्यावृत्तमिति । दृष्टान्तसिद्धावन्यत्रापि विशेषं साधयति नित्या इति । घटनिवृत्तये नित्येति । विशेषाणामनित्यत्वप्रत्ययवस्थायां सादृश्यप्रसङ्गस्यादित्याशयवान्नित्यत्वं साधयति स नित्य इति । प्रागभावनिवृत्तये सत्त्व इति ।

इति विशेषपदार्थः ।

*

(समवायनिरूपणम्)

नित्यस्सम्बन्धस्समवायः सत्तासम्बन्धाच्चिवर्तते जातित्वाद्गोत्ववदिति । तत्र प्रमाणम्—समवायोऽस्मदाद्यप्रत्यक्षः, परमाणुसम्बन्धत्वात्तत्संयोगवत् । स नित्यः, सत्त्वे संत्यसमयेतत्वात्, परमाणुवत् । विवादमापन्नाः समवायप्रत्ययाः देवदत्तसमवायप्रत्ययेनाभिन्नविषयाः, समवायप्रत्ययत्वात्, सम्प्रतिपन्नसमवायप्रत्ययवदिति समवायेकत्वसिद्धिः ।

इति तार्किकचूडामणिसर्वदेवसूरिविरचितायां
प्रमाणमञ्जर्यां समवायपदार्थस्समाप्तः ।

[ब. टी.] नित्य इति । आत्मादावतिव्याप्तिवारणाय सम्बन्ध इति । संयोगेऽतिव्याप्तिवारणाय नित्य इति । सामान्यविशेषांन्यत्वे सति निस्सामान्यभावत्वं तल्लक्षणमूहम् । अतः श्रुत्यादिरूपे नित्ये सम्बन्धे नातिव्याप्तिः । सत्तेति । सत्ताजातिरित्यर्थः । तेन स्वरूपसत्तायाः समवाये वर्तमानत्वेऽपि न बाधः । निवृत्तिमात्रे वक्तव्ये सामान्यादिनिवृत्त्यर्थान्तरम्, अतः सम्बन्धादित्युक्तम् । द्विष्टसम्बन्धाच्चिवर्तते इत्यर्थः । संयोगत्वादित्तु पक्षसम इति न व्यभिचारः । सत्तायाः संयोगाच्चिवृत्त्यसम्भवे पक्षधर्मतावलात्समवायसिद्धिः । यद्वा जातिमात्रं पक्षः । वैशेषिकराद्धान्ते समवायाप्रत्ययत्वं साधयति समवाय इति । घटपटसंयोगे व्यभिचारवारणाय परमाणुनिष्ठत्वं विशेषणम् । पृथिवीत्वादौ व्यभिचारवारणाय सम्बन्धत्वोक्तिः । अणुसम्बन्धत्वादित्येव हेतुः तेन न परमपदवैयर्थ्यम् । लक्षणासम्भवं परिहर्तुं नित्यत्वं साधयति

१ तदि नास्ति क, ख, ग पुल्लकेषु, परमाणुसंयोगवदिति घ. २ सति समयेतत्वादिति घ. ३ समवायत्वादिति घ. ४ इति समवायपदार्थ इति क, ख : इति प्रवीणतार्किकसर्वदेवसूरिप्रणीतायाम् इति ग, इति सर्वदेवसूरिप्रणीतायामिति घ. ५ पद्धिरियं नास्ति च पुल्लके. ६ संयोगनिवृत्तीति घ.

स इति । प्रागभावे व्यभिचारवारणाय भावत्वे सतीत्युक्तम् । घटादौ व्यभिचारमङ्गाय विशेष्यभागः । असम्बन्धत्वादित्युक्तौ दृष्टान्तासिद्धिः स्वस्वरूपासिद्धिश्च स्याताम् । अत उक्तम् असमवेतत्वादिति । सिद्धान्तभूतं समवायैकत्वं साधयति विवादमिति । पक्षसाध्ययोः प्रत्ययपदं बाधादिवारणाय, समवायस्य निर्विषयत्वात् । सविषया इत्युक्तेऽर्थान्तरम्, अभिन्नविषया इत्युक्तेऽपि । प्रत्ययेनेत्याद्युक्तेऽपि घटादिप्रत्ययेनाविन्नविषयत्वादबाधश्च । देवदत्तेति । विशेषणपरिहारे पक्षीभूतसमवायप्रत्ययेनाविन्नविषयत्वसिद्ध्या सिद्धसाधनं स्यात्, तद्वारणाय देवदत्तेति विशेषणम् । अभावप्रत्यये व्यभिचारमङ्गाय समवायेति । साधनवैकल्यपरिहाराय प्रत्ययत्वादिति । सम्प्रतिपन्नेति । देवदत्तसमवायप्रत्ययैवदित्यर्थः । यद्वा घटकपालसमवायातिरिक्ताः समवायाः घटकपालसमवायादभिन्नाः समवायत्वात्, घटकपालसमवायवत् इति तर्कस्तु लाघवाख्यः । द्रव्यादाविहाकारानुमतप्रतीत्यभावप्रसङ्गश्च बोध्यः । अतो नाप्रयोज्यता, सम्बन्धिभेदेन बहुत्वोपचारः ।

इति समवायैः ।

[अ. टी.] संयोगव्यवच्छेदाय नित्यपदम् । आत्मादिव्युदासाय सम्बन्धपदम् । संयोगे सत्ताया वर्तमानत्वात्ततो निवृत्त्यसम्भवात्तद्विलक्षणसमवायसिद्धिः । अस्मदादिप्रत्यक्षः समवाय इति मतं व्युदस्यति समवाय इति । घटादिसंयोगव्युदासां परमाणुसम्बन्धत्वादित्युक्तम् । लक्षणांशभूतं नित्यत्वं साधयति स नित्य इति । असमवेते प्रागभावे व्यभिचारो मा भूदिति सत्त्वे सतीत्युक्तम् । घटादौ व्यभिचारवारणायम् असमवेतत्वपदम् । समवायस्यैकत्वमभिमतं साधयति विवादमिति । देवदत्तसमवायप्रत्ययादन्ये समवायप्रत्ययाः पक्षः । स्वस्वसमवायप्रत्ययाभिन्नविषयत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासाय देवदत्तपदम् । घटादिप्रत्यये व्यभिचारवारणाय समवायप्रत्ययत्वादित्युक्तम् ।

इति प्रमाणमञ्जरीर्दिष्टेऽद्वयारण्ययोगिविरचिते समवायपदार्थः ।

[वा. टी.] निरूपिते सम्बन्धिनि सम्बन्धं निरूपयति नित्य इति । संयोगनिराकरणाय नित्य इति । आकाशनिराकरणाय सम्बन्ध इति । सत्तेति । विशेषादिव्यावृत्तत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय सम्बन्धादिति । यत्तत्सम्बन्धाव्यावृत्तस्तत्सम्बन्धस्तस्यैव इति । न च तादात्म्येनार्थान्तरता, निरुद्धयोस्तादात्म्यासम्भवादिति । घटपटसम्बन्धनिवृत्तये परमाणुपदम् । समवायानित्यत्वे आकाशपरिमाणोदेरसम्बन्धस्यैवावस्थानं स्यात् । तच्च सिद्धान्तविरुद्धमिति नित्यत्वं साधयति स नित्य इति । सम्बन्धत्वादेवास्य प्राप्तमनेकत्वं वारयति विवादमापन्ना इति । देवदत्तसमवायप्रत्ययादन्यस्तसमवायप्रत्ययः । विवादपदशब्दार्थे घटादिप्रत्ययनिवारणाय समवायेति । भेदप्रत्ययस्तु रूपादिव्यङ्गकभेदनिमित्त इति ज्ञेयम् ।

इति समवायः ।

१ विषयधामावादापन्नेति च. २ वारणायेति च. ३ प्रत्ययेति नास्ति च पुस्तके. ४ ययेति च. ५ पदार्थ इति च. ६ व्यावर्तेति ज, ट. ७ व्यवच्छेदायेति ज, ट. ८ दिष्ट्यणक इति ट.

(अभावलक्षणं तद्विभागश्च)

भावनिषेधोऽभावः । स द्वेधा-जन्योऽजन्यश्च । प्रथमः प्रध्वंसः । उत्तरो द्वेधा-विनाशी अन्यथा चेति । आद्यः प्रागभावः । उत्तरो द्वेधा-समानाधिकरणनिषेधः अन्यथा चेति । पूर्वं इतरेतराभावः । उत्तरोऽत्यन्ताभावः । नात्र प्राभाकरं प्रति प्रमाणमभिधानीयम् । निद्रामरणनिर्वाणाङ्गीकारात् । धिपणानिर्वाणं हि^१ निद्रा । उपनिबन्धकादृष्टक्षयात् कलेवर-वियोगो मरणम् । निखिलात्मविशेषगुणविलयो निर्वाणम् । अर्थं कथयसि त्वम्-प्रतियोगिति ज्ञायमाने केचलाधिकरणोपलम्भ एव निद्रेति चेत्-^२मैवं बोधः; विकल्पानुपपत्तेः । इदं यस्य प्रतियोगिनो विज्ञानं किं सुप्तस्य ? किंवा यस्य कस्यचित् ? आद्ये विकल्पे सुप्तः प्रतिबुद्धं स्यात् । न द्वितीयः, परेनरगतसंवित्तेः परेनरेण प्रत्यक्षेण ज्ञातुमशक्यत्वात् । परस्य यथाकथञ्चित् तत्र ज्ञानमस्तीति चेत्-न; परमाणुगुणानां यथाकथञ्चिदवगन्तानां निषेधप्रसङ्गात् । तस्मादभावोऽङ्गीकर्तव्यः ।

[ब. टी.] भावेति । यद्यपि पर्यायेण न लक्षणम्, अन्यथा घटः कलश इत्याद्युभया निर्वृत्तस्यात् । भावपदवैयर्थ्यञ्च, तथाप्यभावत्वमखण्डमेव लक्षणम् । अन्यस्तु निष्प्रतियोगिको भावो न सम्भवतीति सूचयितुं भावपदं दत्तमित्याह । परे त्वभावनियेधे घटादावतिव्याप्तिं वारयितुं भावेत्युक्तमित्याहुः । समानाधिकरणेति । समानाधिकरणजातीय निषेध इत्यर्थः । साजाल्यन्तु अभावविभाजकोपाधिना । तेनावृत्तिपदार्थान्योन्याभावस्य नासङ्गहः । अयमयं न भवतीत्यादिप्रतीत्या विपरीतक्रियमाण इति वार्थः । अन्यथा चेति । स्ववृत्त्यवच्छेदेन स्वप्यधिकरण इत्यर्थः । तेन कालमेदेन घटसमानाधिकरणस्य घटात्यन्ताभावस्य नासङ्गह इति भावः । न च प्रागभावध्वंसयोरतिव्याप्तिः, प्रतियोगिकाले वर्तमानत्वे सतीति विशेषणात् । अन्ये तु संसर्गाभावमादायाप्यखण्डा एवेत्याहुः । न चाकाशत्यन्ताभावाद्यसङ्गहः, तस्य वृत्त्यसिद्धेरिति वाच्यम् । तस्यापि तादृशव्यधिकरणजातीयत्वात् । धिपणेति । ग्रहारा(द्यदि)प्रयोज्यद्युध्यभावे निद्रासुपुप्तिर्नैवहित इति भावः । यद्वा सुपुप्तिः पुरीततिदेशे मनसोऽवस्थानम् । एवञ्च ज्ञानाभावात्सुपुप्तिर्भिनैवेति बोध्यम् । तथा च धिपणानिर्वाणसमपन्नं सुपुप्तिरित्यर्थो बोध्यः । न तु ज्ञानाभावः केचलाधिकरणमेवेत्यत आह उपनिबन्धकेति । उपनिबन्धकत्वं शरीरादिना सह सम्बन्धरूपत्वं शरीरादिजनकत्वं वा । क्षयो ध्वंसरूपोऽभावः स्वीकृतः । कलेवरस्य विलयो ध्वंस एव स्वीकृतः ।

१ सामानाधिकरण्येति खं. २ हीति नास्ति ग घ, पुस्तकयोः. ३ कथं इदमेव इति सु. ४ मैवमबोध इति सु. ५ इदमप्रतियोगिन इति कः ६ पदमिदं नास्ति ख, घ पुस्तकयोः. ७ प्रबुद्ध इति क, ख, घ. ८ परतद्वृत्तीति सु. ९ परतरेणेति सु. १० भावत्वादयोऽपीति च. ११ समवे इति च.

यदि जीवनध्वंसो मरणं तदाप्यभावस्वीकारः । कृष्णादिदृश्यैर्वियोगोऽपि मरणं स्यादतः पञ्चम्यन्तम् । स्वनिष्ठादृष्टक्षयादित्यर्थः । तेन न जीवादृष्टक्षयप्रयोज्यमगव-
त्फलैवरध्वंसो मरणमिति बोध्यम् । अपरे तु—उपनिबन्धकादृष्टक्षय एव मरणमिति निज-
गदुः । ननु सोऽप्यधिकरणात्मेत्यत आह निखिलेति । यत्किञ्चिद्विशेषगुणवृत्तेः संसा-
रितादशायां वर्तमानत्वेनातिव्याप्तिं वारयितुं निखिलेत्युक्तम् । रूपादिध्वंसस्य मुक्तित्वं
वारयितुम् आत्मेति । आत्ममनस्संयोगादिध्वंसस्य मुक्तित्वापत्त्या मनःप्रवृत्तेरपि
मुक्तत्वापातं वारयितुं विशेषेति । गुणाभावमात्रं न मुक्तिरित्यत उक्तम् विलय
इति । ध्वंस इत्यर्थः । इदन्तु परमतसिद्धं लक्षणमिति कृत्वा दोषो नेह विचार्यते । न
चायं विलयोऽधिकरणात्मा, मुक्तेरजन्यत्वापातेनापुरुषार्थत्वापातात् । पररहस्यमुद्घाटयति
अथेति । दृश्य इत्यनेन प्रतियोगिनः प्रामाणिकत्वमात्रं सूचयितुम्, यद्वा योग्या-
भावस्य योग्यतानिर्वाहाय दृश्य इत्युक्तम् । प्रतियोगिविशिष्टस्याधिकरणस्याभावत्वं
वारयितुं केवलेति निजगदे । प्रतियोग्यज्ञानदशायामभावव्यवहारं वारयितुं ज्ञायमान
इत्युक्तम् । अधिकरणस्वरूपसत्तादशायामभावव्यवहारातिप्रसक्तिवारणाय उपलम्भ
इत्युक्तम् । अधिकरणेत्युपरञ्जकम् । यद्वा अप्रकृताधिकरणेऽभावव्यवहारं वारयितुम्
अधिकरणपदं प्रकृताधिकरणपरम् । सुप्त इति । तथा च निद्राभङ्गप्रसङ्ग इति
निर्गमः । प्रतियोगिज्ञाने सति ज्ञानाभावादिति । परस्येति । लिङ्गादिनेत्यर्थः ।
तथा च प्रतियोगिज्ञानघटिताधिकरणोपलम्भरूपो भावः प्रत्यक्षो न स्यादिति भावः ।
प्रतियोगिनोऽप्रत्यक्षत्वे प्रतियोगिलैङ्गिकज्ञानादिना भावव्यवहारेऽतिप्रसक्तिमाह नेति ।
वस्तुतस्तु—अभावमन्तरेण कैवल्यमेव निरूपयितुं न शक्यमित्यन्यत्र प्रपञ्चः ।

[अ. टी.] निष्प्रतियोगिकनिषेधासम्भवात् भावनिषेध इत्युक्तम् । विनाशी प्रागभावः ।
अन्यथा नित्यः । समानाधिकरणोऽयं न भवतीति निषेधः । ननु प्राभाकरा अभावं न
मन्वते, तान् प्रति प्रमाणं वाच्यम्, तत्राह—नात्रेति । निद्रावङ्गीकारे कथमभावाङ्गीकार
इत्यत आह धिषणेत्यादि । धिषणा बुद्धिः । निर्वाणं प्रध्वंसः । उपनिबन्धकं देहारम्भ-
कम् । एकदेशेनात्मविशेषगुणविलयः संसारदशायामप्यस्तीति निखिलपदम् । तदीयं
रहस्यमुत्पापयति अथेति । ज्ञायमाने स्मर्यमाणे दुःखादिविशिष्टाधिकरणोपलम्भे दुःखाभाव-
व्यवहारप्रसङ्गवारणार्थं केवलपदम् । तर्हस्मर्यमाणेऽपि प्रतियोगिन्यभावव्यवहारः प्रसक्तस्त-
त्राह—(अथेति ?) । प्रतियोगिनि ज्ञायमान इत्युक्तं तर्कवलेन दूषयति मैवं चोच इति ।
यदि सुप्तस्य प्रतियोगिविज्ञानं तर्हि स स्वप्नेऽपि प्रबुद्धस्यादतो नाद्यः कल्पः । धिषणानिर्वाणं
हि निद्रा । ततस्सा प्रतियोगिभूता बुद्धिः, सा च परस्य प्रत्यक्षा न भवति । तथापि
यथाकथञ्चिज्ज्ञायत इति शङ्कते परस्येति । यथाकथञ्चिल्लिङ्गेनेत्यर्थः । तथाप्यधिकरण-

स्याप्रत्यक्षत्वात्प्रतियोगिविषयलैङ्गिकज्ञानमात्रेण तद्विषयव्यवहारेऽतिप्रसङ्ग इत्याह नेति ।
अभाषानङ्गीकारे केवलशब्दार्थ एव दुर्निरूप इति न लिङ्गनापि केवलाधिकरणोपलम्भ इति
भावः । निगमयति तस्मादिति ।

[वा. टी.] प्रतियोगिभावनिरूपणानन्तरमभावं निरूपयति भावेति । अभावनियेधेऽतिव्या-
व्याप्तिपरिहाराय भावेति । समानाधिकरणनियेधो नाम तादात्म्यनियेधः । विषयानिर्वाण चाक्षुषा-
दिज्ञानाभावः । उपनिबन्धकं देहप्रमाणादिसम्बन्धघटकम् । कलेवरविलपो नाम देहस्य प्राणा-
देर्वियोगः । विषयद्विशेषगुणविलयः संसारदशायामप्यस्तीति निखिलेत्युक्तम् । प्रमाणयोग्ये
बुद्ध्यादावदुर्गूयमाने आत्ममात्रोपलम्भ एव निद्रादिरिति स्वयमेव तन्मतमाशङ्कते अथेति ।
परिहरति मैवमिति । विज्ञानमित्यत्र प्रत्यक्षं विवक्षितमात्रमात्रेण वा ? तत्रायं द्विषा विफलस्य
दूषयति आद्यं इत्यादिना । द्वितीयं शङ्कते अथेति । आनुमानिकज्ञानमात्रेणापि पक्षणावगतौ
तन्निषेधेऽतिप्रसङ्ग इति दूषयति नेति । परमाशुष्यति शेषः । उपसंहरति तस्मादिति ।

*

(मोक्षे प्रमाणम्)

तत्रापि मोक्षे प्रमाणम्-आत्मा कदाचिदशेषविशेषगुणशून्यः, अनि-
त्यविशेषगुणत्वात्, पार्थिवपरमाणुवदिति । नाकाशे व्यभिचारः, तस्यापि
तथा साधनात् ।

इति तार्किकचक्रचूडामणिसर्वदेवविरचितायां

प्रमाणमञ्जर्याम् अभावपदार्थस्समाप्तः ।

॥ इति प्रमाणमञ्जरी समाप्ता ॥

[व. टी.] स्वाभिमतं मोक्षे प्रमाणमाह आत्मेति । जलपरमाणौ व्यभिचारवारणाय
विशेषेति । विशेषपदार्थस्य ध्वंसो नास्त्येव । विशेषपदेन धर्मविशेषग्रहणे जलपरमाणौ
व्यभिचारः, तत्रापि संयोगादीनां सत्त्वात् । विशेषपदेनैव विशेषगुणग्रहणे फलतो न
विशेषः । बाधवारणाय कदाचिदिति । परिमाणादेरध्वंसात् बाधवारणाय विशेषेति ।
यत्किञ्चिद्विशेषगुणध्वंसोऽस्मात्परिवारणाय अशेषेति । आत्मा संसार्यात्मा । गुणपदा-
दानेऽशेषस्य धर्मविशेषस्य परिमाणादेः ध्वंसासम्भवाद्वाधपक्षात्तदर्थं गुणपदम् । यद्यपि
पार्थिवपरमाणुर्न दृष्टान्तः, पक्षसमत्वात्, तथाप्यनुमानान्तरे तात्पर्यसवगमनीयम् ।
तथेति । आकाशस्य पक्षसमत्वात् उक्तरूपसाध्यवत्साधनादित्यर्थः । न हि पक्षे पक्ष-
समे वा व्यभिचार इति भावः । यस्तुतस्तु हेतुमत्तया निश्चिते साध्यवत्तया सन्दिग्धेन

१ गुणैव इति इ. २ तत्र मोक्षे इति गु. तत्रापि मोक्षप्रमाणमिति घ. ३ गुणपदादिति स, गुण-
स्वार्थित ४, ग. ४ इति तार्किकरत्नदेवशूरिणेति क, ग. इति श्रीनारदार्किकज्ञानमणिसर्वदेवेति ग, इति
तार्किकरत्नदेवशूरि प्रणीतेति घ. ५ परमिह मासि च पुस्तके.
प्रमाणं १४

सन्दिग्धव्यभिचारः । व्याप्तिग्रहेणानुमितेरेव तद्विरहे तत एवानुमितिर्विरहात् न तादृशः
सन्दिग्धव्यभिचारो दोषः, किन्तु साध्याभाववत्तया निश्चिते हेतुमत्तया सन्दिग्धे सन्दि-
ग्धव्यभिचारो दोष इति पर्यालोचनीयमिति ।

यन्मिश्रबलमद्रेण निरटङ्गीह किञ्चन ।

तच्छोधयन्तु मुधियस्सारासारविवेचकाः ॥

इति श्रीविष्णुदासत्रिपाठितनूजमाध्वीपुत्रमिश्रश्रीबलमद्र-

कृता प्रमाणमञ्जरीटीका समाप्ता ॥

[अ. टी.] स्वाभिमेते निर्वाणे प्रमाणमाह तत्रापीति । वाधव्युदासार्थं कदाचित्पदम् ।
जलादिपरमाणुषु व्यभिचारवारणार्थम् अनित्यविशेषगुणत्वादित्युक्तम् । पाके पार्थिव-
परमाणुनामुक्तसाध्यवत्वम् । अथवा क्रमेण सर्वमुक्त्यङ्गीकारादत्यन्तोच्छेद एव, पार्थिवानु-
विशेषगुणानां पुनः प्राणिभोगार्थं सूक्ष्मनारम्भात् । आकाशेऽनैकान्तिकत्वमाशङ्क्याह, नाकाश
इति । सपक्षत्वान्न व्यभिचार इत्यर्थः ।

प्रमाणमञ्जरीव्याख्या समासेन विनिर्मिता ।

संविदारण्यतुष्ट्यर्थमद्वयारण्ययोगिना ॥

इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणेऽद्वयारण्ययोगिविरचितेऽभावपदार्थस्समाप्तः ।

[वा. टी.] ननु मोक्षस्वरूपे वादिना विप्रतिपत्तेरेवंविध एव मोक्ष इत्येतस्मिन्नर्थे किं प्रमाणमत
आह तत्रेति । तस्मिन्नित्यर्थः । नान्यस्मिन्मानमित्यपि सूचितम् । सिद्धसाधनपरिहाराय अनित्येति ।
तत्र चागमः—“अशरीरं वाक् सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः” इति । आकाशे व्यभिचारमाशङ्क्य
परिहरति, नाकाश इति । सपक्षत्वादिति भावः ।

शाके वाणगजत्रिचन्द्रगणिते वर्षे सुभानौ शुभे

देशे घाटपदाङ्किते धृतवति श्रीपद्मनाभे विभौ ।

लक्ष्मीशाङ्कि.....तुलसीकृष्णाङ्गभूर्यातनो-

द्याख्याकोविदभट्टवामन इमां लक्ष्मीपतिप्रीतये ॥

टीकेयं न भवेत्पीत्यै मत्सरप्रस्तुतेतसाम् ।

तथापि मुजनानन्ददायिनी कल्पतां निरम् ॥

इति वामनभट्टविरचितायां प्रमाणमञ्जरीटीकायां अभावपदार्थस्समाप्तः ।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

१ २ ३